त्रेता : एक सम्यक् मूल्यांकन

उद्भ्रांत के महाकाव्य त्रेता की पड़ताल

दिनेश कुमार माली

ओड़िया के भक्त-कवि गंगाधर मेहेर को
जिन्होंने सीता के वनगमन की घटना पर आधारित
ओड़िया महाकाव्य 'तपस्विनी'
की रचना की और यह नाम
काव्य-प्रेरणा के रूप में
हमेशा-हमेशा के लिए
मन-मस्तिष्क पर छा गया
उस तपस्विनी को स्मरण करते हुए
ओड़िया के परंपरावादी कवि-त्रय
सर्व श्री मनोजदास, सीताकान्त महापात्र एवं रमाकांत रथ को सादर समर्पित।

भूमिका

त्रेता' उद्भ्रांत जी का बहुचर्चित महाकाव्य है जिसमें त्रेतायुगीन राम और रावण के परिवार की महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और पारिवारिक जीवन का उदात्तभाव से काव्य के रूप में वर्णन किया गया है। यह महाकाव्य संस्कृत के महान आचार्यों की विभिन्न साहित्यिक अवधारणाओं का अद्वितीय उदाहरण है, जिसमें जगह-जगह पर रस, ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति, अलंकार सभी सिद्धांतों का सम्मिश्रण देखने को मिलता है अर्थात् भरत मुनि, आनंदवर्धन, कुंतक, वामन, भामह के काव्य-हेतु, काव्य-प्रयोजन, काव्य-लक्षण की कसौटी पर यह महाकाव्य खरा उतरता है। यही नहीं, पाश्चात्य आलोचकों में लौंगुनिस के उदात्तवाद सिद्धांत और टीएस. इलियट के परंपरावाद और निर्वैयक्तिकता का पुट भी इस महाकाव्य में है। पाठक त्रेतायुगीन पात्रों के भावों को देशकाल से परे जाकर रस के साधारणीकरण क्रिया द्वारा अपने स्थायी भावों, अनुभावों और संचारी भावों से निर्वैयक्तिक होकर उनके सुख-दुख की हिलोरें खाता नजर आता है। अरस्तु का त्रासदी विरेचन सिद्धांत से भी यह काव्य प्रभावित है। राम द्वारा सीता की अग्नि-परीक्षा, वन-निष्कासन और शम्बूक की हत्या आदि ऐसे एपिसोड हैं जो पाठकों के मन में करुणा का भाव पैदा करता है।

"त्रेता' महाकाव्य की विशेषताओं में विषयवस्तु की भव्यता, अलंकारयुक्त भाषा का प्रयोग, विषय-शैली, मनोवेगों की तीव्रता, रचना-विधान आदि शामिल है, जो लौंगुनिस के उदात्तवाद की कसौटियां हैं। इसी तरह यह महाकाव्य टीएस. इलियट की साहित्यिक अवधारणाओं के अनुरूप भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं के मूल पात्रों को अपनी अंतर्वस्तु बनाकर व्यक्तिगत के माध्यम से समष्टिगत की अभिव्यक्ति करता प्रस्तुत हुआ है। यहां कवि उद्भ्रांत ने एक मौलिक चरित्र ' शंबूक की मां' का भी निर्माण किया है जो आधुनिक परिप्रेक्ष्य में त्रेताकालीन सामाजिक व्यवस्थाओं पर कई सवालिया निशान खड़े करता है। यह मौलिक चरित्र कवि के परंपरावादी दृष्टिकोण से हटकर एक नई मार्क्सवादी दृष्टि तैयार करता है अत: कवि को मिथिकीय पात्रों का कवि मात्र कहना उनकी गरिमा को चोटिल करना है। वास्तव

में, इस रचना में कवि अपने व्यक्तित्व से पूरी तरह पलायन कर जाता है और मात्र बची रह जाती है उनकी कृति की गरिमा, नैतिकता, निर्वैयक्तिकता और आधुनिकता।

मुझे 'त्रेता' पर में काम करने में दो वर्ष से अधिक समय लगा। इस विशाल महाकाव्य पर आलोचना ग्रंथ की रचना करना इतना सहज नहीं था। इसके लिए पूर्ववर्ती आलोचकों की पुस्तकों का भी अध्ययन करना पड़ा, जिनमें डॉक्टर आनंद प्रकाश दीक्षित की 'त्रेता : एक अंतर्यात्रा', केवल भारती की 'त्रेता-विमर्श और दलित-चिन्तन' आदि हैx। भारतीय परंपरा की जड़ को खंगालने के लिए मुझे वाल्मीकि रामायण, तुलसीदास के रामचरितमानस, कल्याण का 'नारी विशेषांक', फादर कामिल बुल्के की 'रामकथा', नरेन्द्र कोहली की 'रामकथा', जैन और बौद्ध रामायण, देवदत्त पटनायक की 'सीता', भवभूति का 'उत्तर रामचरित', मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' आदि कई ग्रंथों का गहन अध्ययन करना पड़ा, ताकि 'त्रेता' की सम्यक भाव से विवेचना की जा सके; जिसमें पौराणिक, शास्त्रीयता, नवीनता, दलित-विमर्श, आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के सभी दृष्टिकोणों का समावेश हो।

मेरा भरपूर प्रयास रहा कि इस ग्रंथ पर आलोचना का कोई भी ऐसा पहलू बाकी न रहे, जिसकी मुझे थोड़ी-बहुत भी जानकारी है।

डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित ने अपनी पुस्तक 'त्रेता : एक अंतर्यात्रा' की भूमिका में एकदम सही लिखा है कि यह प्रस्थान बिंदु है, इस पर और आगे कितने विमर्श होंगे, यह कहा नहीं जा सकता है।

मैं भी इस बात से सहमत हूं कि 'त्रेता' पर ज्यादा से ज्यादा विमर्श हों, ताकि भारतीय पंरपरा की बुनियाद तक हमारी नई पीढ़ी पहुंच सके, और वह भी विकासशील विचारधारा के साथ।

आशा है कि यह विवेचना आपको पसंद आएगी और हिन्दी जगत में इस पुस्तक को सहर्ष स्वीकार किया जाएगा।

दिनेश कुमार माली

अनुक्रम

1. कवि उद्भ्रांत,मिथक और समकालीनता
2. पहला सर्ग: त्रेता-एक युगीन विवेचन
3. दूसरा सर्ग: रेणुका की त्रासदी
4. तीसरा सर्ग: भवानी का संशयग्रस्त मन
5. चौथा सर्ग: अनुसूया ने शाप दिया महालक्ष्मी को
6. पाँचवाँ सर्ग: कौशल्या का अंतर्द्वंद्व
7. छठा सर्ग : सुमित्रा की दूरदर्शिता
8. सातवाँ सर्ग: महत्त्वाकांक्षिणी कैकेयी की क्रूरता
9. आठवाँ सर्ग: *रावण की बहन ताड़का*
10. नौवां सर्ग :अहिल्या के साथ इंद्र का छल
11. दसवाँ सर्ग: मंथरा की कुटिलता
12.ग्यारहवाँ सर्ग : श्रुतिकीर्ति को नहीं मिली कीर्ति
13.बारहवाँ सर्ग : उर्मिला का तप
14.तेरहवा सर्ग : माण्डवी की वेदना
15.चौदहवाँ सर्ग : शान्ता:: स्त्री-विमर्श की करुणगाथा
16.पंद्रहवाँ सर्ग : सीता का महाआख्यान
17.सोलहवाँ सर्ग : शबरी का साहस
18.सत्रहवाँ सर्ग : शूर्पणखा की महत्त्वाकांक्षा
19.अठारहवाँ सर्ग :पंचकन्या तारा
20.उन्नीसवाँ सर्ग: सुरसा की हनुमत परीक्षा
21.बीसवाँ सर्ग: रावण की गुप्तचर लंकिनी
22.इक्कीसवाँ सर्ग: सीता की सखी त्रिजटा
23.बाईसवाँ सर्ग : मन्दोदरी::नैतिकता का पाठ

24.तेइसवाँ सर्ग : सुलोचना का दुख

25.चौबीसवाँ सर्ग : धोबिन का सत्य

26.पच्चीसवाँ सर्ग : मैं जननी शम्बूक की :: दलित विमर्श की महागाथा

27.छब्बीसवाँ सर्ग : उपसंहार- त्रेता में कलि

<u>कवि उद्भ्रांत,मिथक और समकालीनता</u>

मिथकों के बारे में ***"उद्भ्रांत का काव्य:मिथक के अनछुए पहलू"*** के लेखक डॉ॰ शिवपूजन लाल लिखते हैं कि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में मिथक असत शक्तियों से लड़ने का एक सशक्त संसाधन है,बुराई और कपट पर अच्छाई और ईमानदारी की जीत का प्रतिरूप है। जहां कवि उद्भ्रांत की लंबी कविता *"रुद्रावतार"* को हिन्दी के महाकवि "*राम की शक्तिपूजा"* की परंपरा से जोड़कर देखा जाता है,वहाँ उनके महाकाव्य *"राधा-माधव"* की राधा केवल पौराणिक चरित्र मात्र नहीं लगती है,बल्कि वह आधुनिक चेतना की वाहक है। उसे चिंता है,आज के समाज की और वैश्विक पर्यावरण के बिगड़ते रूप की। इसी तरह उनके खंड काव्य *"वक्रतुंड"* में गणेशजी की छवि में गांधीजी का आभास होता है। कवि द्वारा बताए गए आठ असुर मानव के आठ मनोविकार है। अपनी सूक्ष्म विवेचन दृष्टि से महाकाव्य '*त्रेता*' में रामचरितमानस और रामायण के उपेक्षित स्त्री पात्रों का कवि ने विस्तार से चरित्र चित्रण किया है।

उद्भ्रांत जैसे महान रचनाकार हिंदी साहित्य की प्राचीन परंपरा से जुड़े हुए है। उन्होंने राम और कृष्ण भक्ति की दोनों धाराओं पर अपनी कलम खूब चलाई है। उनकी अधिकांश कविताएं आज की समस्याओं से न केवल दूर रहने का आह्वान करती है,बल्कि उनसे लड़ने के लिए भी प्रेरित करती है। डॉ॰ आनंद प्रकाश दीक्षित की उनके महाकाव्य त्रेता पर की गई समीक्षा *"त्रेता: एक अंतर्यात्रा"*, उसी पर दूसरी कमल भारती द्वारा की समीक्षा ***"त्रेता-विमर्श और दलित चिंतन"*** उनके मिथकीय रचनाओं के व्यवहारिक पक्ष का विवेचन करती हैं। उनके व्यक्तित्व-कृतित्व की विषद व्याख्या उनके मुख्य काव्य *"स्वयंप्रभा", "रुद्रावतार", "राधा-माधव", "अभिनव-पांडव", "प्रज्ञावेणु", "वक्रतुंड", "त्रेता", "ब्लैक-होल"* आदि में मिलती है।

हिंदी साहित्य के हर काल में मिथकों का प्रयोग होता रहा है। निराला की *"राम की शक्ति-पूजा"*, छायावादोत्तर युग में *"उर्वशी", "कुरुक्षेत्र", "परशुराम की प्रतीक्षा", "रश्मिरथी"* आदि दिनकर की मुख्य मिथकीय रचनाएं हैं तो धर्मवीर भारती का लिखित काव्य-नाटक *"अंधा युग"* में मिथक का पौराणिक स्वरूप महत्वपूर्ण न होकर समकालीन समय और समाज के युगबोध का द्योतक है। इस युग में नरेश मेहता, उद्भ्रांत,जगदीश चतुर्वेदी,डॉक्टर विनय बलदेव वंशी आदि ने मिथकीय

रूपांतरण को अपने-अपने तरीके से गति दी है। उन्होने जीवन-मृत्यु के अंतर्द्वंद को विश्लेषित किया है।

कवि उद्भ्रांत को मिथकीय पात्र क्यों आकर्षित करते हैं?यह जानने के लिए उनके कृतित्व-व्यक्तित्व का हमें पहले विश्लेषण करना होगा। कवि के पूर्वज आगरा के सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनके दादाजी रेलवे में स्टेशन मास्टर थे। उनके पिताजी उमाशंकर पाराशर धार्मिक स्वभाव वाले थे। *"कल्याण","साप्ताहिक हिंदुस्तान","धर्मयुग"* जैसी अनेक पत्र-पत्रिकाएं नियमित रूप से उनके घर आती थी। घर में भजन-कीर्तन होते रहते थे। बचपन से उनका कविता के प्रति रुझान रखना उनके पिता जी को कतई पसंद नहीं था। मगर उनसे मिलने के लिए घर में महत्वपूर्ण साहित्यकार आया करते थे। उनमें हरिवंश राय बच्चन, पंडित केदार नाथ मिश्रा जैसे प्रसिद्ध साहित्यकारों के नाम शामिल है। पिछले सौ सालों के इतिहास में शिखर आलोचकों द्वारा त्रेता पर विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करना अपने आप में एक उपलब्धि है। जहां महाकाव्य की विधा विलुप्त होती जा रही थी,वहां उन्होंने रामकथा के विभिन्न अज्ञात और उपेक्षित पात्रों को उद्घाटित कर समकालीन विमर्श की धार देकर पारंपरिक साहित्य में नई जान फूंकी हैं। पाश्चात्य परंपरावादी आलोचक टी॰एस॰इलियट के शब्दों में इसे अपने आप में एक उपलब्धि माना जा सकता है। उद्भ्रांत के लेखन का प्रयोजन मानव समाज के अर्धांग की मुक्ति,दलित-उत्पीड़ित समाज में समता और बंधुत्व की स्थापना और सांस्कृतिक क्रांति की कामना करना है। कवि का लक्ष्य सामाजिक प्रबोधन और उन्नयन है।

त्रेता में नारी-मुक्ति,दलित-मुक्ति,प्रबंध-निर्माण,नव्यता,घटना-प्रसंग,पात्रों की चरित्र योजना,अद्भुत कल्पनाशीलता, नवोदय भावना,कलात्मक अभिव्यक्ति इस काव्य को महाकाव्य की गरिमा प्रदान करती है। यह नारी-विमर्श,दलित विमर्श के सामाजिक अभिप्राय में इसे प्रगतिशील चेतना का महाकाव्य माना जा सकता है। कमल भारती ने उद्भ्रांत के महाकाव्य *त्रेता* में दलित चिंतन की गहन पड़ताल की है। उन्होंने *धोबिन* और *शंबूक की मां* पात्रों में कवि की मौलिकता की खोज की है। धोबिन वह है,जिसके कारण राम के द्वारा सीता का निष्कासन होता है। धोबिन साधारण स्त्री है,उसमें स्त्री मुक्ति की आकांक्षा है। रामकथा के इन स्त्री पात्रों का चयन करते समय उन्हें अवश्य इस बात की पीड़ा हुई। शंबूक की जननी के रूप में नई स्त्री पात्र की रचना कर कवि ने दलित-विमर्श को नई दिशा दी है। यदि कवि चाहता तो इस प्रसंग को छोड़ भी सकता था

क्योंकि इससे त्रेता के मूल कथानक पर कोई असर नहीं पड़ रहा था। उसके लिए वह सचमुच में बधाई के पात्र हैं।

त्रेता के समीक्षक डॉक्टर आनंद प्रकाश दीक्षित ने इसे त्रासदी महाकाव्य माना है। उनका मत में पौर्वात्य और पाश्चात्य दोनों काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर त्रेता का परीक्षण करने पर इसे महाकाव्य की श्रेणी में लिया जा सकता है। शिल्प और रस की दृष्टि से भी यह त्रासदी महाकाव्य है। इसका विवेचन करने से पहले हम महाकाव्य की शर्तों पर दृष्टिपात करते हैं,जिसकी आचार्य भामह,दंडी,मम्मट और विश्वनाथ ने अपने-अपने ढंग से विस्तृत व्याख्या की है। उनके अनुसार जिस काव्य में सर्गों का निबंधन हो,जिसमें धीरोदात्त नायक हो,श्रृंगार,वीर,शांत में से कोई एक रस अंगी हो,कथा ऐतिहासिक हो,उसमें नाटकीयता हो,चतुर्वर्ग धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष में से एक फल हो, उस काव्य को महाकाव्य कहते हैं। त्रेता इन कसौटियों पर पूरी तरह खरा उतरता है।

पाश्चात्य मत के अनुसार,*“Epic means a long poem, typically one derived from ancient oral tradition, narrating the deeds and adventures of heroic or legendary figures or the past history of a nation”*

कहने का अर्थ यह है कि दोनों भारतीय और पाश्चात्य मतों के अनुसार त्रेता में व्यक्तिगत चेतना अनुप्राणित होकर समस्त राष्ट्र की चेतना में बदल जाती है,जो कि महाकाव्य की आवश्यक शर्त है। वरिष्ठ साहित्यकार नंदकिशोर नौटियाल के शब्दों में कवि उद्भ्रांत कल्पना के घोड़े पर सवार होकर त्रेतायुग में चले गए और मर्यादा पुरुषोत्तम राम की उस अवधि के स्त्री-विमर्श और सामाजिक उद्देश्यों से प्रभावित होकर वर्तमान में लौटा आए और वहाँ की पीड़ा को अपने महाकाव्य में स्वर दिए। अन्य राम कथाओं में मानव और राक्षस पुरुष पात्रों के विषम परिस्थितियों में कुछ न कर पाने की छटपटाहट जिस गहराई से अभिव्यक्त होती है,उसी छटपटाहट को *त्रेता* में उन्होंने चौबीस स्त्री पात्रों के माध्यम से आज की नारी की विस्फोटक चेतना को ध्यान में रखते हुए स्वर प्रदान किए है। मानवीय मूल्यों के अवक्षय को प्रस्तुत करने वाली उनकी काव्यात्मक रामकथा *त्रेता* आज की शासकीय और सामाजिक विसंगतियों पर करारा कटाक्ष है। आधुनिक पीढ़ी तत्कालीन पाराशरी संस्कार को भूलना चाहती है और आज के युग की विधवाओं पर हो रहे अत्याचारों के समाप्ति की प्रतीक्षा कर रही है। उन विधवाओं को काशी और

वृंदावन के रौरव नरक से मुक्ति दिलाना ही उद्भ्रांत के स्त्री-विमर्श,दलित-विमर्श और अंतिम-व्यक्ति-विमर्श जैसे विषयों को *त्रेता* के माध्यम से जन मानस के समक्ष लाना है। त्रेता युग के ये विषय आज भी कलयुग में चारों ओर फैले हुए हैं। उद्भ्रांत द्वारा युगांतरकारी वैचारिक क्रांति को जन्म देने के संदर्भ में हिन्दी के शिखर आलोचक नामवर सिंह का कहना है कि यह हिंदी में पहली बार हो रहा है,एक कवि रामायण काल की दर्जनों स्त्रियों की कहानियों को एक सूत्र में बांध रहा है और स्त्री पात्रों के माध्यम से समकालीन प्रश्नों और वर्तमान जीवन की विद्रूपताओं और विसंगतियों को सामने लाने का प्रयास कर रहा है। अन्य प्रसिद्ध डॉक्टर खगेंद्र ठाकुर के अनुसार उद्भ्रांत द्वारा मिथकों का अपने साहित्य में इस्तेमाल करना श्रेष्ठ कार्य है।

त्रेता:एक युगीन विवेचन

1. विश्व परिप्रेक्ष्य में रामायण :-

पारंपरिक आस्थाओं के अनुसार जितनी रामायणों के बारे में हमें जानकारी है, सब एक दूसरे की या तो पूरक है या फिर एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। अगर हम ध्यानपूर्वक अपने शास्त्रों का अध्ययन करते हैं तो यह पाते हैं कि अलग-अलग रामायणों में अलग-अलग कथानकों, वृतांतों अथवा दृष्टांतों का उल्लेख मिलता है। भगवान शिव ने जिस रामायण का वर्णन किया है,उसमें सौ हज़ार श्लोक हैं। हनुमान के रामायण में साठ हज़ार, वाल्मीकि के रामायण में चौबीस हज़ार और दूसरे कवियों ने इससे कम श्लोकों के रामायणों की रचना की हैं। अकादमिक विज्ञान वर्ग वाले अधिकांश रामायण को रामकथा अर्थात् राम की अनौपचारिक कहानी मानते हैं, जबकि एक कवि अथवा लेखक द्वारा औपचारिक रूप से लिखे गए कथानकों पर बहुत कम ध्यान देते हैं। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि बहुत सारी रामकथाएँ या रामायण ऐसी हैं, जो एक दूसरे को कुछ हद तक प्रभावित करती हैं। विगत दो शताब्दियों से यूरोप और अमेरिकन स्कॉलर रामायण पर शोधात्मक अध्ययन अलग-अलग तरीके से कर रहे हैं। दुर्लभ रामायणों के अनुवादों का संग्रह कर रहे हैं ताकि रामायण के सुनिश्चित नतीजों को सर्वसुलभ कराया जा सके। जहाँ यूरोपियन स्कॉलर रामायण को नस्लवाद के रूप से देखते हुए औपनिवेशिक काल में शासक के दृष्टिकोण पर ध्यानाकर्षण करते हैं, जैसे आर्य बनाम द्रविड़, उत्तर बनाम दक्षिण, वैष्णव बनाम शैव, पुजारी बनाम राजा आदि, वैसे अमेरिकी विचारक औपनिवेशिक काल के बाद रक्षक की दृष्टि से देखते हुए रामायण के मुख्य कारक जैसे लिंग-भेद अथवा जातीय-संघर्ष, जिसकी वजह से मनुष्य एक राक्षस बनने पर किस तरह आमादा हो जाता है, उन कारणों का विश्लेषण करने के साथ-साथ सामंतवादी शब्दों में अगर कहा जाए तो भक्ति का रूप देखते हैं, जबकि भारतीय शोधार्थी अपने नायकों और देवताओं को न्याय-संगत बताने के चक्कर में प्रतिरक्षात्मक रवैये को अपनाने का प्रयास करते हैं। यही नहीं, आधुनिक स्कॉलर रामायण का सटीक वर्गीकरण करने में भी अपने आपको अक्षम पाते हैं, क्या रामायण वास्तव में ऐतिहासिक ग्रंथ है (जैसाकि दक्षिणपंथी स्कॉलर मानते हैं)? क्या यह समाज के लिए उठाया गया साहित्यिक प्रोपेगंडा है (जैसा कि वामपंथी विचारक मानते हैं)? इसके अलावा, क्या वास्तव में यह भगवान की कहानी हैं, जिसे भक्तगण मानते हैं? क्या केवल मानवीय मस्तिष्क का

कपोल कल्पित खाका है, जिससे आदर्श मानवीय व्यवहार को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया गया है? रामायण की अनेक गाथाओं का विश्लेषण करने पर तीन महत्वपूर्ण दृष्टिकोण सामने आते हैं :-

1) पहला- आधुनिक दृष्टिकोण - जिसके अनुसार वाल्मीकि की संस्कृत में लिखी रामायण मान्यता प्राप्त है।
2) दूसरा-आधुनिकोत्तर दृष्टिकोण- जिसके अनुसार सभी रामायणों की मान्यता बराबर बराबर है।
3) तीसरा-आधुनिकोत्तरोत्तर दृष्टिकोण - इस दृष्टिकोण के अनुसार विश्वास करने वाले के दृष्टिकोण का स्वागत होना चाहिए।

कुछ आलोचक भारतीय मानसिकता पर हजारों सालों से असर डालने वाली इस महाकथा को असंगत (इररेशनल) मानते हैं, जबकि आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य समाज को संगत (रेशनल) बनाना है। सन् 1987 में रामानंद सागर द्वारा निर्मित 'रामायण' पर आधारित सीरियल को जब प्रत्येक रविवार की सुबह दिखाया जाता था तो समूचा देश उस समय के लिए जड़-सा हो जाता था। जहाँ राम जन्मभूमि विवाद ने राष्ट्र के पंथ-निरपेक्ष हृदय को पूरी तरह से कुचल दिया था, वहीं 2013 में इसे भारतीय औरतों की दयनीय अवस्था का प्रमुख कारण माना। इतना होने पर इस महाकाव्य को आधार बनाकर राजनेताओं द्वारा फायदा उठाने, नारीवादी लेखक-लेखिकाओं द्वारा आलोचनात्मक तथ्य खोजने और एकेडेमीशियन द्वारा विखण्डित (deconstructed) मानने के बावजूद भी आज भी लाखों लोगों में आशा व आनंद संचरण करने का स्रोत माना जाता है।

रामायण के साहित्य का चार कालों में अध्ययन किया जा सकता है। पहला काल दूसरी शताब्दी तक का वह है, जब वाल्मीकि रामायण का अंतिम रूप लगभग तैयार हो गया था। दूसरा काल (दूसरी शताब्दी से लेकर दसवीं शताब्दी तक) का है, जब संस्कृत, प्राकृत भाषाओं में अनेकानेक नाटकों तथा कविताओं की रचना हुई। इस काल में बौद्ध तथा जैन परंपराओं में भी राम को खोजने का प्रयास कर सकते हैं, मगर पौराणिक साहित्य में राम को विष्णु के रूप में देखा जा सकता है। तीसरा काल दसवीं शताब्दी के बाद का है, जब इस्लाम के बढ़ते वर्चस्व के खिलाफ रामायण जन-सामान्य की जुबान का ग्रंथ बन गया। इस काल में 'रामायण' ज्यादा भक्तिपरक नजर आया, जिसमें राम को भगवान तथा हनुमान को सबसे प्रिय भक्त एवं दास बताया गया। अंत में, चौथे काल में उन्नीसवीं शताब्दी से रामायण यूरोपियन एवं अमेरिकन दृष्टिकोण से बहुत ज्यादा

प्रभावित होने लगी और आधुनिक राजनैतिक व्यवस्थाओं के आधार पर उचित न्याय पाने के लिए रामायण में Deconstruction, Reimagination तथा decoding शुरू हो गई।

ईसा पूर्व (500 बी.सी से लेकर 200 बी.सी तक) रामकथा मौखिक रूप से यात्रा करती रही है। अनंतर,यह संस्कृत भाषा में रची गई,जिसे लेखन का रूप दिया वाल्मीकि ने, और जिसे आदि काव्य अर्थात् पारम्परिक तौर पर प्रथम कविता के रूप में गिना जाता है। परवर्ती सारे कवि वाल्मीकि को राम की कविता का जनक मानते है। वाल्मीकि के इस कार्य को यायावर (घुमक्कड़) जातियों ने चारों तरफ फैलाया। उनके इस मौलिक काव्य में मुख्य दो रूप से कार्य प्राप्त होते हैं, पहला उत्तर और दूसरा दक्षिण। पहले सात अध्यायों में राम का बचपन और अंतिम अध्यायों में राम द्वारा सीता का परित्याग दर्शाया गया है। तत्कालीन ब्राह्मणों ने इस कथा को संस्कृत में लिखने का घोर विरोध किया, मगर मौखिक परंपरा (श्रुति) को जारी रखा,जबकि बौद्ध और जैन स्कॉलरों ने मौखिक शब्दों की तुलना में लिखना ज्यादा पसंद किया। इससे इस अनुमान को बल मिलता है कि पहली बार रामकथा का उल्लेख पाली और प्राकृत भाषा में किया गया। प्रांतीय रामायणों की रचना की शुरुआत दसवीं सदी के बाद होती है। सबसे पहले दक्षिण भारत में बारहवीं सदी में, फिर पूर्वी भारत में पंद्रह सदी में तथा बाद में 16वीं शताब्दी में उत्तर भारत में प्रांतीय रामायणों की रचना हुई। महिलाओं की अधिकांश रामायण मौखिक होती थी। उनका मुख्य उद्देश्य घरेलू परंपराओं तथा अन्य पर्वों पर आधारित गानों में प्रयोग करना होता था। यद्यपि यह बात भी सही है कि सोलहवीं शताब्दी में दो महिलाओं ने रामायण लिखी- तेलुगु में मोआ तथा बंगाली में चंद्रावती ने। रामायण लिखने वाले अधिकांश पुरुष लेखक अलग-अलग गतिविधियों से संबंध रखते थे। बुद्ध रेड्डी (जमींदार घर से), बलराम दास और सारला दास (पिछड़ी जाति से) तथा कंबन मंदिर में संगीत बजाने वाली जातियों से संपृक्त थे। सोलहवीं शताब्दी में मुगल सम्राट अकबर ने अपनी जनता की संस्कृति का ध्यान रखते हुए रामायण का अनुवाद संस्कृत से पर्सियन में करने का आदेश दिया तथा चित्रकारों को इस महाकाव्य को पर्सियन तकनीकी का प्रयोग करते हुए रेखांकित करने का भी हुकमनामा जारी किया। रामायण के ये सारे चित्र राजस्थान, पंजाब, हिमाचल प्रदेश के राजाओं के महलों की नक्काशी में आसानी से देखे जा सकते हैं।

भारत में आज भी अनेक गाँव और ऐसे कस्बे हैं, जो रामायणकालीन घटनाओं की याद दिलाते हैं। उदाहरण के तौर पर मुंबई का 'बाणगंगा तालाब' राम के बाण से खुदा हुआ तालाब माना जाता है। भारत में अधिकांश अवसरों पर राम के गीत गाए जाते हैं, कहानियाँ सुनी-सुनायी जाती हैं, नाटकों का प्रदर्शन किया जाता है, अथवा कपड़ों की

पेंटिंग या मंदिर की दीवारों पर भास्कर्य के रूप में त्रेताकालीन घटनाओं का ब्यौरा प्रस्तुत किया जाता है अथवा उन घटनाओं का वाचन भी किया जाता है। प्रत्येक कला का अपना अलग-अलग महत्व होता है। आज के उत्तरप्रदेश के देवगढ़ मंदिर के गुप्त साम्राज्य के दौरान सोलहवीं शताब्दी के आस-पास के समय की राम की iconography भी मिलती है, जिनमें राम को विष्णु के मानव- अवतार के रूप में दिखाया गया है। सत्रहवीं शताब्दी में पहली बार तमिलनाडु के अलावर भक्तों ने राम से संबंधित भक्ति गीतों की रचना की। जैसा कि सर्व विदित है, बारहवीं शताब्दी में भक्ति के ज्ञान के द्वार सामान्य-जन के लिए पूरी तरह से खोले गए थे और संस्कृत कमेंटरी के रूप में वेदान्त-दर्शन के अनुरूप राम भक्ति को विशिष्ट स्थान प्रदान किया गया। चौदहवीं शताब्दी में उत्तर भारत में रामानन्द ने रामभक्ति का प्रचार-प्रसार किया और सत्रहवीं शताब्दी में रामदास ने इस कार्य को पूर्ण किया। रामानुज (राम का छोटा भाई), रामानंद (राम का आनंद) और रामदास (राम का दास यानि नौकर) आदि नामकारणों में राम का महत्व स्वतः उजागर हो जाता है। राम के नाम का महत्व हमारे देश की सीमाओं को तोड़कर अंतरराष्ट्रीय धरातल पर भी छाने लगा था। जहाँ तिब्बत के विद्वानों ने आठवीं शताब्दी में रामायण की कहानियों की रिकॉर्डिंग का काम किया, वहीं पूर्व में मंगोलिया तथा पश्चिम के मध्य एशिया के खोतान में भी यह ट्रेंड देखने को मिलता है। इस तरह राम की यह कहानी भारतीय उप महाद्वीप से बाहर निकलकर विश्व-व्यापी होने लगी और देखते-देखते दक्षिण पश्चिम एशिया के अनेक भू-भागों में अत्यंत ही प्रभावोत्पादक ढंग से तत्कालीन मसालों और फेब्रिक्स के व्यापारियों द्वारा एशिया में फैली। जहाँ भारत के इस भक्ति आंदोलन के तत्वों का पूर्णतया अभाव था। जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि यह प्रसार 10वीं शताब्दी के पूर्व में हुआ। लाओस की रामायण बौद्ध धर्म से संपृक्त है, मगर थाईलैंड की थाई रामायण (रामकियन) हिन्दू प्रतीत होती है, भले ही, वह बैंकाक के एमराल्ड बौद्ध मंदिर के प्राचीरों पर अंकित क्यों न हो। 14वीं से 18 वीं शताब्दी में थाई साम्राज्य (जब तक यह नष्ट नहीं हो गया) था, राजधानी ययुध्या(अयोध्या) के नाम से विख्यात थी और उनके राजाओं के नाम राम के आधार पर पाए जाते थे। इसी तरह दक्षिण पश्चिमी एशियाई देशों में इण्डोनेशिया और मलेशिया की सांस्कृतिक विरासत में भी इस्लाम के प्रादुर्भाव होने के बाद भी रामायण उसका हिस्सा बना रहा। आज भी उनकी रामायण की कहानियों में रावण के नाश करने की कहानियाँ मिलती हैं। यहाँ तक कि भारत की प्रांतीय भाषाओं में भी रामायण के अनुवाद अथवा पुनः सृजन देखने को मिलता है। उदाहरण के तौर पर तमिल में कंबन, मराठी में एकनाथ, ओड़िया में बलराम दास की दांडी रामायण, सारला दास का विलंका रामायण, उपेन्द्र भंज की वैदेहीश विलास तथा विश्वनाथ खुंटिया के विचित्र रामायण आदि के अनेकानेक संस्करण देखने को मिलते

हैं। अगर रामायण की रचना अवधि पर प्रकाश डाला जाए तो हमें सबसे पहले ईसा पूर्व 200 साल की तरफ देखना होगा, जब यायावरों द्वारा इस कथा का मौखिक गायन होता था, फिर वाल्मीकि ने संस्कृत भाषा में इसे लिपिबद्ध किया और उसके बाद सन् 100 से सन् 300 के बीच वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत में रामोपाख्यान, भाषा का संस्कृत में प्रतिमा नाटक, संस्कृत में विष्णु पुराण, प्राकृत भाषा में विमल सूरी का पाउम् चरियम, कालिदास रचित रघुवंशम् देखने को मिलते है। यही कथा सन् 500 से सन् 1000 के मध्य बौद्ध धर्म का 'दशरथ जातक', देवगढ़ मंदिर की दीवारों पर राम के चित्र, भवभूति का संस्कृत नाटक 'महावीर चरित', मुरारी के संस्कृत नाटक 'अनर्गराघव', सन् 1100 से सन् 1500 के मध्य राजा भोज द्वारा रचित 'चंपू रामायण', कम्बन की तमिल इरामावतारम, बुद्धा रेड्डी की तेलुगु 'रंगनाथ रामायण', कृतिवास का बंगला रामायण, कण्डाली का आसामी रामायण, बलरामदास का ओड़िआ दांडी रामायण के अतिरिक्त संस्कृत भाषा के आनंद रामायण, अवधूत रामायण व अध्यात्मिक रामायण प्रमुख हैं। सन् 1600 से 2000 के बीच तुलसीदास की अवधी रामायण, रामायण की पेंटिंगों का अकबर द्वारा संग्रह, एकनाथ का मराठी 'भावार्थ रामायण', तोरावेद का कन्नड रामायण, एजुयाचन की मलयालम रामायण, गुरुगोविंद सिंह का पंजाबी 'गोविंद रामायण' (दशम ग्रंथ का एक हिस्सा), गिरिधर का गुजराती रामायण, द्वारिका प्रकाश का कश्मीरी रामायण, भानुभक्त के नेपाली रामायण के अतिरिक्त सन् 1921 में हिन्दी में सती सुलोचना पर मूक फिल्म, सन् 1943 में फिल्म 'रामायण' (महात्मा गांधी द्वारा देखी गई एक मात्र फिल्म), सन् 1955 में रेडियो पर मराठी में गीत रामायण, 1970 में अमर कथाचित्र पर राम के कॉमिक्स, सन् 1987 में फिल्म निदेशक रामानन्द सागर का रामायण पर धारावाहिक तथा सन् 2003 में अशोक बेंकर द्वारा लिया गए उपन्यासों की शृंखला ने राम की इस कथा को और आगे बढ़ाया।

सन् 2007 में उद्भ्रांत जी द्वारा रचित रामकथा का प्रथम हार्ड बाउंड संस्करण 'त्रेता' (महाकाव्य) के रूप में नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली द्वारा वर्ष 2009 में प्रकाशित हुआ। समय की मांग के अनुरूप त्रेतायुगीन राम राज्य की महिलाओं पर महाकाव्य को अलग रूप से प्रतिपादित कर उद्भ्रांत जी ने महिला विमर्श पर आधुनिक दृष्टिकोण डालते हुए भवानी, अनसूया, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, ताड़का, अहिल्या, मंथरा, श्रुतकीर्ति, उर्मिला, मांडवी, शांता, सीता, शबरी, शूर्पनखा, तारा, सुरसा, लंकिनी, त्रिजटा, मंदोदरी, सुलोचना, धोबिन, शंबूक की जननी आदि का एक ही कैनवास पर चित्र उकेर कर तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और आध्यात्मिक चेतना के स्वरों में महिलाओं की भूमिका पर इस तरह निरपेक्ष भाव से दृष्टि डाली है कि सही अर्थ तक

पहुँचने के लिए आपको इस महाकाव्य को अनेक बार पढ़ना होगा, क्योंकि कवि ने मिथकीय चरित्रों में कई बार मानवीय गुणों को खोजने की भरसक चेष्टा की है। सोने के हिरण के प्रति सीता की लालसा, हनुमान का उड़कर नहीं वरन् तैरकर समुद्र पार करना, कैकेयी पर दशरथ के आसक्त होने के अतिरिक्त शंबूक की जननी का चरित्रांकन कर तत्कालीन समाज में व्याप्त जातिवाद तथा राम जैसे राजा को उनकी मंत्री-परिषद द्वारा न्याय मांगने शंबूक की जननी की बात अच्छी तरह सुने बिना जंगल में जाकर शंबूक की तपस्थली पर ही हत्या कर देने जैसे वीभत्स कार्य को सामने लाने में कुछ भी हिचकिचाहट कवि ने अनुभव नहीं की। यह महाकाव्य पढ़ने के बाद मेरे भीतर उद्भ्रांत जी की छबि धार्मिक धरातल को पार करती हुई कार्ल मार्क्स की "दास कैपिटल" में वंचितों द्वारा अपने अधिकार प्राप्त करने की पृष्ठभूमि में नज़र आने लगी। अंधी भक्ति में बहे बिना तथा अग्रजों द्वारा खींची गई लकीर को मिटाये बिना उन्होंने उन्हीं पात्रों को समसामयिक धरातल पर स्थापित करते हुए सामाजिक कुरीतियों से ऊपर उठने का आह्वान किया है।

<u>त्रेता की समयावधि:</u>

त्रेता शब्द पढ़ते ही मन के भीतर त्रेता युग की प्रतिच्छाया नज़र आने लगती है और तरह-तरह के सवालों के झंझावात पैदा होने लगते हैं, आखिर 'त्रेता युग' कहते किसे हैं?

गीता के अध्याय - श्लोक 17 में युग की परिभाषा का विस्तृत उल्लेख मिलता है। जिसके अनुसार 'सूक्ष्म काल' को 'परमाणु' के नाम से जाना जाता है। उसके बाद उत्तरोत्तर बढ़ते हुए समय की शृंखला में अणु, त्रेषरेणु, त्रुटि, वेद, लव, निमेष, क्षण, काष्ठा, नाडिका के नाम से माना जाता है। फिर और आगे बढ़ने पर हम देखते हैं कि नाडिका से प्रहर, प्रहर से दिन, पक्ष, मास, अयन एवं वर्ष बनते हैं। वर्षों की समायावधि युग में बदलती है। एक चतुर्युग में सतयुग, त्रेता युग, द्वापर युग और कलियुग शामिल होता है, जिनकी अवधि वर्षों की ईकाई में क्रमशः 4800, 3600, 2400, 1200 होते हैं। समय मापने की कहानी यहीं खत्म नहीं होती वरन् और आगे जाती है जिसके अनुसार एक मानव वर्ष देवताओं के एक दिन-रात के तुल्य होता है, 30 मानव वर्ष देवताओं के महीने के तुल्य, 360 मानव वर्ष को देवताओं का 1 वर्ष कहा जाता है और देवताओं के 12000 वर्ष अथवा 43,20,000 मानव वर्ष को 'दिव्य युग/महायुग/चतुर्युग' कहा जाता है। इस तरह सहस्र युग पर्यन्तम् अथवा युग सहस्रान्त का अर्थ एक हज़ार चतुर्युग की अवधि वाला

समय है। क्या इस आधार को वैज्ञानिक आधार माना जा सकता है? मुझे तो इस पर विशेष चर्चा नहीं करनी चाहिए। मगर 'त्रेता' शब्द से झंकृत समयावधि को जानने की उत्सुकता हमेशा मेरे मन में बनी रही। उद्भ्रांतजी के इस महाकाव्य ने युग की परिभाषा खोजने के बहाने अपने अतीत काल का अवलोकन कर सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक पराकाष्ठा से संपन्न त्रेता युग की मुख्य धारा से जोड़कर आधुनिक (कलियुग) की गतिविधियों में पारंस्परिक ताल-मेल तथा तुलनात्मक अध्ययन के लिए प्रेरित किया, जब तक कि त्रेता युग के फ्लैशबैक में जाने के कोई संतोषजनक ठोस आधार प्राप्त न हो जाए। प्रथम दृश्ट्या गीता में दिये गए युग की परिभाषा का खंडन स्वामी दयान्द सरस्वती द्वारा रचित "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" के "वेदोत्पत्ति विषय" के अंतर्गत देखने को स्पष्ट तरीके से मिलता है। जिनके अनुसार एक वृंद, छियानवे करोड़, आठ लाख, बावन हज़ार नव सौ छहत्तर अर्थात् (1,96,08,52,976) वर्ष वेदों और जगत की उत्पत्ति को हो गए हैं और यह संवत् सतहत्तरवाँ (77वाँ) चल रहा है।

"जब स्वामी दयानन्द सरस्वती से यह पूछा गया कि आपने यह कैसे निश्चित किया कि जगत की उत्पत्ति के इतने वर्ष हो गए हैं?"

तब उन्होंने उत्तर दिया, "वर्तमान सृष्टि सातवें वैवस्वत मनु का वर्तमान है, इससे पूर्व छह मनवंतर हो चुके हैं, स्वयम्भुव, स्वरोचिष, औत्वभि, तामस, रैवत, चाक्षुष। ये छह बीत गए है, सातवाँ वैवस्वत चल रहा है और सवार्ण आदि सात मन्वंतर आगे आएंगे। कुल मिलाकर चौदह मनवंतर होते हैं और एकहत्तर चतुयुर्गियों का नाम मनवंतर होता है। सो उनका गठन इस प्रकार से हैं कि सत्तरह लाख, अट्ठाइस हज़ार वर्षों का नाम सतयुग (17,28,000), बारह लाख छियानबे हज़ार वर्षों का नाम त्रेता (12,96,000), आठ लाख चौसठ हज़ार वर्षों का नाम द्वापर (8,64,000) और चार लाख, बत्तीस हज़ार वर्षों का नाम कलियुग (4,32,000) रखा है। यही नहीं, आर्यों ने एक क्षण और निमेष से लेकर एक वर्ष पर्यंत के काल को सूक्ष्म और स्थूल संज्ञाओं से बांधा है और इन चारों युगों के तियालीस लाख, बीस हज़ार वर्ष होते हैं, जिनका चतुर्युगी (43,20,000) नाम है। एकहत्तर चतुर्युगी के अर्थात् तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हज़ार वर्षों की एक मन्वंतर (30,62,0000) की संज्ञा है और ऐसे ऐसे छह मन्वंतर मिलकर अर्थात् एक अरब चौरासी करोड़ तीन लाख बीस हज़ार वर्ष हुए और सातवें मन्वंतर के योग में यह अट्ठाइसवीं चतुर्युगी है। इस चतुर्युग के कलियुग के चार हज़ार नौ सौ छिहत्तर (4976) वर्षों का भोग हो चुका है और बाकी 4,27,024 का भोग होना बाकी है। जानना चाहिए कि 12,05,32,976 वर्ष वैवस्वत मनु के भोग हो चुके है और 18,61,27,024 वर्षों का भोग बाकी है।

इस तरह स्वामी दयानन्द सरस्वती जिस आकलन को समर्थन करते नजर आते हैं, वह यहीं पर समाप्त नहीं होता वरन कुछ और परिभाषाओं को अपने साथ जोड़ते है। जैसे कि एक हज़ार चतुर्युग का अर्थ एक ब्रहमदिन और उतने ही चतुर्युग एक ब्रहमरात्रि होती है। इसलिए ईश्वर सृष्टि उत्पन्न कर एक हज़ार चतुर्युग पर्यंत बनाकर रखता है और एक हज़ार चतुर्युग तक सृष्टि को मिटाकर रखता है, जिसे ब्रहमरात्रि कह सकते हैं।

अगर आप उपरोक्त बातों में विश्वास नहीं करते हों, नहीं ही सही। अब हम विज्ञान के दृष्टिकोण से त्रेता युग की अवधिकाल की खोज करेंगे, इसके लिए ज्योलोजिकल टाइम स्केल के अनुसार सृष्टिक्रम को दो EON में बांटा गया है। सबसे पुराना क्रिप्टोजोइक इओन (cryptozoic eon) जिसमें पृथ्वी निर्माण से छह सौ मिलियन वर्ष की समयावधि शामिल है। जबकि दूसरा phanerozoic EON है जिसमें छह सौ मिलियन वर्ष से आज तक का समय लिया जाता है। क्रिप्टोजोइक प्रिकेम्ब्रियन समय है जिसमें primitive plant, स्पांज प्रजाति तथा जेली फिश जैसे जानवरों का निर्माण हुआ। जबकि फनेरोज़ोइक EON में तीन युग आते हैं, Paleozoic, Mesozoic और Cenozoic। अगर तीन युगों को पीरीयड में बांटा जाए तो पेलियोजोइक में पर्मियन, पेंसिल्वानियन, मिसीसिपीयन, डेनोनियन, स्केलिरियन, ओरडोविसियन, केब्रियन, तथा मेसोजोइक युग में क्रिटेशियस, केम्ब्रियन तथा मेसोजोइक युग में क्रिटेशियस, जुरैसिक तथा ट्राइसिक एवं सेनोजोइक में क्वार्टसरी व टर्शरी आते है। इस विभाजन के अनुसार करो मेगनन मेन की उत्पत्ति सेनोजोइक युग में होती है, जो आज से 60-65 मिलियन अर्थात् 600-500 लाख वर्ष पूर्व की बात है। जबकि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के आकलन से 1960 लाख वर्ष पहले जगत और वेदों की उत्पत्ति हुई। अगर हम दोनों केलकुलेशनों का औसत अर्थात् 1280 लाख वर्ष को आता है। इसके हिसाब से 1280-120=1160 लाख वर्ष पूर्व त्रेता का प्रतिपादन हुआ था। जो कि प्राप्त साक्ष्यों के अनुरूप गलत ठहरता है, क्योंकि शोध के अनुसार रामायण के बारे में 4000-5000 वर्ष पूर्व के प्रमाण प्राप्त होते हैं। त्रेता पर कुछ लिखने से पूर्व मेरी जिज्ञासा त्रेता की कालावधि जानने की रही है, ताकि तत्कालीन समाज के बारे में कुछ सोच विचार किया जा सके। अगर विज्ञान की बात मानें तो रिचार्ड ओवरी की प्रसिद्ध पुस्तक “द कंप्लीट हिस्ट्री ऑफ द वर्ल्ड” के अनुसार आधुनिक मनुष्य के पूर्वज होमीनीन की उत्पत्ति ग्लोबल कूलिंग की वजह से 50-60 लाख वर्ष पहले परिवेश में परिवर्तन होने के कारण मांसाहारी व सर्वाहारी प्राणियों के रूप में हुई। मनुष्य के प्राप्त जीवाश्मों पर के अध्ययन अनुसार Austrolopthesius, Homohabills, Homoerectous, Homoheidal bergenus तथा Homosapian(Motera human) आदि के परिवर्तनों में लंबी समयावधि लगी। पाँच

मिलियन वर्ष से आधुनिक मनुष्य की खोपड़ियों में मस्तिष्क का आकार लगातार वृद्धि करता नजर आ रहा है। Austrolopthecius मनुष्य में आधुनिक मनुष्य के मस्तिष्क आकार का एक तिहाई होता था। और अगर यू देखें तो DNA के अध्ययन के अनुसार आधुनिक मानव यानि होमोसेपियन की उत्पत्ति अफ्रीका में डेढ़-दो लाख वर्ष पूर्व हुई। यद्यपि उनकी उत्पत्ति और विस्तार के बारे में अभी भी अनुसंधान कार्य शेष है, लेकिन तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 28 हजार साल पूर्व मनुष्य जाति के रूप में होमोसेपियन ने जन्म लेकर विश्व में अपनी उपस्थिति दर्ज करा ली थी। और दस हजार वर्ष पूर्व मनुष्य ने विश्व में कॉलोनी निर्माण का कार्य शुरु कर दिया था। अनेकों बर्फ युग की शृंखलाओं ने मनुष्य जाति को विविध वातावरण में बदलाव सहन करने के लिए सक्षम बना दिया था, मनुष्य ने शिकार करने के साथ-साथ खेती एवं पशुपालन करना सीख लिया था। कृषि की इस उत्पत्ति को "निओलियिक रिवोल्यूशन" कहा जाता है।

विश्व इतिहास के अनुसार कृषि पूर्वी यूरोप से होते हुए मेडिटेरियन कोस्ट तथा सेंट्रल यूरोप से होते हुए चार हजार ई.पू. तक ब्रिटेन में पहुँचकर वहाँ से बाल्टिक यूरोपियन रशिया के अलग-अलग हिस्सों में फैली।

भारत इतिहास की सबसे पुरानी सभ्यताओं का एक घर रहा है, जो सभ्यता सिंधु नदी के किनारे पल्लवित हुई। सिंधु घाटी की संस्कृति तथा वैदिक संस्कृति ने परवर्ती भारतीय समाज को विकास का आधार बनाकर मुख्य धार्मिक प्रणालियों में जैसे हिन्दू, बौद्ध, जैन आदि को जन्म दिया। यद्यपि भारत के उस इतिहास के बारे में बताना अत्यंत ही कठिन है, मगर पुरातत्व विज्ञान के अनुसार तत्कालीन सामाजिक जीवन के बारे में यह अवश्य कहा जा सकता है कि 1200 ई.पू. के बाद की शताब्दियों में वेदों का निरूपण हुआ होगा, मगर 5वीं शताब्दी तक वेद लिखित रूप में सामने नहीं आए थे। इस तरह गंगा के ऊपरी भागों में इण्डो आर्यन सेटलमेंट स्थापित हो रहे थे।

जवाहरलाल नेहरू की प्रसिद्ध पुस्तक *"विश्व इतिहास की झलक"* के अनुसार भारत के प्रारंभिक इतिहास का अध्ययन हमारे लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है क्योंकि आदि आर्य(इण्डो आर्यन) ने कभी भी इतिहास लिखने में ध्यान नहीं दिया, मगर उन लोगों के रचे गए ग्रंथ वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत उनकी उत्पन्न कृतियाँ है। इन ग्रंथों के अध्ययन से हमें भले ही, अपने पूर्वजों के रीति-रिवाज, रहन-सहन और सोच-विचार करने के ढंग का पता चलता है, मगर यह इतिहास नहीं है। संस्कृत में वास्तविक इतिहास की पुस्तक कश्मीर के इतिहास पर है, लेकिन वह बहुत पुरातन जमाने की है, उसका नाम है 'राज तरंगिणी'। इसमें कश्मीर के राजाओं का सिलसिलेवार हाल का वर्णन है और यह कल्हण की लिखी हुई है।

इस जानकारी से हमारे मन में एक सवाल अवश्य उठता है कि क्या त्रेताकालीन सभ्यता वास्तव में थी? क्या रामायण अथवा महाभारत के पात्र आर्यों के वंशज थे या किसी दूसरी सभ्यता के पुरोधा थे ? यह भी तो हो सकता है हम उन पुराने लोगों के ठेठ वंशज हैं जो उत्तर पश्चिम के पहाड़ी दर्रों से होकर उस लहलहाते हुए मैदान में आए जो कालांतर में ब्रहमवर्त, आर्यावर्त, भारतवर्ष तथा हिंदुस्तान कहलाया।

क्या राम का तत्कालीन समाज हड़प्पा और मोहन-जो-दड़ो की सभ्यता का परिचालक है अथवा इससे पूर्व का? क्या जिस युग में वाल्मीकि ने रामायण लिखी, वह युग उपर्युक्त सभ्यता की उत्कृष्टता का द्योतक है? क्या रामराज्य से पूर्व वेदों की रचना हो चुकी थी? शायद धीरे-धीरे इस धर्म में अश्वमेघ, पशुबलि, बहु-विवाह, औरतों पर अत्याचार जैसी कई कुरीतियों का समावेश हो गया था।

दूसरा सर्ग

रेणुका की त्रासदी

त्रेता महाकाव्य का द्वितीय सर्ग है 'रेणुका', जिसके अंतर्गत कवि उद्भ्रांत ने तत्कालीन समाज में रेणुका के माध्यम से नारी की स्थिति का अवलोकन करते हुए उनके सतीत्व की महत्ता पर प्रकाश डाला है। इस प्रसंग में रेणुका अपने जीवन के प्रसंगों को आत्म कथात्मक रूप से प्रकट करती है। जैसे:- सूर्यवंशी राजा कि नटखट किरणपुत्री/राजकुमारी के रूप में/जन्म लिया मैंने। और रेणुका नाम के पीछे छुपे रहस्य को प्रकट करते हुए वह कहती है कि उसका निर्मल सौन्दर्य प्रातः की किरण की तरह था इसलिए ज्योतिषियों ने उसका नाम "रेणुका" रखा। बचपन की चपलता, चंचलता, लाड़-प्यार में पली होने के कारण उसका बचपन शैतानियों से भरा हुआ होता था। एक बार जब उसने देखा कि उसके पिताजी किसी ऋषि के सामने उनके चरणों में गिर कर क्षमा याचना कर रहे थे तो उसे बर्दाश्त नहीं हुआ और उसने ऊँची आवाज में पिता से इस बारे में सवाल पूछा कि ऐसा आपने क्या अपराध किया,जो उनके सामने गिड़गिड़ा रहे हो। मगर उसके पिता ने रेणुका को समझाने के बजाय उस ऋषि जमदग्नि के साथ विवाह का प्रस्ताव रखा। यहाँ पर यह बात उठती है कि तत्कालीन समाज में ब्राह्मणों का वर्चस्व इस कदर ज्यादा था कि राजा-महाराजा भी उनसे थरथर काँपते थे और अपनी बेटियों तक को उनके समक्ष शादी के लिए प्रस्तुत कर देते थे। यही नहीं, उसमें अपने गर्व कि अनुभूति महसूस करते थे तभी तो कवि उद्भ्रांत लिखते हैं- यदि मेरी प्रार्थना स्वीकारने की/अनुकंपा हुई तो/पुत्री का धन्य होगा जीवन/सूर्यवंशी कन्या को/मिलेंगे ब्राह्मणों के/उच्चतम संस्कार भी। साथ ही साथ, कवि उस बालिका के मन में उठ रहे अंतर्द्वन्द्व को प्रस्तुत करने में पीछे नहीं रहते हैं कि बिना उसकी अनुमति के इस तरह का प्रस्ताव रखना क्या पिता के लिए उचित था/ अगर यह उचित था तो क्या ऋषि जमदग्नि द्वारा इस प्रस्ताव को मान लेना शोभनीय कार्य था/ इस कविता में भृगु ऋषि का भी जिक्र किया गया है कि उनके प्रतापी वंशज जमदग्नि थे। सवाल यह उठता कि क्षत्रिय संस्कार क्या इतने नीचे गिर चुके थे कि वर्ण-व्यवस्था का पालन किए बिना विवाह कर सकते थे। रेणुका आगे कहती है कि उसके चार पुत्र हैं। सबसे छोटा पुत्र जिसे वह राम कहती थी, पिता की तरह संस्कारवान, वेदवेत्ता, शास्त्रज्ञ, तपस्वी, वाक्पटु, गंभीर होने के बावजूद भी रक्त में क्षत्रिय संस्कार होने के कारण उसके चेहरे पर भयानक क्रोध दमदमाता था। उसका सबसे प्रिय शस्त्र था परशु और वह महादेव का परम भक्त था और उसकी माता-पिता के प्रति अगाध श्रद्धा भी थी। जब ब्राह्मण समाज उसे भगवान राम के नाम से संबोधित करता था तो उसे उसकी माँ रेणुका को अत्यंत ही हर्ष होता था। बचपन में एक क्षत्रिय राजा ने उसके पिता का

अपमान किया तब उसने अपने परशु से धड़ अलग करने की शपथ ली थी। वह इतना जिद्दी हो चुका था कि लाख बार रोकने के बाद भी लगातार इक्कीस हत्याएँ कर दी थी। रेणुका को इस बात की कल्पना न थी कि क्षत्रियों के प्रति उसकी यह नफरत जानलेवा साबित हो सकती है। उसे क्या पता था कि पास की किसी नदी में अप्सराओं के साथ गंधर्वों को वस्त्र रहित स्नान करते देखने का दंड उसे अपनी गर्दन कटा कर चुकाना होगा। जब ऋषि को यह पता चला कि उसकी पत्नी गंधर्वों की कामलीला देख रही है तो वह अपना आपा खो कर उस पर दुराचरण का आरोप लगाए हुए अपने सभी बेटों से एक-एक कर उसका वध करने का आदेश देते हैं। मगर बड़े तीन भाइयों के भयाक्रांत होने के बाद उनकी आज्ञा मानने से इंकार करने पर पर्शुराम पितृ भक्ति में अंधे हो कर, उचित-अनुचित का भेद जाने बिना अपनी माता का वध कर देते हैं। उसे तो यह भी पता नहीं कि उस स्त्री ने उसे इस धरती पर लाने के लिए अपनी कोख में नौ महीने रखकर अपने रक्त-मज्जा से पोषित किया था। आप कल्पना कर सकते हैं कि अपना अंतिम क्षण जानकर भी रेणुका ने उसे चिरंजीवी रहने का असीम आशीर्वाद दिया। यह था त्रेता का प्रथम चरण जहाँ इतिहास अधोन्मुख हो जाता है, मनु संहिता लागू होने लगती है। मगर सृष्टि के गर्भ में समाए हुए अनेक रहस्य धीरे-धीरे हजारों सवाल हमारी वर्तमान पीढ़ी के समक्ष प्रस्तुत करते है, उदाहरण के तौर पर:-

1) क्या नारी को काम संबंधित अपनी भावनाओं को प्रकट करने का या अनुभव करने का लेश मात्र भी अधिकार नहीं होना चाहिए?सरोजिनी साहू की कहानी 'रेप' में नायिका अपने पति को सपने में किसी दूसरे आदमी से यौन संबंध बनाने के बारे में कहती है तो वह उसके साथ ऐसा व्यवहार करने लगता है मानो किसी ने उसके साथ 'रेप' किया हो।

2) क्या वही वर्ग-व्यवस्था तत्कालीन समाज को नाश कर रही थी,जो आज भी विनाश का मुख्य कारण है? एक ब्राह्मण तथा क्षत्रिय से उत्पन्न संतान वर्ण संकर बनकर समाज संहारक बन सकती है? गीता का श्लोक "चातुर्वर्णय मया सृष्टि..." इस बात की पुष्टि नहीं करती?

3) क्या तत्कालीन समाज में एक राजा अपने स्वार्थ की खातिर अपनी बेटी को किसी बूढ़े आदमी को दान कर अपने संस्कारी होने की दुहाई देता है?मनुसंहिता के अनुसार राजा को भगवान मानना उचित था?

कवि उद्भ्रांत इस कविता के माध्यम से यह साबित कर देते हैं कि जो समस्याएँ कलियुग में हैं, वे सारी समस्याएँ त्रेता युग में भी थीं, शायद कुछ ज्यादा ही। देवदत्त

अपनी पुस्तक “इंडियन माइथोलोजी” में रेणुका के संदर्भ में एक कहानी के माध्यम से ऐसे ही कुछ विचार प्रस्तुत करते है। जब पर्शुराम अपनी माँ को कुल्हाड़ी लेकर मारने के लिए दौड़ रहा था तो वह अपने को बचाने के लिए एक निम्न जाति के परिवार में शरण लेती है। यह सोचकर कि उसका ब्राहमण बेटा वहाँ प्रवेश नहीं करेगा, मगर ऐसा नहीं होता है, उसने न केवल रेणुका का सिर काटा वरन् उसको बचाने आई एक निम्न जाति की महिला का भी सिर काट लिया। जब पर्शुराम ने अपनी माँ को जिंदा करने के लिए अपने पिता से वर मांगा तो उन्होंने अभिमंत्रित जल दिया,मगर उत्तेजनावश पर्शुराम ने निम्न जाति की महिला का सिर अपनी मां के धड़ से जोड़ दिया और अपनी मां का सिर दूसरी महिला के धड़ से जोड़ दिया। जमदग्नि ऋषि ने पहले वाले शरीर को स्वीकार किया और दूसरे शरीर को निम्न जाति के लोगों के पूजा-पाठ के लिए छोड़ दिया। जिसे ‘येलम्मा’ के नाम से जाना जाता है। महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्रा के गांवों में किसान ऊँची जाति वाले रेणुका के सिर की पूजा करते है। रेणुका और येलम्मा दोनों अपने पति द्वारा प्रताड़ना को प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त, उद्भ्रांत के दूसरे सर्ग की यह कविता तत्कालीन समाज में व्यभिचारिणी पत्नी पर अविश्वास, अपराध पर दंड की क्रूरता, उच्च जाति के हिंदुओं की कठोरता, निम्न जाति के हिंदुओं की नम्रता, संवेदनाओं और नैतिकता के उतार-चढ़ाव को प्रस्तुत करती है। यद्यपि यह कहानी संस्कृत साहित्य में नहीं दी गई है, मगर मनोविज्ञानियों द्वारा इसे अभी जोड़ दिया गया है। क्योंकि अधिकतर शक्तिशाली कथानक एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी में मौखिक रूप से जाते हैं न कि शास्त्रों के द्वारा। रेणुका के सिर और धड़ की पूजा येलम्मा, एकवे और हुलिगम्मा के रूप में की जाती है। यह तीर्थ कुख्यात है और आजकल अवैध भी, क्योंकि यहाँ पर देवदासी के नाम से जवान लड़कियों को वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य किया जाता है। पर्शुराम का यह संदर्भ तत्कालीन मनुष्यों में लूटपाट, चोरी जैसी लोक-प्रवृति को उजागर करता है। उदाहरण के तौर पर त्रेता में रावण ने सोने के हिरण के माध्यम से सीता को प्राप्त करना चाहा, कैकेयी ने अपने पुत्र के लिए अयोध्या का राजसिंहासन तथा कार्तवीर्य ने पर्शुराम के पिता जमदग्नि से नंदिनी गाय को प्राप्त करना चाहा। दूसरी बात, पर्शुराम की यह कहानी पितृसत्ता का बोध करती है जिसमें स्त्रियों तथा मवेशियों को संपत्ति के रूप में गिना जाता था। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में राजाओं और साधुओं के बीच में संघर्ष चला आ रहा था। ब्राहमण ग्रन्थों के अनुसार पर्शुराम विष्णु का उग्र अवतार है जो नियम बनाता है, वह राम तथा कृष्ण से भिन्न है क्योंकि राम नियमों का पालन करते हैं तथा कृष्ण नियमों को तोड़ते हैं। पर्शुराम की कोई पत्नी नहीं थी, राम की एक पत्नी थी और कृष्ण की अनेक पत्नियाँ। पर्शुराम की माँ रेणुका, राम की पत्नी सीता तथा कृष्ण की

सखी द्रोपदी को देवी के रूप में माना जाता है। इस तरह दोनों अवतारों में क्रमशः विकास हुआ है।

मगर महात्मा ज्योतिबा फूले ने अपनी पुस्तक “गुलामगिरि(1873)” में परशुराम को एक ब्राह्मण पुरोहित वर्ग का मुखिया तथा क्रूर क्षत्रिय बताया है जिसने इक्कीस बार क्षत्रियों को पराजित करके उनका सर्वनाश किया तथा उनकी अभागी नारियों के अबोध मासूम बच्चों का कत्ल किया, इतने कत्ल तो हिटलर ने भी नहीं किए होंगे। ब्राह्मणों ने चालाकी से अपने पूर्वजों के मान में कमी नहीं आने के लिए अवतार जैसा मिथ्या पात्र खड़ा किया है।

सारांश यह है कि उद्भ्रांत जी की इस काव्यमयी रामकथा की हर नारी ऐसे नए अध्याय की रचना करती जाती है,जो न केवल अतीत वरन वर्तमान समाज में उन मूल्यों पर गहरी बहस पैदा कर नए रास्ते का प्रतिपादन करने में समर्थ है।

तीसरा सर्ग

भवानी का संशयग्रस्त मन

'त्रेता' के तीसरे सर्ग में नारी के रूप में माँ भवानी का वर्णन आया है कि किस तरह उनके मन में कैलाश के शिखर पर ध्यान-मग्न महादेव को देखकर स्वतः यह जानने की इच्छा हो जाती है कि वह किसका ध्यान कर रहे हैं। उस समय भगवान शिव गंभीर स्वर में यह कहते हैं कि विष्णु भगवान दशरथ के पुत्र बनकर लक्ष्मी सहित पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं और मेरा परम भक्त मुझसे प्राप्त अनुपम शक्तियों के द्वारा पृथ्वी पर अत्याचार कर रहा है। उसका विनाश करने के लिए भगवान राम ने जन्म लिया है। मेरे लिए दुविधा की बात यह है कि मेरा सर्वोच्च भक्त पुलस्त्य का नाती अत्यंत ही संस्कारवान तथा समर्पित था। यहाँ तक कि उसने अपने अहंकार रूपी दस-दस सिर काटकर मुझे यज्ञ की समिधा के रूप में चढ़ाये थे। इसलिए वह दशानन के नाम से जाना जाता है। यहाँ कवि उद्भ्रांत ने दशानन जैसे मिथक की व्याख्या करने के लिए जो दस सिर वाले रावण के प्रतिरूप में सिर की तुलना अहंकार रूपी मस्तक से कर एक नवीन प्रयोग किया है। उसके आगे रावण के द्वारा किए जा रहे अत्याचारों का वर्णन करते हुए यह कहते हैं कि दंडक अरण्य में सीता हरण कर रावण ने अपने सर्वनाश को बुला दिया है। इस विषय में माँ भवानी का एक नया रूप सामने आया है कि वह सीता जी का वेश धरण कर राम लक्ष्मण के समक्ष प्रकट हो जाती है,जिसे राम पहचान जाते हैं और उन्हें मन ही मन प्रणाम करते हैं। इस प्रकार से महादेव और महादेवी के माध्यम से कवि ने स्त्री के मन का चित्रांकन करते हुए निर्बल, असहाय, दलित स्त्री के पक्ष में खड़ा होने का आह्वान करते हुए नारी के गुण-अवगुण का अच्छा खासा चित्रण किया है कि किस तरह एक नारी मायावी भी हो सकती है और उसकी कौन-सी कमियाँ और नारी सुलभ जिज्ञासा जनित आकांक्षाएँ किसी युद्ध अथवा सर्वनाश को आमंत्रित करती हैं। भवानी का यह अध्याय रखने के पीछे शायद उद्भ्रांत जी का यह उद्देश्य रहा होगा कि राम कथा का सत्य बना रहे या एक कथा वाचक के तौर पर शिव के मुख से राम कथा का वाचन भी हो।

भवानी के माध्यम से कवि मन, वचन, कर्म द्वारा पति के चरणों में सेवा करना ही पत्नी का धर्म है, शायद इस उक्ति को यहाँ चरितार्थ करना चाहते हैं, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास ने '*रामचरित मानस*' में कहा है-

पतिदेवता सुतीय महुँ मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि सहस सारदा सेष॥

चौथा सर्ग

अनुसूया ने शाप दिया महालक्ष्मी को

‘अनुसूया’ सर्ग में कवि उद्भ्रांत ने सती अनुसूया के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालते हुए सिद्ध करने का प्रयास किया है कि स्वायंभुव मनु की पुत्री देवहुति तथा ब्रह्मर्षि कर्दम के गर्भ से जन्म लेने वाली अनुसूया में अपने वंश के अनुरूप सत्य, धर्म, शील, सदाचार, विनय, लज्जा, क्षमा, सहिष्णुता तथा तपस्या आदि सद्‌गुणों का स्वाभाविक रूप से विकास हुआ था। ब्रह्मा जी के मानस पुत्र परम तपस्वी महर्षि अत्रि को उन्होंने पति के रूप में प्राप्त किया था। इस प्रसंग में अनुसूया के सतीत्व की परीक्षा करने आए तीनों देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश को अपने संकल्प बल द्वारा नवजात शिशुओं में बदल कर उनकी विवस्त्र होकर ‘भिक्षाम देही, भिक्षाम देही’ की शर्त को पूरा करती है। कवि उद्भ्रांत लिखते हैं ‘यदि मेरे अन्तर्मन में/कभी किसी भी क्षण/किसी अन्य पुरुष का/आया नहीं ध्यान हो तो/ये तीनों मुनिवर/नवजात शिशु बनकर/लगाएँ वक्ष से’। मगर दलित समीक्षक कंवल भारती के अनुसार उद्भ्रांत की अनुसूया का जीवन चरित्र तथ्यों से मेल नहीं खाता। उन्होंने अपनी पुस्तक *“त्रेता-विमर्श और दलित चिन्तन”* के अध्याय चार(पतिव्रत धर्म की कसौटी) में उसे अपने समय की सबसे बड़ी मूर्ख, कर्तव्यविमूढ़ और चेतना-शून्य स्त्री बतलाया है जिसके अनुसार न केवल उसने अपने चरित्र को स्वयं दूषित किया है, वरन् उस पर तरस भी नहीं खाया जा सकता है। रामायण की इस कहानी पर कंवल भारती ने निम्न शंकाएँ जाहिर की है। जब सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती को असलियत का पता चला तो उन्होंने जाकर अनुसुइया से क्षमा मांगी और अपने-अपने पतियों को छुड़ा कर लायी। दलित आलोचक के अनुसार ब्रह्मा,विष्णु और महेश के शिशु बनने वाली बात पर विश्वास नहीं किया जा सकता। यदि अनुसूया के सत्य में इतनी ही ताकत थी, तो उन्होंने उन तीनों व्यभिचारी देवताओं को भस्म क्यों नहीं कर दिया? उन्हें शिशु बनवाकर उनसे अपनी छातियाँ क्यों चुसवायी? इस कहानी में दो बड़े सवाल यह है कि तीनों देवता अपनी पत्नियों के कहने पर अनुसूया के साथ सम्भोग करने के लिए तैयार क्यों हो गये? स्पष्ट है कि वे तीनों अनुसूया से सम्भोग के लिये इसलिए तैयार हो गए, क्योंकि वे पहले से ही व्यभिचारी और कामान्ध थे। उनकी चरित्र भ्रष्टता के अनेक प्रमाण शास्त्रों में मौजूद हैं। ब्रह्मा अपनी ही पुत्री के साथ सम्भोग रत हो चुके थे। (कुछ आध्यात्मिक संस्थाएँ सरस्वती को ब्रह्मा की मानस-पुत्री मानते हैं। किन्तु सृष्टि का पालन व ज्ञानदान करने के कर्तव्य निर्वाह करने के कारण ब्रह्मा को जगतपिता और सरस्वती को जगतमाता माना हैं। उनके अनुसार ब्रह्म देव एवं सरस्वती के मध्य किसी प्रकार का शारीरिक संबंध की कल्पना तक नहीं की जा सकती। क्योंकि वे निरंकारी आत्मस्वरूप में स्थित हैं।) विष्णु जलंधर की पत्नी वृंदा का शील भंग कर चुके थे, और महेश इतने ज्यादा कामान्ध थे कि मोहिनी के पीछे कहाँ-कहाँ नहीं भागे। वे तीनों व्यभिचारी थे और सुंदर स्त्रियों को भोगने का

कोई भी अवसर नहीं छोड़ते थे। दूसरा बड़ा सवाल यह है कि अनुसूया ने देवताओं की विवस्त्र हो कर भोजन परोसने की शर्त क्यों स्वीकार की? यदि यह पतिव्रता स्त्री थी, तो उसको यह शर्त बिल्कुल भी स्वीकार नहीं करनी चाहिए थी, प्रत्युत ऐसी शर्त सुनकर उन तीनों की एक मोटे डंडे से पिटाई करनी चाहिए थी। उसने विरोध क्यों नहीं किया और वह उनके सामने निर्वस्त्र हो गई? इससे यही कहा जा सकता है कि वह मूर्ख थी या स्वयं व्यभिचारिणी थी।

डॉ॰ आनंदप्रकाश दीक्षित ने अपनी पुस्तक *"त्रेता:एक अंतर्यात्रा"* में इस प्रसंग को दूसरे ढंग से लिया है कि शायद कवि उद्भ्रांत इसके माध्यम से न केवल राम अवतार की पुष्टि करना चाहते है वरन साथ ही साथ सीता की त्रासदी की भूमिका भी तैयार करता हुआ नजर आते हैं।

मैंने कहा, "क्षमा योग्य
नहीं है अपराध यह,
किन्तु क्षमा करती हूँ
स्त्री की
अपनी प्रकृति के अनुरूप।

******

"तीनों से सर्वाधिक पाप
महालक्ष्मी का,
क्योंकि उसने ही किया
सूत्रपात ऐसी कुटिल मंत्रणा का;

****

"अतएव पृथ्वी पर विष्णु के रामवातार के समय
अपमानित उसे ही होना होगा
सामने समाज के,
पति से बिछोह का भी
सामना करना होगा;

मगर कंवल भारती उपरोक्त प्रसंगों का विरोध करते हैं कि अनुसूया ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश को अभिशाप न देकर केवल विष्णु की पत्नी महालक्ष्मी को अभिशाप देने का क्या तुक था। कवि ने एक स्त्री के विरोध में दूसरी स्त्री को खड़ा कर दिया, जबकि पुरुष वर्ग को क्लीन चिट दे दी। उनकी शंका निम्न प्रश्नों के रूप में प्रकट होती हैं:-

प्र.(1)- क्या अनुसूया को रामवातार की जानकारी थी? अगर हाँ, तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश उसके साथ क्या षड्यंत्र करने जा रहे हैं इस चीज की जानकारी क्यों नहीं हुई?

प्र.(2)- अनुसूया ने लक्ष्मी को सीता बनाने के लिए अपहरण, पति बिछोह, पातिव्रत धर्म की पूर्ति हेतु अग्नि परीक्षा के लिए अभिशाप दिया, मगर सवाल अभी भी जिंदा है कि सीता ने अग्नि परीक्षा निर्वस्त्र हो कर क्यों नहीं दी? जबकि अनुसूया ने अपनी परीक्षा पर पुरुषों के समक्ष निर्वस्त्र होकर दी।

प्र.(3)- क्या अनुसूया को अपने किए पर पश्चाताप हुआ? वह अपने को दोषी मानने के बजाय देवताओं को ही व्यभिचारी मान रही है।

प्र.(4)- क्या उसे अपनी परीक्षा में स्त्री की इज्जत से जुड़ा हुआ मुद्दा नजर नहीं आया?

प्र.(5)- भिक्षा के लिए ऐसी कोई भी अनैतिक प्रथा रामायण काल में प्रचलित नहीं थी। जैन दिगंबर साधुओं में यह प्रथा जरूर थी, जो आज भी मौजूद है, कि भिक्षा के लिए निकलते समय वे मन में जो भी संकल्प बनाते है, वे वही भोजन लेते हैं, जहाँ उनका चित्त संकल्प पूरा होगा। मगर वे लोग भी ऐसा घृणित और अनैतिक संकल्प नहीं लेते कि कोई स्त्री उन्हें निर्वस्त्र होकर भोजन परोसे। फिर त्रिदेवों ने ऐसी अनैतिक शर्त क्यों रखी?

प्र.(6)- आज तक ऐसा कोई विज्ञान विकसित नहीं हुआ है जो ध्यान करते ही आदमी को नवजात शिशु बना दे। वस्तुतः अनुसूया त्रिदेव की काम-वासना को शांत करने के लिए ही निर्वस्त्र हुई थी। नवजात शिशु की कपोल-कल्पित अवैज्ञानिक कथा त्रिदेवों और अनुसूया के यौन-सम्बन्धों पर पर्दा डालने के लिए गढ़ी गयी थी।

प्र.(7)- डॉ.आनंदप्रकाश दीक्षित के अनुसार रामवातार के लिए अनुसूया के शाप का कारण अनुचित है क्योंकि कर्म-बंधन से मुक्त मानी जाने वाली आत्माओं के इस वजह से पृथ्वी पर अवतरण तथा अवतारवाद की गरिमा क्षीण हो जाती है। फिर "यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति..." की सार्थकता क्या रह जाती है?

प्र.(8)- इस सर्ग में कवि ने सीता-अनुसूया संवाद को नहीं दिखाया है, शायद महाकाव्य का आकार बढ़ न जाए या फिर गोस्वामी तुलसी दास द्वारा प्रत्येक स्त्री को सदा स्मरण रखने योग्य सरल, सुबोध एवं सरस पद्यमय उपदेशों के वर्णन का औचित्य कवि को उचित प्रतीत नहीं हुआ, जो यह दर्शाता हो।

वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध, वधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारी पाव जमपुर दुख नाना॥
जग पतिब्रता चारी बिधि अहहिं। वेद पुराण संत सब कहहिं॥

उत्तम के आस बस मन माहीं। सपनेहूँ आन पुरुष जग नाहीं॥

क्योंकि संत कवि तुलसी के आत्मघाती सामाजिक विचारों, ब्राह्मणवाद, नारी विमर्श तथा अनेक असंगत प्रसंगों से परिचित थे। श्री विश्वनाथ द्वारा संपादित पुस्तक "हिन्दू समाज के पथभ्रष्टक तुलसीदास" के आलेखों में उन सारी तमाम भ्रामक धारणाओं पर से पर्दा उठाने के लिए प्रस्तुत विश्लेषण और विवेचना आँखें खोलनेवाली हैं कि अंधविश्वास, मायाजाल, वर्णाश्रम-व्यवस्था, ब्राह्मणवाद, आज भी आधुनिक हिन्दू समाज को रसातल में धकेलता जा रहा है।

डॉ. देवदत्त पटनायक ने अपनी पुस्तक "मिथक=मिथ्या" (हिन्दू मिथकों का विश्व कोश) में मिथकों को झूठा दर्शाया है अर्थात् उन्हें काल्पनिक कहकर सत्य से अलग रखा है। उनके अनुसार पुनर्जन्म, स्वर्ग, नर्क, देवदूत,दानव,स्वेच्छा,पाप,शैतान और मोक्ष जैसे विषय धार्मिक मिथकों के दायरे में आते हैं, जबकि संप्रभुता, राष्ट्र राज्य, मानवाधिकार, महिलाओं के अधिकार, जानवरों के अधिकार, समलैंगिक अधिकार जैसे विचार पंथ-निरपेक्ष मिथक है। उन्होंने "विष्णु और लक्ष्मी के वर्ग" में प्राकृतिक क़ानूनों से सांस्कृतिक संहिता को अलग कर के देखा है। उनके अनुसार विष्णु प्रकृति की लय से परिचित करता है ताकि ब्रहमाण्ड में होनेवाले परिवर्तनों का पूर्वानुमान किया जा सके और उसके बाद उसका प्रबंधन भी किया जा सके। विष्णु के लिए लक्ष्मी के दो प्रकार हैं। लक्ष्मी वांछित-स्वरूप (प्रकृति का उपजाऊपन,शुभ तरंग,दैनंदिन-बढ़ता हुआ चाँद,बसंत,बारिश,फसल), दूसरी ओर अलक्ष्मी अवांछित स्वरूप-(प्रकृति का बंजरपन, अशुभ पक्ष, रात, घटता चाँद, निम्न तरंगे, गर्मी,भयंकर सर्दी)।

अनुसूया के प्रसंग के बारे में अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त ओड़िआ लेखिका सरोजिनी साहू की टिप्पणी का उल्लेख किए बिना यह अध्याय अधूरा रह जाएगा। उनके अनुसार न केवल भारत में वरन् पूरे विश्व में स्त्री जाति को दबा कर रखने के लिए मिथकीय यौन-राजनीति पुरुष लेखकों द्वारा लिखी गई है। तभी तो क्रिस्टोफर पेनसाक ने अपनी किताब 'गे विच क्राफ्ट: एम्पावरिंग दि ट्राइब' में पॉर्ननिज़्म और जादुई विद्या का समावेश करके विश्लेषण किया है, उनके अनुसार देवी-देवताओं ने मिलकर अपनी यौन-फंतांसियों की पूर्ति हेतु इन मिथकों का सृजन किया था। उदाहरण के लिए ग्रीक राजा इडिपस ने पिता की हत्या के बाद माँ से शादी की और यह बात मालूम पड़ने पर उसने अपनी आँखें फोड़ दीं। कंडम्बिल के देवता ओरुगन ने अपनी माँ येमाज्ना पर जबरदस्ती की, तद्पश्चात सूर्य व चंद्र सहित बारह बच्चों का जन्म हुआ। आस्टेक मिथक के एक विवरण के अनुसार वहाँ की माँ-देवी कोयाल्लिक को पति से तब तक दैहिक उत्पीड़न सहना पड़ता है जब तक उसके शत पुत्रों में से एक आकर प्रतिकार करता है, वह अपनी पिता की हत्या करके माँ का प्रेमी बन जाता है। जब सूर्य और उसकी बेटी चाँद के बीच में यौन-संबंध होता है

तभी पूर्णग्रहण होता है। सियस संदर्भ पाकर, पुरुषों को अपनी यौन विकृतियों से रिझाकर उनके साथ संबंध रख लेती है। यौनानन्द को यहाँ पर 'तपिश' से सूचित किया जाता है। ग्रीक सागर देवता पोसीडोन भी यौन-प्रवृतियाँ में सियूस के कुछ पीछे नहीं है। उसने डेमेटीर देवी सहित कई स्त्रियों को अपने वश में किया था। उसने अमिल्टाइट का बलात्कार किया, बाद में ब्याह किया।

हिन्दू मिथकों में स्रष्टा की परिकल्पना 'अर्धनारीश्वर' के रूप में मिलती है जिसकी तुलना आस्टिक देवता ओमेटेचुहली के साथ की जाती है। यूनाइटेड किंगडम की सपना-विशेषज्ञ सारा डेनिंग ने यौनाचारों को सामाजिक प्रवृतियों का परिणाम माना और अपनी किताब 'दि मिथोलोजी ऑफ सेक्स' में मिथकों के आधार पर उनका विश्लेषण किया।

इसी संदर्भ में सिमोन दि बोउआ के अनुसार पुरुष दुनिया ने स्त्री-संबंधी मिथकों को निर्मित किया है और ये मिथक (जैसा कि माता, यौनशुचिता, मातृराज्य, मातृ-प्रकृति) स्त्रियों के शोषण के लिए बनाये हैं, इसलिए ये विभिन्न प्रकार के स्त्री व्यक्तित्वों के विकास पर रोक लगानेवाले हैं। सिमोन मातृत्व और विवाह के विरोध में थी। इसमें शंका नहीं कि काफी समय पहले ही नारीवाद, मार्क्सवाद से प्रभावित रहा है। नारीवाद के विकास में सिमोन, क्रीड़न, ग्रीक और लिंडा हिरशमेन जैसी पाश्चात्य नारीवादियों ने नारीवाद को पितृसत्तात्मकता के समान स्तर पर निरूपित करने का प्रयास किया था। लिंगभेद की समस्या पर विचार करें तो यह विरजीनिया वुल्फ़ की 'ओरियान्डों', रोड़क्लीफ़ की 'दि वेल ऑफ लोनलीनेस' में वर्णित है और इनके बहुत पहले जूडिथ बटलकर ने भी इसकी चर्चा की है। जोयस की 'उलिसस' या थामस हार्डी के उपन्यासों में यौनता एक विषय बनी है। 'सेकेंड सेक्स' लिखने से पहले सिमोन ने दो कहानियाँ लिखी थीं- 'शी केयूम टुस्टे' और दि वर्ल्ड ऑफ आदर्श', जिसमें यौनता का प्रतिपादन है। पर यह तो शंकातीत है कि 'दि सेकेंड सेक्स' के पहले किसी ने यौन-देह पर घटना वैज्ञानिक अन्वेषण नहीं किया था। सिमोन ने इसकी दिशा बदल डाली। यौन-समानता पर उनका तर्क द्‌वि-आयामी है। सबसे पहले वे यह सिद्‌ध करती है कि पितृसत्तात्मकता यौन-भेद के शोषण का कारण बनती है इस तरह वे असमान सामाजिक व्यवस्था तथा यौन राजनीति को खेल के रूप में रखती हैं। नतीजतन पुंसवर्चस्व को निपटाने के लिए नारीवाद जन्म लेता है।

" कोई विषय बहुत विवादास्पद है और अगर वह यौनता संबंधी है तो कोई सच नहीं बताता है। बस इतना बताता है कि उस पर खुद के क्या विचार है, बाकी सुनने वाले को, उनके अपने विवेक,आत्मसीमा,पूर्वधारणा तथा स्वभाव के अनुकूल निष्कर्ष तक पहुँचने का मार्गदर्शन ही करता है। " -विराजीनिया वुल्फ।

कुरान बहुपत्नीत्व की अनुमति देता है, पर नारी को बहुपतित्व का अधिकार नहीं देता है। ईसाई विश्वासों के अनुसार पुरुष व स्त्री, दोनों एकाधिक विवाह नहीं कर सकते। हिन्दू,

इत्यादि दूसरे धर्मों में भी स्त्री के यौनाधिकारों पर सुनिश्चित रोक है। सभी समाजों में यही विश्वास बना हुआ है कि स्त्री की यौन शुचिता बनी रहनी चाहिए।

सारलादास कृत 'ओड़िया महाभारत' के अनुसार द्रौपदी को कृष्ण और कर्ण पर प्रेमकुंठा थी। कर्ण कौरवों का नाजायाज भाई था। द्रौपदी पाँचों पांडवों के साथ यौन-संबंध रखती थी, फिर भी उसके मन में कृष्ण व कर्ण का स्थान था।

संस्कृत की पौराणिक लिपियों में प्रसिद्ध उक्ति है : *"अहिल्या, द्रौपदी, तारा, कुंती, मंदोदरी तथा, पंच कन्या स्मरेनित्यम महापातक नाशनम्। "* मिथकों के अनुसार अहिल्या, द्रौपदी, तारा, कुंती और मंदोदरी प्रशस्त पंचकन्याएँ (पुण्यवतियाँ) हैं। पर मजेदार बात है कि इनमें सभी के एकाधिक पति थे। पाँचों का स्थान सती सावित्री जैसा था, जो अनुसूया से कमतर नहीं है।

ऋषिपत्नी अनुसूया उपदेश दे रही हैं- वह विस्तृत है-

मातु, पिता, भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमितदानि भर्ता वैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥

- रामचरितमानस, अरण्य कांड

(अर्थ- हे राजकिशोरी सीता, सुनो, माता, पिता, भाई हितैषी सब एक सीमा तक सुख देने वाले हैं-किन्तु हे वैदेही, पति अपार सुख देने वाला, वह स्त्री अधम है जो पति की सेवा न करे।)

अपने आर्थिक स्वार्थ को भी न समझकर जो स्त्री पति सेवा न करे, उसे चाहे मूर्ख भले ही कह लें, किन्तु अधम न जाने क्यों कहा गया है।

अनुसूया का उपदेश है-

धीरज धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परखिये चारी॥
बृद्ध रोग बस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धर्म एक ब्रत नेमा, काय बचन मन पतिपद प्रेमा॥

-रामचरितमानस, अरण्य कांड

(हे सीता, धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री इन चारों की परीक्षा आपद काल में ही लेनी चाहिए। बूढ़ा, रोगी, मूर्ख, धनहीन, अंधा, बहरा, क्रोधी, अत्यंत दीन- ऐसे पति का भी अपमान करने से स्त्री यमपुरी में दुख पाती है।)

कहने का अर्थ उद्भ्रांत जी यह सर्ग भी आधुनिक संदर्भ में ऐसे बहस को जन्म देती है,जिसमें फ्रायड का मनोविश्लेषण,पुरातन व आधुनिक नारीवादी दृष्टिकोण,एकाधिक यौन संबंध,यौन शुचिता सभी विषयों पर पक्ष-विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है।

पाँचवाँ सर्ग

कौशल्या का अंतर्द्वंद्व

महाकाव्य के पाँचवें सर्ग में कवि ने राम की माता कौशल्या के जीवन की घटनाओं के प्रसंग का आत्मपरक विश्लेषण करते हुए तत्कालीन समसामायिक स्त्री-विमर्श के फलस्वरूप परिलक्षित की जाने वाली नारी जीवन की समस्याओं, उनकी आकांक्षाओं, बहुपत्नीत्व के कारण उत्पन्न सौतिया डाह, राजनीति के कुटिल दाँव-पेंच के खेल, 'त्रेता' के नारी पात्रों में आसानी से देखे जा सकते हैं। परंतु अनमेल विवाह, अनिच्छा-विवाह, कन्या के साथ पण्यवस्तु जैसे व्यवहार, पुरुष और स्त्री की शिक्षा में योग्यता का अंतर मानना, पुत्री को शिक्षा से वंचित रखना, पुत्री के जन्म को नारी का अपराध मानना और इसके लिए उसको दंडित करना, नवजात बालिका का केवल लड़की होने के कारण परित्याग करना, नारी का सीमाशुल्क अधिकारी होना आदि बहुत से ऐसे कार्य हैं जो त्रेता युग की चिंता के परिचित भाग नहीं हैं, उस काल की समस्याएँ नहीं हैं। कवि ने समसामयिकता से प्रभावित होकर उस काल के पात्रों और घटना-प्रसंगों पर उन्हें आरोपित किया है।

कौशल्या नामकरण के मामले में कवि उद्भ्रांत ने मौलिकता दिखाते हुए यह लिखा है कि पाक कला में कुशल होने के कारण अथवा कुश की तरह, भले ही साधारण, मगर नुकीली दृष्टि, अडिग और अविचल विचार रखने के कारण उनका नाम कौशल्या रखा गया, मगर गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित बाइसवें वर्ष का विशेषांक "नारी-अंक" में उन्हें दक्षिण के कौशल राज्य की राजकुमारी बताया है, जिसका अपहरण रावण ने झंझावात पैदा करके किया और उन्हें काष्ठ पेटिका में बंद करके समुद्र में फेंक दिया। बाद में उनकी मुलाक़ात हिन्दी फिल्मी तरीके से राजा दशरथ से हो जाती है जो आगे जा कर परिणय सूत्र में बंध जाते हैं। इस अध्याय में कवि ने स्त्रीयोचित ईर्ष्या के भाव कैकेयी के प्रति दिखाए हैं। उनका दुख यह है कि राजा दशरथ हमेशा उसके साथ रहते है, और कैकेयी ने उन्हें अपने वश में कर लिया है। तभी तो 'त्रेता' में कवि ने लिखा है-

"दुर्दिन तब सचमुच मुझे
अपने आते दिखे-
जब कैकेय नरेश की
अनिंद्य रूपवती कन्या कैकेयी
अयोध्या के राजमहल में आयी।

अनिंद्य सुंदरी होने के साथ

परम निष्णात थी वह

वार्तालाप करने में

बड़ी बहन का आदर-सम्मान
उससे सदैव मैंने

प्राप्त किया प्रकटतः। "

मगर इसी अध्याय में आगे जाकर कवि उद्भ्रांत कैकेयी की वीरगाथा के बारे में अपनी आशंका जताने के साथ-साथ मनुस्मृति की संहिताओं को मानने की व्यवस्था पर खेद प्रकट किया है। वे कहते है-

"हम सबने सुनी जो कथा
यह दरबार में
वह थी कितनी सत्य
इसे जानने की कोई
विधि न थी हमारे पास,
और यद्यपि थी पूरी कथा ही अविश्वसनीय
किन्तु हमारे
महान पुरखे मनु महाराज द्वारा
निर्मित संहिता के अनुसार
राजा ईश्वर है
जनता के लिए और
स्त्री के लिए ईश्वर, पति है। "

राम और सीता को चौदह वर्ष वनवास देने के आदेश के दारुण दुख से महाराज दशरथ के प्राण निकल जाते हैं, कैकेयी को यह सबसे बड़ा दंड प्राप्त होता है वैधव्य के रूप में तथा सुमित्रा पश्चाताप करने लगती है, मगर कौशल्या के दुखों की मात्र दोगुनी-तिगुनी घनीभूत वृद्धि होने के बावजूद भी वह साधारण मनुष्य के दुख की तरह अभिव्यक्त नहीं कर पाती है। कवि की पंक्तियाँ....

"और मुझे देते हुए-
दोहरा-तिहरा दुःख घनीभूत
अनुमति व्यक्त होने की नहीं।

जननी राम की थी माँ।
मानव का साधारण दुःख भला
क्यों स्पर्श करता मुझे। ”

इस प्रसंग पर आलोचक कंवल भारती अपनी राय रखते है कि कौशल्या को यह मालूम था कि विष्णु अवतार के रूप में राम उसकी कोख से जन्म लेंगे, दशरथ की मृत्यु, चौदह वर्ष राम का वन निष्कासन, सीता अपहरण, अगर सब विधि के विधान के तहत पूर्व निर्धारित घटनाएँ हैं तो कैकेयी को लेकर उनके मन में अंतर्द्वंद्व क्यों पैदा हुआ? क्या कवि कैकेयी के चित्रण में कहीं पक्षपात तो नहीं कर रहे हैं। जैसा कि भगवान राम के वन जाते समय माता कौशल्या ने अपनी मनस्थिति को इस तरह प्रस्तुत किया था। स्त्रियों के लिये सौतेली पत्नी द्वारा किये गए अपमान से बढ़कर कोई कष्ट नहीं। मैं तो कैकेयी की दासी की भाँति हूँ। मेरे सेवक-सेविकाएँ कैकेयी से सदा भीत रहती हैं और कैकेयी के सेवक भी मुझे कष्ट देते हैं।

एक बात और यहाँ उल्लेखनीय है कि कवि ने पूरी ईमानदारी के साथ तत्कालीन राजा महाराजाओं की देह-आसक्ति को उभारने के साथ-साथ मानवीय धरातल पर स्त्रियों के चरित्र-चित्रण का अच्छा-खासा मनोविश्लेषण किया है। उन्होंने सत्य को सामने लाया है कि देह-लोलुप राजा-महाराजा और सामंत नारी के सौंदर्य के सामने किस तरह अपने राज्य की उपेक्षा करते थे।

छठा सर्ग

सुमित्रा की दूरदर्शिता

जैन 'पाऊमचरीय' के अनुसार कमाल संकुलपुरा के राजा सुबंधु तिलक की पुत्री सुमित्रा थी। कौशल्या और कैकेयी से अलग उसका नाम रखा गया था। शायद वह किसी राजघराने से संबंध नहीं रखती होगी। जबकि कौशल्या का संबंध कौशल राज्य तथा कैकेयी का संबंध कैकेय राज्य से था। सुमित्रा नाम सुमंत्र से मिलता-जुलता है, इसलिए यह अनुमान लगाया जाता है कि वह सुमंत्र की पुत्री रही होगी।

प्रात सुमित्रा नाम जग जे तिय लेहिं सनेम।
तनय लखन रिपुदमन सं पावहिं पति पद प्रेम।

गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित नारी-अंक (बाइसवें वर्ष का विशेषांक) के अनुसार महाराज दशरथ की रानियों की संख्या कहीं तीन सौ साठ और कहीं सात सौ बतायी जाती है। जो भी हो महारानी कौशल्या पट्टमहिषी थीं और महारानी कैकेयी महाराज को सर्वाधिक प्रिय थीं। शेष में सुमित्रा ही प्रधान थी। महाराज छोटी महारानी के भवन में ही प्रायः रहते थे। सुमित्रा जी ने उपेक्षिता-प्रायः महारानी कौशल्या के समीप रहना ही उचित समझा। वे बड़ी महारानी को ही अधिक मानती थीं।

कवि उद्भ्रांत के अनुसार सुमित्रा ने अपने दोनों पुत्रों- लक्ष्मण और शत्रुघ्न को माँ की भावनाओं से दूर रखने का निर्णय लिया। शायद उसे अपनी उपेक्षित अवस्था का पूरी तरह आभास हो गया था कि कौशल्या की तरह न तो वह राजमाता बन सकती है और न ही वह कैकेयी की तरह कूटनीतिज्ञ भी। शायद इसी नियति को भाँपकर उसने अपने बड़े पुत्र लक्ष्मण के सामने राम को आदर्श मानने तथा शत्रुघ्न को भरत की हर बात को शिरोधार्य करने का आदेश दिया। तभी तो उन्होंने लिखा है:-

" मैंने सायास अपने पुत्रों को
दूर रखा
माँ की भावनाओं से;
लक्ष्मण के सामने
राम को आदर्श मानने का मंत्र रखा और
शत्रुघ्न को
भरत से संत भ्राता का हर वचन
शिरोधार्य करने का

माता की सीख को
दोनों भाइयों ने
ग्रहण किया अंतरात्मा से। "

जबकि कथा के अनुसार यह कहा जाता है पुत्रेष्टि यज्ञ समाप्त होने पर अग्नि के द्वारा प्राप्त चारु का प्रथम भाग महाराज ने कौशल्या को दे दिया। शेष का आधा भाग कैकेयी जी को प्राप्त हुआ। चतुर्थांश जो शेष था, उसके दो भाग करके एक भाग कौशल्या और दूसरा कैकेयी के हाथों में रख दिया। दोनों महारानियों ने अपने-अपने वे भाग सुमित्रा को दे दिए। समय पर माता सुमित्रा ने दो तेजस्वी पुत्रों को जन्म दिया। उनमें से कौशल्या जी के दिए गए भाग के प्रभाव से लक्ष्मण जी श्री राम के तथा कैकेयी के दिए गए भाग के प्रभाव से शत्रुघ्न भरत के अनुगामी हुए। इस प्रसंग की तुलना में कवि उद्भ्रांत के द्वारा सुमित्रा की मनोस्थिति का आकलन ज्यादा सटीक व उपयुक्त प्रतीत होता है। क्योंकि उन्हें अपने आपको आधुनिक युग की नारीगत अवधारणाओं को अपने भीतर अनुभव कर उस अंतर्द्वन्द्व को प्रकट करना था। इसलिए उसकी महत्वाकांक्षाएँ फलीभूत होती नजर आती देख दोनों रानियों से किस तरह सही-सही व्यवहार बना रहे हैं। भले ही, कैकेयी और कौशल्या के प्रति मन में दबी हुई ईर्ष्या के भाव क्यों न हो। कवि उद्भ्रांत ने अपनी दूरदर्शिता के आधार पर सुमित्रा के इस निर्णय को सही ठहराने की कोशिश अवश्य की है कि चाहे अयोध्या का महाराज राम बने या भरत बने, दोनों ही अवस्थों में उनका एक पुत्र अवश्य महाराज का परम विश्वसनीय होगा और वह उसके दूसरे सहोदर का अनिष्ट नहीं होने देगा, किसी भी परिस्थिति में। इस तरह वह राजमाता भले ही न बने मगर राजमासी तो अवश्य बनी रहेगी। मगर उसे पता नहीं था कि कैकेयी की कुत्सित कूटनीति और लक्ष्मण के अटूट भ्रातृप्रेम के कारण उसकी बहू उर्मिला को चौदह वर्षों का एक लंबा एकांत वास भोगना होगा। इसका एक और दुष्परिणाम यह सामने आया कि राम के वनवास के प्रारम्भिक वर्षों में प्रजा जनों में भरत के प्रति तीव्र आक्रोश व असंतोष की लहर फैली, वरन् अपने प्राणों से भी प्रिय भाई से लंबे बिछोह के साथ-साथ राजलिप्सा के व्यर्थ आरोप का सामना करना पड़ा। इस तरह विश्लेषण करके कवि उद्भ्रांत ने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्थाओं के साथ-साथ मानवीय सम्बन्धों पर भी दृष्टिपात किया है। मगर सुमित्रा के संदर्भ में एक बात फिर भी उनसे छूट गई लगती है क्योंकि सुमित्रा पूरी तरह से असमंजस की स्थिति में थीं। राम के साथ लक्ष्मण के वन में जाने की अनुमति के समय राम-चरित मानस में सुमित्रा के विशाल हृदय का विशद वर्णन देखने को मिलता है।

"तात तुम्हारी मातु बैदेही। पिता रामू सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहाँ राम निवासु। तहहूँ दिवसु जहें आनु प्रकासु॥

जौं पै सीय रामू बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
गुरु पितृ माह बंधु सुर साईं। सेईअहिं सकल प्रान की नाईं॥"

इसके अतिरिक्त सुमित्रा जी के व्यक्तित्व के कुछ अनछुए पहलुओं पर कवि उद्भ्रांत जी का ध्यान नहीं गया है। जैसे-

1) चित्रकूट में माता सुमित्रा कैकेयी पर अपार रोष में जल रही जनक की महारानी अर्थात सीता की माँ महारानी सुनैना के मन को 'देवी जाम जुग जामिनी जीती' कहकर उसके उद्विग्न मन को शांत कर उस प्रसंग को वही समाप्त कर देती है, जबकि कौशल्या यह काम नहीं कर पाती है। और सुनैना सुनिअ सुधा, देखि गरल के समान, कटु उक्तियाँ सुनाती जाती हैं। जब लक्ष्मण के मूर्छित होने की खबर सुमित्रा को मिलती है और उनकी जान बचाने के लिए संजीवनी लेकर जाते हुए हनुमान जी को भरत के बाण से आहत होकर गिरना पड़ता है उस समय सुमित्रा की विचित्र मनोदशा का वर्णन कवि की कल्पना से पता नहीं क्यों परे रह गया। "छिन-छिन गात-सुखात मातुके छिन-छिन होत हरे हैं। " अर्थात सुमित्रा यह सुनकर प्रसन्नता से खिल उठती है कि मेरे पुत्र लक्ष्मण राम के लिए युद्ध में वीरता पूर्वक लड़ते हुए बेहोश हो गए हैं। इनके इस कृत्य पर राम को एकाकी पाकर उनका मुख सूख जाता है। पर यह सोचकर, क्या चिंता, अभी शत्रुघ्न तो है ही। " वह अपने पुत्र को "तात जाहु कपि संग" कहकर आज्ञा दे देती हैं। यह तो अच्छा हुआ कि महर्षि वशिष्ठ ने उन्हें लंका भेजने से रोक दिया।

इस प्रसंग को नजर अंदाज कर नारी के मन की संवेदना को स्पर्श नहीं कर पाए।

लक्ष्मण को आज्ञा देते समय सुमित्रा ने कहा था "राम सीय सेवा सूची है हो, तत्र जानिहों सही सुत मेरे। " और इस सेवा की अग्नि में तपकर जब उनका लाल कंचन की भाँति अधिक उज्ज्वल होकर लौटा, तभी उन्होंने उसे हृदय से लगाया।

सातवाँ सर्ग

महत्त्वाकांक्षिणी कैकेयी की क्रूरता

उद्भ्रांत जी ने कैकेयी के चरित्र को यथार्थ रूप से उजागर करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। उन्होंने कैकेयी के अंतर्गत नारी मन के सूक्ष्म भावों को ठीक उसी तरह से प्रस्तुत किया है जिस तरह से नरेंद्र कोहली ने अपने राम चरित्र पर आधारित महाकाव्यात्मक उपन्यास "राम कथा", में प्रस्तुत किया है। राजा दशरथ ने कैकेय नरेश को हरा कर आत्मसमर्पण करवाया था, तब उसने अपनी पुत्री का हाथ राजा दशरथ के हाथों में देना तय किया था। चूँकि कैकेय प्रदेश और उनका परिवार का भविष्य उस समय राजा दशरथ के हाथों में था। अतः समाज की भलाई, देश का कल्याण और अपने परिवार की रक्षा के लिए कैकेयी का कन्यादान ही एकमात्र विकल्प था। मगर कैकेयी कोई कोमल एवं साधारण राजकुमारी नहीं थी। वह तो हठीली उग्र, तेजस्विनी, महत्वाकांक्षी तथा असाधारण सुंदरी थी। उपन्यास में नरेंद्र कोहली ने राम के समक्ष कैकेयी से कहलाया है- "मैं वह धरती हूँ राम। जिसकी छाती करुणा से फटती है; तो शीतल जल उमड़ता है; घृणा से फटती है, तो लावा उगलती है। दोनों मिल जाते है तो भूचाल आ जाता है। मेरी स्थिति भूडोल की है राम! " कैकेयी का चेहरा लाल हो गया, "मैं इस घर में अपने अनुराग का अनुसरण करती हुई नहीं आई थी। मैं पराजित राजा की ओर से विजयी सम्राट को संधि के लिए दी गई भेंट थी। सम्राट और मेरे बीच का भेद आज भी ज्यादा है। मैं इस पुरुष को पति मान, पत्नी की मर्यादा निभाती आई हूँ, पर मेरे हृदय से इसके लिए स्नेह का उत्स कभी नहीं फटा। ये मेरी मांग का सिंदूर तो हुए, अनुराग का सिंदूर कभी नहीं हो पाए। मैं इस घर में प्रतिहिंसा की आग में जलती सम्राट से संबंधित प्रत्येक वस्तु से घृणा करती आई थी। तुम जैसे निर्दोष, निष्कलुष और प्यारे बच्चे को अपने महल में घुस आने के अपराध में मैंने अपनी दासी से पिटवाया था। "

वेबसाइट में प्राप्त जानकारी के अनुसार कैकेय देश यूक्रेन को कहा जाता है। वहीं पर कोकाश पर्वत शृंखला के आधार पर उस जगह को कैकेय प्रदेश कहा जाता है और वहाँ घोड़े बहुतायत में पाए जाते थे इसलिए वहाँ के राजा को अश्वपति कहा जाता था। एक कहानी के अनुसार देवराज इन्द्र शम्बरासुर से युद्ध कर रहे थे, मगर उन्हें पराजित नहीं कर पा रहे थे तो देवराज ने महाराज दशरथ से सहायता मांगी। महाराज जब अमरावती जाने लगे, तो कैकेयी को शस्त्र संचालन तथा रथ हाँकने की विधि की अच्छी जानकारी थी। युद्ध में शत्रु के बाण से रथ का धुरा कट गया था और महाराज गिरने ही वाले थे कि धुरे के स्थान पर कैकेयी ने अपनी पूरी भुजा लगा दी। महाराज युद्ध में तन्मय थे। शीघ्र ही दैत्य पराजित होकर भाग गए।

"प्रिये! तुमने दो बार आज मेरे प्राणों की रक्षा की है, अतः तुमको जो अभीष्ट हो, दो वरदान मांग लो। "

देव-वैद्यों ने महारानी की आहत भुजा को शीघ्र स्वस्थ्य कर दिया था। महाराज अत्यंत प्रसन्न थे।

“नाथ! आप मेरे आराध्य हैं, मैं आपकी कुछ सेवा कर सकी हूँ। यही मेरे लिए कम थोड़ा वरदान मिला है। आप दासी पर प्रसन्न हैं, मैं इसमें अपना सौभाग्य मानती हूँ। ” कैकेयी जी के मन में पतिसेवा के अतिरिक्त कोई इच्छा नहीं थी। महाराज ने जब बहुत आग्रह किया तो उन्होंने यह कहकर बात टाल दी "मुझे जब आवश्यकता होगी तब मांग लूँगी। "

आगे की कथा सब जानते हैं। दशरथ ने प्रसन्न होकर कैकेयी को दो वर मांगने को कहा और कैकेयी ने उचित समय आने पर वह मांगने का वचन लिया था। राम के विवाह के उपरांत जब महाराज दशरथ ने राम को युवराज बनाया और अपना उत्तराधिकारी घोषित किया, तो उस समय कैकेयी ने महाराज को अपने वचनों की याद दिलायी और दो वर मांग लिए। पहले वर में भरत का राजतिलक और दूसरे में राम का वनवास। कैकेयी के दूसरे वचन से दशरथ मूर्छित हो गए और चल बसे।

तापस बेस बिसेस उदासी। चौदह बरस राम वनबासी॥

कवि उद्भ्रांत ने नारी मन के सूक्ष्म भावों को अपने इस सर्ग में व्यक्त किया है:-

“ मैं चाहती हूँ आज बताना यह
कि स्त्री की भी
होती है भावनाएँ कुछ,
जीवनसाथी उसका
सुंदर हो, युवा हो,
पौरुष के तेज से सम्पन्न हो,
आदर-सम्मान उसका करता हो
नहीं उसको होती चाह
महारानी बनने की;”

मानवता की दृष्टि से कैकेयी भले ही अपराधी हो पर राजतंत्र में स्त्री के जीवन और स्वप्न से जिस तरह खिलवाड़ किया जाता है उसे देखते हुए, उसके खिलाफ कैकेयी जैसी स्त्रियों का विद्रोह अपराध नहीं कहा जा सकता। कौशल्या और सुमित्रा जैसी अस्मिता और अस्तित्व-विहीन लाखों स्त्रियाँ हो सकती हैं, परंतु कैकेयी कोई एक ही पैदा होती है। जो अपनी अस्मिता

और स्वतन्त्रता से जीना चाहती है और जब कोई उसके अरमानों को कुचल देता है, तो वह क्रूर भी हो जाती है।

इस दृष्टांत के माध्यम से कवि निम्न चीजों को हमारे समक्ष लाना चाहता है:-

1. प्रतिशोध की भावना मनुष्य को कितना निष्ठुर और विवेकहीन बना देती है कि जो स्त्री कभी अपने पति की सेवा करना अपना सौभाग्य समझती थी, वही स्त्री रोते-चिल्लाते क्रंदन करते मूर्छित होते पति को देखकर न केवल पाषाणवत् होकर चुपचाप स्थाणु बैठी है, वरन उल्टे व्यंग्य बाणों से उन्हें बींध भी देती है। गो-स्वामी तुलसी दास ने यहाँ तक लिखा है-

होत प्रातु मुनिबेष धरि, जौं न राम बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजस, नृप समुझिअ मन माहिं॥

इसी बात को कवि उद्भ्रांत अपने शब्दों में ऐसे प्रस्तुत करते हैं--

" स्वयं को तैयार कर लिया मैंने
अपने संभावित वैधव्य-हेतु!
मेरे भीतर की क्रूर स्त्री ने
अयोध्या के चक्रवर्ती
वयोवृद्ध महाराज दशरथ की
हत्या का सुनियोजित
कार्य कर दिया था पूर्ण;
छोड़ते हुए निर्मम शब्दों के अमोघ बाण! "

2. स्त्री की भी कुछ भावनाएँ होती हैं, अगर उनका सम्मान नहीं किया गया तो विवशता या भावुकता में किए गए फैसले, खासकर विवाह विषयक निर्णय के कुपरिणाम देखने को मिलते हैं।

3. कवि ने मंथरा जैसे पात्रों के माध्यम से दर्शाया है कि -पारिवारिक रिश्तों में किस तरह दरारें पड़ती हैं, इससे बढ़कर और कोई उदाहरण, पौराणिक ग्रन्थों में नहीं मिलता। "मैं विष खाकर मर जाऊँगी; परंतु सपत्नी की दासी बनकर नहीं रहूँगी। " दुष्टों के अमंगलमय वचन पवित्र हृदय को कलुषित कर ही देते हैं। फिर यहाँ तो राम की इच्छा से रामकाज कराने के लिये भगवती सरस्वती कैकेयी की मति फेर गयीं और कुब्जा की जिह्वा पर आ बैठी थी। कैकेयी विलाप करने लगीं। मंथरा ने उन्हें आश्वासन दिया। महाराज से दोनों पूर्व के वरदान मांगने की स्मृति दिलायी। कोपभवन में मान करने की युक्ति भी उसी ने सुझायी।

4. कवि ने तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियों का उल्लेख करते हुए यह बात सिद्ध करने से पीछे नहीं हटे हैं कि आए दिन शत्रुओं के धावों से प्रभावित हो कर राजा अपनी कमसीन उम्र की पुत्रियों का विवाह वयोवृद्ध राजाओं से कर देते थे, बिना अपनी पुत्री की इच्छा को जाने। दशरथ और कैकेयी की शादी इसकी पुष्टि करती है।

5. इस ग्रंथ में महाराज जनक के अनुज कुशध्वज की तीन पुत्रियों मांडवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति के वैवाहिक बंधन के लिए, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के पास प्रस्ताव भेजने का वर्णन मिलता है। मगर आमिष की पुस्तक "सीता'ज सिस्टर" के अनुसार उर्मिला, सीता की सगी बहन थी।

6. कवि ने मंथरा को दासी के पद से मुक्ति देते हुए उसे कैकेयी की सखी का दर्जा दिया है। इस तरह अपने समय से प्रभावित होकर भले ही यह प्रेरणा मिली हो, मगर स्त्री विमर्श का लाभ कैकेयी को न मिलकर मंथरा को दलित विमर्श का लाभ अवश्य मिला है।

नाम मंथरा मंदमती चेरी कैकेयी केरि।
अजस पिटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥

7. कवि कुछ विषयों पर स्पष्ट नहीं कर पाए हैं, जैसे- कैकेयी का पश्चाताप। जब भरत ने उसे माँ कहने से इनकार कर दिया और अपने आपको कैकेयी का पुत्र होने पर कोसने लगा। जितनी आशाएँ उसे भरत पर थी, सारी की सारी नष्ट हो गई। इसके अतिरिक्त, चित्रकूट पहुँच कर श्री राम के सम्मुख जाने से डरकर वह एक पेड़ की ओट में छिप गई। पूछने पर भी जब भरत ने कैकेयी के संबंध में मौन धरण किया तो राम ने स्वयं उन्हें खोज निकाला और उनके चरणों में अपना सिर रखकर कहने लगे,"आपने कोई अपराध नहीं किया है। देवताओं ने सरस्वती को भेजकर मंथरा की बुद्धि में भ्रम उत्पन्न कर दिया था और मेरी भी ऐसी ही इच्छा थी। " श्री राम ने माता को आदर देते हुए समझाया "देवकार्य के लिए मेरा वन आना आवश्यक था। मेरी ही इच्छा से आप इसमें निमित्त बनी हैं। आपने कोई भी अपराध नहीं किया। सम्पूर्ण संसार की निंदा, सदा के लिए अपयश लेकर भी आपने मेरे कार्य को पूर्ण होने में योग दिया है। मैं आपसे अत्यंत प्रसन्न हूँ। आप आनंद से अयोध्या लौटें। श्री भगवान का भजन करने में चित्त लगावें। आपकी आसक्ति का नाश हो गया है। अपमान तथा घृणा ने आपके प्रबल अहंकार को नष्ट कर दिया है। आप निश्चय ही भगवत धाम प्राप्त करेंगी। " कवि उद्भ्रांत ने कैकेयी के दोष-निवारण पर चुप्पी साधी है। आदि कवि वाल्मिकी ने कैकेयी की दुष्टता और कुटिलता का स्पष्ट शब्दों में चित्रण किया है। चित्रकूट की यात्रा करते समय राम को यह

आशंका हमेशा बनी रहती है कि कहीं कैकेयी, कौशल्या व सुमित्रा को जहर खिलाकर मार न दे। भरत को राज्य दिलाने के लिए दशरथ के प्राण न ले ले। सीता के द्वारा रामायण में आगे जाकर कैकेयी के दोष निवारण का प्रयत्न किया गया है। जब भरद्वाज राम से कहते हैं- कैकेयी को दोष नहीं देना चाहिए क्योंकि राम का निर्वासन सभी के हित में होगा। इसी तरह शापदोष सहित कैकेयी का भी उल्लेख मिलता है कि उसने कभी किसी ब्राह्मण की निंदा की थी और ब्राह्मण ने कैकेयी को शाप दिया था कि तुम्हारी भी निंदा की जाएगी। शाप का उल्लेख रामायण मंजरी, कृतिवास और बलराम दास के रामायणों में मिलता है। विमल सूरी के अनुसार कैकेयी ने भरत का वैराग्य दूर करने के लिए भले ही राज्य मांगा था, मगर राम के लिए वनवास नहीं। वे स्वेच्छा से वन की ओर प्रस्थान करते हैं। इसी तरह वसुदेवहिन्डी,धर्मखिणड़, तत्वसंग्रह रामायण आदि में अलग-अलग प्रसंगों का उल्लेख मिलता है। प्रतिमा नाटक में कैकेयी के दोष निवारण के लिए अलग भाव का प्रयोग किया है- जब राम को वशिष्ठ, आदि के परामर्श के पश्चात वन भेजने का निर्णय लिया जाता है, तो भरत उनसे पूछते हैं- आपने चौदह वर्ष का वनवास क्यों दिलाया तो, कैकेयी उत्तर देती है चौदह दिन के स्थान पर उनके मुंह से गलती से चौदह बरस निकल गया। भवभूति के महावीर चरित और मुरारीकृत अनर्घराघव में कैकेयी को दोषी न ठहराते हुए स्वयंवर के समय शूर्पणखा मंथरा के वेश में मिथिला पहुँचकर दशरथ को कैकेयी के फर्जी पत्र देने का उल्लेख मिलता है जिसमें वर के बल पर राम का निर्वासन मांगा गया।

इस तरह बाल रामायण, बलराम दास रामायण, तोरवे रामायण, रामलिंगमृत तथा राम चरित्र मानस में इस संबंध में अलग-अलग उल्लेख मिलता है।

8. रामकथा के अनुसार कैकेयी को वरप्राप्ति की संख्या और उनके विषय में भिन्नता पाई जाती है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार कैकेयी को दो वर प्राप्त हुए थे। जबकि महाभारत, रामकियन और पदमपुराण के अनुसार उन्हें केवल एक वर मिला था जिसके आधार पर वह भरत के लिए राज्य और राम के लिए वनवास मांग सकती थी। आनंद रामायण के अनुसार- एक मुनि ने बालिका कैकेयी की सेवा से संतुष्ट होकर यह वरदान दिया था कि समय पड़ने पर तुम्हारे हाथ वज्र जैसे कठिन हो जाएंगे। जबकि तेलुगू द्विपद रामायण के अनुसार शम्बर ने दशरथ से युद्ध करते समय माया का सहारा लिया था। लेकिन धबलंग से सीखी हुई माया के द्वारा कैकेयी ने शंबर की माया का प्रभाव नष्ट कर के दशरथ को बचाया था। इसी तरह 'भावार्थ रामायण' में कैकेयी ने राजा दशरथ के इन्द्र के विरोध युद्ध में सहयोग करने, कृतिवास रामायण तथा असमिया बालकांड में शम्बर युद्ध के अवसर पर कैकेयी को एक वर मिला था। लोक गीतो में

कैकेयी दशरथ के पैर से काँटा निकालकर वर प्राप्त करती है। पाश्चात्य वृतांत के अनुसार कैकेयी ने बिच्छू से डसे हुए दशरथ को स्वस्थ कर दूसरा वर प्राप्त किया था। इसी तरह संधदास की वसुदेवहिण्डी में कैकेयी की वरप्राप्ति का वर्णन मौलिक है। प्रथम वर उनको कामशास्त्र में निपुणता के कारण दिया जाता है। दूसरे वर की कथा इस प्रकार है। किसी दिन एक सीमावर्ती राजा ने दशरथ को यद्ध में कैदी बना लिया था। यह सुनकर कैकेयी ने सेना का नेतृत्व लेकर विरोधी राजा को हराया तथा दशरथ को मुक्त किया था। इसी तरह पउमचरिय, दशरथ जातक, दशरथ कथानक में कैकेयी को एक वर देने का उल्लेख मिलता है, वह भी भरत के जन्म के अवसर पर। जबकि ब्रह्म पुराण में कैकेयी को तीन वर प्राप्त होते हैं।

आठवाँ सर्ग

रावण की बहन ताड़का

कवि उद्भ्रांत ने रामायण के अनुरूप ही ताड़का के चरित्र का गठन किया है। ताड़का यक्ष की पुत्री थी। डॉ. अम्बेदकर ने अपने निबंध "शूद्राज एंड द काउंटर रिवोल्यूशन" में स्पष्ट किया है कि आर्यों के प्राचीन धार्मिक साहित्य का अध्ययन करने पर लोगों के अनेक समुदायों और वर्गों का पता चलता है। सबसे पहले आर्यों का पता चलता है, जो चार वर्गों में विभाजित थे-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इनके अतिरिक्त और इनसे भिन्न थे-1)असुर, 2)सुर या देव, 3) यक्ष 4) गंधर्व, 5) किन्नर, 6) चारण, 7) अश्विन और 8) निषाद। निषाद जंगल में बसी, आदिम जनजातियाँ और असभ्य थे। असुर एक जातिगत नाम है, जो बहुत-सी जनजातियों को दिए गए अनेक नामों में से है। नए नामों में दैत्य, दानव, दस्यु, कलंज, कलेय, कलिन, नाग निवात-कवच, पौलम, पिशाच और राक्षस हैं। हम नहीं जानते कि सुर और देव भी उसी तरह के जनजातीय लोग थे। जिस तरह के असुर थे। हम सिर्फ देव समुदाय के प्रमुखों को जानते हैं, जिनमें ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, सूरी, वरुण, सोम आदि हैं। वे एक अन्य निबंध, एनशिएन्ट इंडिया आन एकसीइमूमेशन में यह भी बताते हैं कि यक्ष, गण, गन्धर्व और किन्नर मानव परिवार के सदस्य थे और देवों की सेवा में थे। यक्ष महलों के प्रहरी होते थे।

इस सर्ग में कवि उद्भ्रांत ने ताड़का को रावण की बहन बताते हुए लंका में जंगल से जड़ी-बूटियों और खनिज पदार्थों को भेजने का कार्य करने वाला बताया है। उसके साथ उसका भाई मारीच तथा बलशाली पुत्र सुबाहु सहयोग करते थे। उसी जंगल में विश्वामित्र भी अपने शिष्यों के साथ यज्ञ कर्म में लीन थे, एक दिन अपने साथ फलमूल लेकर जा रहे थे कि भूख से पीड़ित ताड़का उनकी तरफ लपकी। उनके पीछे थे राम और लक्ष्मण। विश्वामित्र के आदेश पर राम ने तीर चलाकर ताड़का को हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त कर दिया।

कवि के इस संकेत को देवदत्त पट्टनायक की पुस्तक "सीता" में दूसरे दृष्टिकोण से देखा गया है कि रामायण में कई औरतों को राक्षसी का दर्जा देकर या तो उन्हें मारा या फिर उन्हें परेशान किया गया। इनमें ताड़का का नाम सबसे पहले आता है। शूर्पणखा का नाम भी किसी से छुपा हुआ नहीं है, मगर यथोमुखी, सिंहिका, सुरसा लंकिनी, मंदोदरी(रावण की पत्नी) तथा चंद्रसेणा(महीरावण की पत्नी) के नाम भी शामिल है। इन्हें जंगली और पालतू प्रकृति के रूप में मानना मुश्किल है। सीधी-सी बात है उस जमाने में औरतों के प्रति पुरुष हिंसा बहुत ज्यादा होती थी।

विश्वामित्र के यज्ञ की तुलना इंद्रप्रस्थ नगर बसाने के लिए पांडवों द्वारा खांडव जंगल जलाने से की जा सकती है। यज्ञ का मतलब जंगल साफ करना, आदमियों के रहने योग्य कॉलोनी बनाने का प्रतीक है। उस जमाने में गंगा के मैदान से दक्षिण के घने जंगलों में वैदिक जातियों का प्रवेश माना जा सकता है। तत्कालीन संघर्षों के कार्य मिशनरी तथा evangelist की तरह होते थे, जो यक्ष के माध्यम से उपनिवेशवाद की स्थापना करते थे। फिर अपने शासक, सामन्त, जमींदार और पुरोहित जातियों को अपने बचाव के लिए वहाँ शरण देते थे।

ताड़का प्रसंग में कवि ने स्वयंप्रभा के बारे में भी उल्लेख किया है। वे पंक्तियाँ भिन्न में है-

"उसी निचोट सूने क्षेत्र के निकट

आश्रम एक बनाकर

तपस्या में लीन रहती थी

मेरुसावर्ण ऋषि की कन्या

स्वयंप्रभा। "

स्वयंप्रभा के बारे में कामिल बुल्के की 'रामकथा' में उल्लेख आता है- हनुमान तथा उसके साथी विन्ध्य की गुफाओं में सीता की खोज करते हुए एक निर्जल तथा निर्जन वन में पहुँच गए। कण्ड ने अपने द्वादश वर्षीय पुत्र की अकाल मृत्यु से शोकातुर हो कर उस प्रदेश को शाप दिया था। इस स्थल पर अंगद ने एक असुर का वध किया। सभी तृप्त वानरों ने विन्ध्य की दक्षिण-पश्चिम कोटि पर ऋक्षबिल नमक गुफा से जल पक्षियों को निकलते देखा। अंगद ने घर पर पहरा देने वाले दानव को मार डाला और सब वानर हनुमान के नेतृत्व में अंधेरी गुफा में प्रवेश कर गए। एक योजन तक आगे बढ़कर उन्होंने एक ज्योतिर्मय सुवर्णनगरी में एक वृद्धा तपस्विनी से भेंट की। उसने अपना परिचय देकर कहा- "मैं मेरुसावर्ण की पुत्री स्वयंप्रभा हूँ, मय नामक दानव ने इस नगर का निर्माण किया था। किन्तु हेमा नामक अप्सरा पर आसक्त हो जाने के कारण इन्द्र ने मय का वध किया था। बाद में ब्रह्मा ने हेमा को यह वन प्रदान किया था और मैं हेमा के लिए इसकी रखवाली करती हूँ; तब स्वयंप्रभा ने वानरों को भोजन दिया और आँखें बंद कर लेने का आदेश देकर वह उनको गुफा से बाहर ले गई। वानरों को विन्ध्याचल तथा समुद्र दिखलाकर उसने पुनः गुफा में प्रवेश किया (सर्ग48-52)।

कंवल भारती ने अपनी पुस्तक "त्रेता विमर्श और दलित चिन्तन" में कवि उद्भ्रांत पर ताड़का वध की पृष्ठ भूमि के बारे में सवाल उठाया है कि ताड़का वध को जाने बिना

उसके औचित्य पर विचार करना अनुचित है। इस बात की पुष्टि के तौर पर डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित ने अपनी पुस्तक "त्रेता एक अंतर्यात्रा" में लिखा है कि किसी रचनाकार/कलाकार का जन्म-स्वीकृत आदेशों में तनिक-सा भी हस्तक्षेप कठिनाइयाँ उपस्थित कर देता है। यहाँ तक कि उदार समाज भी विपरीत आचरण वाले परिवर्तन को इतनी सरलता से स्वीकार नहीं कर पाते। नहीं तो, *लेन को* की महाराज शिवाजी विषयक पुस्तक, M.F.Hussain के हिन्दू देवी-देवताओं के निर्वस्त्र चित्रों, माइकल मधुसूदन दत्त की "मेघनाथ वध" और भगवान सिंह लिखित उपन्यास "अपने-अपने राम" विवादों के घेरे में नहीं होते।

रामायण के अनुसार अगस्त्य मुनि ने ताड़का के यक्षपति सुन्द की हत्या कर दी थी। वह अपने पति की हत्या का बदला लेना चाहती थी। मगर अगस्त्य के शाप ने उसे राक्षसी बना दिया। तभी से वह अगस्त्य के रहनेवाली जगह के इर्द-गिर्द प्रदेश को उजाड़ने लगी। चूँकि ताड़का में एक हजार हाथियों का बल था और अगस्त्य मुनि उसका सामना नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्होंने अपने शिष्य विश्वामित्र को अयोध्या भेजकर राम को लाने का आदेश दिया था, तो विश्वामित्र ने उन्हें यह कहते हुए समझाया था "villains have no gender-shoot! ". तुम्हें स्त्री हत्या का विचार करके दया दिखाने की जरूरत नहीं है। बल्कि गौ और ब्राह्मणों के हित के लिए इस दुराचारिणी का वध करना आवश्यक है। राम तो आखिर राम ठहरे। वह अपने गुरु की आज्ञा का उल्लंघन कैसे कर सकते थे? राम ने लक्ष्मण के साथ मिलकर अत्यंत ही क्रूरता के साथ ताड़का को मार डाला। इस प्रसंग को देवदत्त पट्टनायक वीरेंद्र सारंग के उपन्यास "वज्रांगी" के कथानक की तरह अपने विचार प्रस्तुत करते हैं कि दण्डकारण्य की जन-जातियाँ आर्यों के घुसपैठ को रोकना चाहती थी। क्योंकि वे अपनी सांस्कृतिक शालाएँ और सैनिक छावनियाँ स्थापित कर उस पूरे क्षेत्र को अपने कब्जे में करना चाहते थे और इन गतिविधियों के मुखिया अगस्त्य मुनि थे, जो उनको दीक्षित कर अपनी दूरगामी महत्वाकांक्षी योजना को फलीभूत करना चाहते थे, जबकि जनजातीय समुदाय आर्य प्रभुत्व को स्वीकार नहीं कर यक्ष को ध्वस्त करते हुए आश्रमों को उजाड़ देते थे।

एक बात और कंवल भारती ने उठाई है कि अगस्त्य ऋषि ने अपना शाप देकर उसे राक्षसी बना दिया था। महात्मा ज्योतिबा फुले अपनी पुस्तक 'गुलामगिरी' में "शाप, मन्त्र, जादू तंत्र" आदि का पूरी तरह खंडन करते हैं। उनके मतानुसार वे अनपढ़ लोगों को अलौकिक शक्ति के प्रदर्शन के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर न केवल उन्हें लूटते है वरन उनका आर्थिक शोषण भी करते हैं। क्या विज्ञान में आज तक कभी ऐसा कोई सबूत है कि किसी ने शाप देकर राक्षस, पशु, कोढ़ी, पत्थर आदि बना दिया हो। यह केवल एक

आतंक फैलाने वाली चाल है। हुआ कुछ और होगा, मगर उसे अपना वर्चस्व कायम रखने के लिए दूसरा नाम रख दिया। कंवल भारती के अनुसार अगस्त्य मुनि ने ताड़का के चेहरे पर या तो तेजाब डाला होगा या फिर किसी धारदार हथियार से उसके चहेरे को विकृत कर दिया होगा।

इन सब तथ्यों को नकार कर आज तक के फिल्म निर्माता, कहानीकार, अथवा कलाकार राम को हीरो बनाने के लिए अथवा राम के जन्म-स्वीकृत हीरो होने का आर्थिक फायदा उठाने के लिए अक्सरतया दूरदर्शन अथवा फिल्मों में इस तरह का अंकन किया जाता है कि मानो ताड़का एक विलियन के रूप में खतरनाक स्त्री की भूमिका अदा कर रही हो। उदाहरण के तौर पर स्टार प्लस पर दिखाए जा रहे धारावाहिक *"सिया के राम"* में ताड़का को ताड़ के पेड़ के ऊपर चिपक कर बैठने वाली रक्त पिशाच चमगादड़ के रूप में देवदत्त पट्टनायक जैसे मुख्य कहानी सलाहकार होने के बावजूद भी दिखाया जाता है। जो कि यथार्थ से कोसों दूर है, मगर उसे राम के जीवन के अनछुए प्रसंग के रूप में प्रस्तुत करना भारतीय संस्कृति और मिथकीय इतिहास के साथ न केवल एक खिलवाड़ है वरन् आर्थिक लाभ के लिए उठाया गया एक क्षुद्र कदम के सिवाय और कुछ क्या हो सकता है? यह कहा जाता है कि *"सिया के राम" धारावाहिक बनाने का आइडिया* प्रोड्यूसर ने 'त्रेता' से ही लिया,जिसे वर्ष 2010 में मुंबई में 'प्रियदर्शनी सम्मान' से भी सम्मानित किया गया था और जिस पर बीएन प्रोडक्शन के रवि चोपड़ा सीरियल बनाना चाहते थे,मगर अस्वस्थ हो जाने के कारण नहीं बना सके।

तुलसीदास ने *रामचरितमानस* में बालकांड के दोहा 209/56 में लिखा है-

चले जात मुनि दीन्हि दिखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहि बान प्राण हरि लिन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥

जाते-जाते मुनि ने ताड़का राक्षसी दिखा दी, वह राक्षसी उन तीनों का उस रास्ते निकलना सुनकर क्रोधित हो दौड़ी। रामचन्द्र ने एक ही बाण में उसके प्राण हर लिए और उसे गरीबनी जान कर निज पद दे दिया।

यदि रामचन्द्र को ईश्वर मान तुलसीदास के 'ईश' के बारे में कुछ विचार ही न किया जाए, तब तो खैर कुछ कहना ही नहीं, अन्यथा इसमें कहाँ का आर्य शौर्य है कि निशस्त्र दौड़ी चली आती हुई एक अबला को दूर से ही बाण मारकर उसकी हत्या कर दी गई और आगे फिर यह लिखना, क्या जले पर नमक छिड़कने के समान नहीं है कि उसे गरीबनी जान अपना पद अर्थात् बैकुंठ दे दिया?

नौवां सर्ग

अहिल्या के साथ इंद्र का छल

उद्भ्रांत प्रगतिशील विचारधारा के अग्रणी कवि है। इसलिए उन्होंने इस कविता में अहिल्या को तुलसीदास की अहिल्या से विपरीत रूप दिया है। क्योंकि इस संदर्भ में तुलसी दास ने जो कथा अपने मानस में प्रस्तुत की है,वह न केवल नारी विरोधी है वरन् पुरुष सत्ता को ज्यादा बढ़ावा देती है। मानस के बालकांड (210/11,12) में तुलसीदास कहते है-

आश्रम एक दीख मग माहीं,खग मृग जीव जन्तु तंह नहीं।
पूछा पुनिही सिला प्रभु देखि,सकल कथा मुनि काही विसेषी॥ (मानस,बाल210/11-12)

मार्ग में उन्होंने एक आश्रम देखा जिसमें कई पशु-पक्षी और जीव जन्तु नहीं थे,वहाँ एक शिला को देखकर श्री रामचन्द्र ने मुनि से पूछा तो मुनिवर ने सारी कथा विस्तार से कह सुनाई।

कथा का संक्षेप इतना ही है:-

गौतम नारी श्राप बस उपल देह धरि धीर
चरण कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर। (मानस,बालकांड-210)

हे रघुवीर! गौतम की स्त्री ने शाप के कारण बड़े धीरज से पत्थर का शरीर धारण कर रखा है,यह आपके चरण कमलों के धूल चाहती है,इस पर कृपा कीजिए।

विस्तृत कथा यह है कि इन्द्र और चंद्रमा ने मिलकर गौतम ऋषि तथा गौतम नारी दोनों को ठगा। गौतम नारी ने इन्द्र को गौतम ऋषि समझकर ही उससे सहवास किया था। बाद में गौतम ऋषि के आने पर इन्द्र से पूछने पर उसे पता लगा कि वह ठगी गई है। असाधारण विकट परिस्थिति में अहिल्या ने झूठ का आश्रय लिया तो ऋषि ने उसे शाप दे दिया कि तू पत्थर हो जा।

अहिल्या दो अपराधों की अपराधिनी थी,पहला परपुरुषगमन की तथा दूसरा,झूठ बोलने की। परपुरुषगमन उस ने वंचिता हो कर किया था और झूठ बोलने का अपराध भयवश। इन दोनों अपराधों के लिए ही उसे युग युगों तक पाषाण हो कर रहना पड़ा। सारे पौराणिक साहित्य में कोई एक भी ऐसा उदाहरण है जहां ऋषिमुनि इस तरह के अपराध के लिए किसी के शाप के

कारण पाषाण बन गए हो? युगों-युगों से पत्थर बनी पड़ी रहने के बाद रामचन्द्र के चरण-स्पर्श से जब अहिल्या प्राणवान होती है तो वह प्रार्थना करती है-

"मैं नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जन सुखदाई" -मानस,बाल 211/छंद2

मैं अपवित्र नारी हूँ और आप जगत को पवित्र करने वाले रावणरिपु हैं और भक्तों को सुख देने वाले हैं।

सोचने की बात है कि इस अपराध के कारण चंद्रमा अपवित्र नहीं हुआ,वह चंद्र देवता बना रहा। इन्द्र अपवित्र नहीं हुआ,इन्द्र देवता बना रहा,गौतम अपवित्र नहीं हुआ,वह गौतम ऋषि बना रहा। एकमात्र अहिल्या ही अपवित्र हुई,इसके सिवा इसका दूसरा कौनसा कारण बताया जा सकता है कि वह नारी है? राम लक्ष्मण का जनकपुरी जाना,धनुष तोड़ना,परशुराम संवाद आदि 'रामचरित मानस' के अत्यंत प्रसादगुण पूर्ण स्थल हैं। श्री रामचन्द्र जब जनकपुरी जाते है तो वहाँ सीता की सखियों में से एक रामचन्द्र के बारे में विश्वास प्रकट करती हुई कहती है:-

परसि जासु पदपंकज धूरि,तरी अहिल्या कृत अधभूरी।

सो कि रहिहि बिनु सिव धनु चरें,यह प्रतित परिहरिअ न भोरें।

-मानस,बाल 223/5-6

जिन रामचन्द्र के चरणकमलों के धूलि लगते ही घोर पापिन अहिल्या भी तर गई,क्या वह शिव के धनुष को तोड़े बिना रहेंगे! यह भरोसा भूल कर भी न छोड़ना चाहिये।

अब सीता स्वयंवर समाप्त हो चुका है। राजा और रानी प्रेममग्न होकर रामचन्द्र के पवित्र चरणों को धोने लगे। वे चरण कैसे हैं-

जेपरसि मुनिबनिता लही गति रही जो पातकमई (-मानस,बाल324/छंद2)

जिनका स्पर्श कर के मुनि पत्नी अहिल्या जो महा पापमयी थी,वह भी मति पा गई अर्थात् उसका भी उद्धार हुआ या नहीं,यह भी किसी संदेहवादी नास्तिक की जिज्ञासा ही हो सकती है। किन्तु यहाँ प्रश्न यह नहीं है। प्रश्न है कि बिचारी अहिल्या को यहाँ फिर इतनी जल्दी पातकी कहकर क्यों स्मरण किया गया है? उसे छलने वाले चंद्र तथा इन्द्र दोनों देवता बने रहकर पूजे जा रहे हैं? इन दोनों देवताओं द्वारा ठग गया मुनि भी किसी की अवज्ञा का पात्र नहीं बना। तब दोनों देवताओं द्वारा वंचिता अबला एकमात्र अहिल्या ही क्यों पाषाण बनने पर मजबूर हुई? एक ही उत्तर है-वह तुलसी दास के कल्पनालोक की नारी थी।

अलग-अलग ग्रन्थों में अहिल्या के उद्धार के बारे में तरह-तरह की कहानियाँ देखने को मिलती है। वैदिक साहित्य के टीकाकारों ने इसे एक रूपक माना है। 'अहिल्या भूमि' अर्थात् जिस भूमि में हल नहीं चलाया गया है,उस भूमि का वर्षा के अधिष्ठाता देवता इन्द्र का संबंध होना स्वाभाविक प्रतीत होता है। परवर्ती साहित्य में अहिल्या की कथा का पर्याप्त विकास हुआ और उसमें अहिल्या-उद्धार का संबंध राम से जोड़ा गया। महाभारत में गौतम को अहिल्या का पति माना गया है। वास्तव में वैदिक साहित्य में लिखा है कि इन्द्र अपने को गौतम कहलवाते थे।

षडबिश ब्राह्मण - इस पुस्तक में एक कथा आती है,जिसमें देवता तथा असुर दोनों युद्ध कर रहे थे,गौतम दोनों सेनाओं के बीच तपस्या कर रहे थे। इन्द्र ने उनसे अपना गुप्तचर बनने का अनुरोध किया,मगर गौतम ने उसे ठुकरा दिया। तब इन्द्र ने गौतम का रूप धारण कर गुप्तचर बनाने का प्रस्ताव रखा, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। शायद इसी कथा के आधार पर यह माना जाने लगा कि अहिल्या के पति का नाम गौतम ही था और इंद्र को अहिल्या जार नाम से पुकारा जाने लगा।

वाल्मिकी उत्तराकांड में इस संदर्भ में एक दूसरा वृतांत प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार ब्रह्मा ने दूसरे प्राणियों के सर्वश्रेष्ठ अंग लेकर एक ऐसी स्त्री का निर्माण किया,जिसमें 'हला'(कुरूपता) का पूरी तरह अभाव था। इसलिए उसका नाम अहिल्या रखा। इन्द्र अहिल्या की अभिलाषा करते थे, मगर ब्रह्मा ने इसे धरोहर के रूप में गौतम ऋषि के यहाँ रखा। बहुत वर्षों के बाद गौतम ने उसे ब्रह्मा को लौटाया और ब्रह्मा ने तपस्वी गौतम ऋषि की सिद्धि को देखकर उसे पत्नी स्वरूप प्रदान किया।

हरिवंश पुराण के अनुसार वध्यश्व और मेनका की दो संताने थी,दिविदास और अहिल्या। अहिल्या ने गौतम की पत्नी बनकर शतानंद को जन्म दिया। ब्रह्म पुराण इस संदर्भ में कुछ और ही बात कहती है। उसके अनुसार अहिल्या को प्राप्त करने के लिए यह शर्त रखी थी कि जो देवता पृथ्वी की परिक्रमा करके सबसे पहले मेरे पास आए,उसे अहिल्या दी जाएगी। समस्त देवता पृथ्वी की परिक्रमा करने निकले,मगर गौतम ने अर्धप्रसूता सुरभि तथा शिव-लिंग की प्रदक्षिणा की और अहिल्या को प्राप्त किया।

पउंमचरियं के अनुसार अहिल्या जवालानसिंह और वेगवती की पुत्री है। जिसने अपने स्वयंवर के अवसर पर राजा इन्द्र को ठुकराकर राजा नंदिमाली (अथवा आनंदमालाकार) को चुन लिया था।

बाद में नंदिमाली का वैराग्य हुआ और उन्होने दीक्षा ली। किसी दिन इन्द्र ने उस ध्यानस्थ नंदिमाली को बांधा था,जिसका परिणाम यह हुआ कि इन्द्र रावण से हार गये। पाश्चात्य वृतांत में अहिल्या को भूल से विश्वामित्र की पत्नी माना गया है। स्कन्द पुराण और महाभारत में गौतम के पुत्र चिरकारी का उदाहरण प्रस्तुत होता है,जो अपने पिता गौतम के आदेश को ठुकरा देता है कि वह अहिल्या की व्यभिचारिणी होने के कारण हत्या करे। चिरकारी की दृष्टि में उसकी माँ निर्दोष थी,क्योंकि इन्द्र गौतम की अनुपस्थिति में रूप बदलकर अहिल्या के पास गए थे। असमिया बालकांड,रंगनाथ रामायण, के अनुसार गौतम की तपस्या में विध्न डालने के उद्देश्य से इस कृत्य को अन्जाम दिया था। **'ब्रह्मवैब्रतपुराण'** इन्द्र को दुराचारी तथा अहिल्या को निर्दोष मानती है। कीर्तिवास रामायण,के अनुसार इन्द्र गौतम का प्रियतम शिष्य था। इसी तरह गौतम के शाप के कई रूप मिलते है।

महाभारत के अनुसार इन्द्र के दाढ़ी पीली होने,वाल्मिकी उत्तरकाण्ड के अनुसार मेघनाद द्वारा इन्द्र को हराने तथा मनुष्य के पापों का आधा दोष इन्द्र को मिलने,वाल्मिकी बालकांड में इन्द्र को नंपुसक होने,बलराम दास,कंबन रामायण,पदमपुराण के अनुसार सहस्रनयन बनने जैसे अभिशापों का उल्लेख मिलता है। महाभारत में अहिल्या को कोई अभिशाप नहीं मिलता है। पाषाणभूता अहिल्या का उल्लेख सबसे पहले रघुवंश और आगे चलकर नरसिंह पुराण,स्कन्ध पुराण,महानाटक,सारलादासकृत महाभारत, गणेश पुराण अभी में मिलता है। वाल्मिकी के बालकांड में गौतम यह कहते है कि राम का आथित्य सत्कार करने के पश्चात तुम पूर्ववत अपना शरीर धारण कर मेरे पास आओगी अर्थात् वपुरधरियिष्यसि। शायद यहीं से अहिल्या के शिला बनने की धारणा पैदा होती है।

रामकियेन के अनुसार गौतम ने यह अभिशाप इसलिए दिया था कि रामावतार के समय वह सेतु बनाने में काम आए और सदा-सदा के लिए सागर में दफना दिया जाए। गौतम का एक शाप जिसके अनुसार अहिल्या शुष्क नदी बन गई थी,(शुष्कनदी भव) कम प्रचलित है।

एक कथा के अनुसार अहिल्या की पुत्री अंजना का उल्लेख मिलता है। जब गौतम ने अपनी दिव्यदृष्टि से अहिल्या के व्यभिचार के बारे में जाना तो उसने अहिल्या से असलियत के बारे में पूछा। अहिल्या ने उत्तर दिया यह मार्जार है, इसके दो अर्थ हैं। इन्द्र के दो रूप धारण करने अथवा माँ के जार होना। इस पर वह अहिल्या का शिला बनने तथा इन्द्र को सहस्रयोनि बनने

का अभिशाप देते है। किवदंती के अनुसार अहिल्या और गौतम के दो पुत्र बाली और सुंग्रीव होते हैं।

अध्यात्म रामायण के रचयिता 'पाषाणभूता अहिल्या' की कथा के रूप में अहिल्या को शिला पर खड़ी होकर तपस्या करने से जोड़ा है। इस तरह अहिल्या उद्धार की एक प्रसिद्ध पौराणिक कथा ब्राह्मण ग्रन्थों के अहिल्या जार इन्द्र से प्रारम्भ होकर अनेक रूप धारण करती हुई अहिल्या तारक राम की भक्ति में विलीन हो जाती है। नाटककारों ने राम की कथा को बदलाने में किसी भी तरह का कोई संकोच नहीं किया है। जानकी परिणय में अहिल्या उद्धार की कथा इस प्रकार आती है कि जब राम मायावी सीता के प्राण संकट में देखकर चट्टान से कूदकर अत्महत्या करना चाहते है तो राम के स्पर्श से चट्टान से प्रकट होकर अहिल्या राम को इस राक्षसी माया का रहस्य बताती है।

यूरोपियन स्कॉलर इन्द्र की तुलना ग्रीक मिथक जिउस(zeus)से करते है। दोनों आकाश के देवता है और स्त्रियॉ से प्रेम सम्बन्धों के लिए प्रसिद्ध है। जिउस नेवला,सूर्य की किरण या उनके पतियों के छद्म रूप धारण कर अनेकानेक राजकुमारियों तथा निंफ (nymph) के साथ बलात्कार करते है और अनेकानेक पोरसेउस(Porseus)और हरकुलस(Hercules) जैसे बड़े नायकों को जन्म देते हैं। कुछ आलोचक पुरुषों को आकाश,संस्कृति तथा स्त्रियों को पृथ्वी संस्कृति से जोड़ते हैं तो कुछ देव संस्कृति और आर्य संस्कृति के सम्बन्धों के प्रतीक के रूप में देखते हैं।

नरेंद्र कोहली ने अपने उपन्यास 'रामकथा' में अहिल्या और गौतम की कथा को एक नए रूप में आधुनिक समय के सापेक्ष रखने का प्रयास किया है। जिस तरह कवि उद्भ्रांत अहिल्या के बारे में अपनी बात रखते है कि गौतम और अहिल्या के बीच काफी प्रेम था। मगर एक बार पड़ोसी राजा इन्द्र को अपने यहाँ रुकने का न्यौता देकर अपने पारिवारिक जीवन में आग लगा दी। इन्द्र पास के सुरपुर राजा का नरेश था। वह अहिल्या को देखकर मोहित हो गया। गौतम ऋषि की अनुपस्थिति में अपने मन की कुत्सित मुराद पूरी करने के लिए अमावस्या की रात में गौतम का वेश धारण कर अहिल्या के पास जाने का प्रयास किया। मगर अहिल्या की छठी इंद्रिय ने इन्द्र के इरादों को भाँप लिया और उसे बाहर निकलने का इशारा दिया,मगर तभी गौतम ऋषि के प्रवेश ने उसे स्तम्म्भित कर कोप भाजन का शिकार बना दिया। गौतम ऋषि के मन में अपने पत्नी के प्रति संशय पैदा हुआ और उसे शिला की तरह निस्पंद एकांतवाश में ज़िदगी जीने के

लिए अकेला छोड़ दिया। तत्कालीन रूढ़िग्रस्त समाज में निरपराध स्त्रियों की स्थिति अच्छी नहीं थी। उन्हें समाज से निष्कासित कर दिया जाता था। जब राम अपने स्थान से नहीं हिलने वाली अहिल्या के संपर्क में आए तो फिर से अहिल्या को सामाजिक स्वीकृति मिल गई। उद्भ्रांत जी लिखते हैं:-

"मैं अवाक सुन रही थी
राजा इंद्र के वचन।

कुछ भी कहना उचित नहीं जान मैंने
तर्जनी उठा दी द्वार की ओर
इंद्र को संकेत देते हुए
बाहर जाने का।

और देखा गौतम ऋषि
द्वार पर खड़े थे
आंखों में लाल अंगारे लिए/

मेरे क्रुद्ध संकेत पर ही इंद्र
वापसी के लिए भूल चुके थे
ऋषिवर को देखकर-
क्षण भर को सहमे
फिर तीव्र गति से निकल गए
बाहर। "

नरेंद्र कोहली उद्भ्रांत जी के इस तथ्य को दूसरी निगाहों से देखते हैं। उस जमाने में आश्रम,आधुनिक स्कूल अथवा विश्वविद्यालय के प्रतीक ये और ऋषि कुलपतियों की तरह उन संस्थानों के विभागाध्यक्ष होते थे। नरेंद्र कोहली अपने उपन्यास की अंतर्वस्तु में इन्द्र को पड़ोसी देश का राजा बताते हुए गौतम ने वहाँ शरण दी थी। अहिल्या अपने ज्वर पीड़ित पुत्र शत के साथ सो रही थी, मगर इन्द्र के कामुक मन ने अत्यंत रूपवती स्त्री को देखकर उसे एक कंगाल ऋषि से जुड़ी रकर कष्ट भोगना व्यर्थ माना। इन्द्र गौतम के यहाँ आतिथ्य स्वीकार कर मदिरा

पान करते हुए गौतम ऋषि की अनुपस्थिति में अहिल्या को अकेले देख उसका भोग करना चाहते थे। अहिल्या नींद में थी,मगर उस अनजान स्पर्श को अच्छी तरह अनुभव कर पा रही थी। जब अहिल्या की मुख से छींक निकली और उसका बेटा शत ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। आस-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए,उस समय गौतम ऋषि अपनी कुटिया में लौटे तो इन्द्र ने निर्लज्ज दुष्टता के साथ एक वाक्य भीड़ की ओर उछाल दिया,"पहले तो स्वयं बुला लिया और अब नाटक कर रही है" -- यह कहते हुए वह अपने विमान में बैठकर अपने देश चला गया। विश्वामित्र द्वारा राम लक्ष्मण को यह कहानी सुनाने के पीछे न केवल जीवन में संघर्ष की भूमिका वरन् जन-मानस में अन्याय के रूप को स्पष्ट कर उसके विरुद्ध आक्रोश भड़काना,क्रांति की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना होगा। यदि एक स्त्री परपुरुष को काम आव्हान देती है और पुरुष उसे स्वीकार कर उसके पास आता है तो समाज उसके लिए स्त्री को ही दोषी ठहराएगा,इन्द्र ने ऐसे ही चाल चली है। अहिल्या को लांछित कर वह अपने आतिथेय ऋषि की पत्नी के साथ बलात्कार जैसे गंभीर अपराध तथा पाप को छिपा जाना चाहता है। गौतम ऋषि ने अहिल्या के अपमान की बात ऋषि समाज के समक्ष रखी तथा उनसे देव संस्कृति के पूज्य और ऋषियों के संरक्षक पद से दुःश्चरित्र इन्द्र को पदच्युत करने का आव्हान किया,मगर भले ही,एक वर्ग अहिल्या को निर्दोष मानता था,फिर भी तो उसका सतीत्व भंग हो चुका था। इन्द्र को दंड देने या न देने से अहिल्या का उद्धार नहीं हो सकता था। सामाजिक प्रतिष्ठा के अवमूल्यन के कारण गौतम ऋषि के आश्रम के कुलपति रहने पर तरह-तरह के सवाल उठने लगे। सवाल ये उठता है कि अगर कोई पापी आदमी किसी निर्बल नारी के साथ अत्याचार करता है तो क्या उसके आश्रम भी भ्रष्ट हो जाएंगे?केवल इस आधार पर जिस पर अत्याचार हुआ है,वह स्त्री है। यही नहीं,जहां भी गौतम जाएंगे तो उसकी तरफ हर व्यक्ति के मन में इन्द्र की भोग्या अहिल्या की तरह उस पर उंगली उठेगी और जब उसका बेटा बड़ा हो जाएगा,तब भी समाज उस पर छींटाकशी करने से बाज नहीं आएगा। इस तरह की दुर्घटनाएँ पद की शक्ति,धन की शक्ति,सत्ता की शक्ति को सर्वोपरि ठहराते हुए जन सामान्य में सत्ता धारी वर्ग के विरुद्ध खड़ा होने के लिए तैयार नहीं कर पाती। ज्ञान,यश और सम्मान के क्षेत्र में अग्रणी गौतम ऋषि जैसे नागरिकों के अस्तित्व को खतरे में डाल देता है,जो न केवल उनके विकास वरन् भविष्य का भी भक्षण करती है,ऐसे ही विचारों से अहिल्या ने गौतम ऋषि को दूसरे प्रदेश भेजकर स्वयं को भूमिगत कर एकाकी जीवन जीने के लिए बाध्य किया। जब राम जैसे महान पुरुषों ने विश्वामित्र के कहने पर उस परित्यक्त आश्रम को खोजकर अहिल्या का उद्धार किया तो फिर से उसे मानवीय समाज में

असंपृक्त,एकाकी,जड़वत,शिलावत जीवन जीने से मुक्त होकर सामाजिक मर्यादा को प्राप्त किया। राम का संरक्षण पाने पर जड़-चिंतक,ऋषि,मुनि,पुरोहित,ब्राह्मण समाज नियंताओं ने अहिल्या को सामाजिक और नैतिक स्तर पर अपराधी मानना बंद कर दिया।

इस संदर्भ में अगर कंवल भारती की बात को अगर छोड़ा जाए तो यह कड़ी अपूर्ण रह जाएगी। वे इसे आर्य और देव संस्कृति के संबंध के रूप में मानते है। रामायण की अहिल्या निर्दोष नहीं है। रामायण के अनुसार,जब महर्षि गौतम आश्रम पर नहीं थे,शचिपति इन्द्र गौतम मुनि का वेश धारण कर वहाँ गया और अहिल्या से बोला, “सदा सावधान रहने वाली सुंदरी! रति की इच्छा रखने वाले प्रार्थी पुरुष ऋतुकाल की प्रतीक्षा नहीं करते हैं। सुंदर कटि प्रदेश वाली सुंदरी। मैं तुम्हारे साथ समागम करना चाहता हूँ। ” अहिल्या ने मुनि के वेश में भी इन्द्र को पहचान लिया। ‘अहो! देवराज इन्द्र मुझे(भोगना) चाहते है’- कौतूहलवश उसने उसके साथ समागम करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। रति के पश्चात अहिल्या ने कहा- “मैं आपके समागम से कृतार्थ हो गई,अब आप गौतम के आने से पहले ही शीघ्र चले जाइए और मेरी रक्षा कीजिए। ”

तब इन्द्र ने भी अहिल्या से कहा, “सुंदरी! मैं भी संतुष्ट हो गया। अब जैसे आया था। उसी तरह चला जाऊंगा। ” इसी समय गौतम आ गए और दोनों को देख लिया। तत्काल इन्द्र को शाप दे दिया कि उसके अंडकोष गिर जाए और वह अंडकोष रहित हो गया। इसके बाद उन्होंने अहिल्या को शाप दे दिया। दुराचारिणी! तू यहाँ कई हजारों वर्षों तक केवल हवा पीकर या उपवास करके कष्ट उठाती हुई राख़ में पड़ी रहेगी और समस्त प्राणियों से अदृश्य रहकर इस आश्रम में निवास करेगी। बाद में इन्द्र के अनुरोध पर पितृ देवताओं ने भेड़ के अंडकोष लगाकर इन्द्र का तो उद्धार कर दिया, पर अहिल्या का उद्धार राम ने उसके चरण छूकर किया। इस कथा से निम्नलिखित प्रश्न उभरते हैं-

1) इन्द्र ने यह क्यों कहा कि रति की इच्छवाले पुरुष ऋतुकाल की प्रतीक्षा नहीं करते है?
2) अहिल्या ने मुनिवेश में भी इन्द्र को कैसे पहचान लिया?
3) इन्द्र को पहचानने के बाद अहिल्या ने यह क्यों कहा कि अहो,देवराज मुझे भोगना चाहते हैं?
4) अहिल्या ने इन्द्र का प्रस्ताव क्यों स्वीकार किया?
5) संभोग के बाद अहिल्या ने ऐसा क्यों कहा कि मैं आपके समागम से कृतार्थ हो गयी?

6) संभोग के बाद अहिल्या ने इन्द्र को तुरंत भाग जाने के लिए क्यों कहा ?

7) भदेत आनन्द कौसल्यायन विश्वामित्र के गुरुकुल में रहने वाले राम लक्ष्मण की युगलमूर्ति का किसी स्त्री को पाषाण मूर्ति तक को स्पर्श करने को दूसरी दृष्टि से देखते है। अगर स्पर्श करना ही था तो हाथ से क्या किया नहीं जा सकता था? वहाँ क्या 'पग धुरी' होना अपेक्षित थी।

"मुनि तिय तरी लगत पग धुरी, किरति रही भुवन भरी पूरी"

इन प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि अहिल्या और देवराज इन्द्र के बीच परस्थर सहमति से शारीरिक संबंध बने थे। इन्द्र ने अहिल्या को इसलिए पहचान लिया था, क्योंकि उसे पहले से ही उसके मुनिवेश में आने की सूचना थी। अहिल्या स्वयं इन्द्र से संभोग करने को इच्छुक थी। इसलिए उसने इन्द्र का प्रस्ताव स्वीकार किया और संभोग के बाद दोनों को ही पूर्ण संतुष्टि मिली।

दसवाँ सर्ग

मंथरा की कुटिलता

दसवें सर्ग मंथरा में कवि उद्‌भ्रांत ने अपनी मौलिक कल्पना करते हुए, मंथरा को कैकेयी की दासी न बताकर बचपन की खास सहेली बताया है। उसके पिता कैकेय-नरेश के विश्वस्त भृत्य थे। बचपन से ही वह कूबड़ी थी। कवि के शब्दों में :-

कैकय प्रदेश की
सुंदर राजकुमारी कैकेयी की
मैं बालसखी।

बाल्यकाल से ही
उसके साथ उठी-बैठी
खेलकूद किया।

मेरे पिता कैकय नरेश के थे
भृत्य अतिविश्वस्त।

अपनी तार्किक बुद्‌धि से उद्‌भ्रांत कैकेयी के द्‌वारा यह कहलवाना चाहते हैं कि मंथरा के पेट में बहुत अधिक रहस्य छिपे होने के कारण जब वह उनका उदघाटन करना चाहती होगी, तो अधिक बल लगाने के कारण वह कुब्जा हो गयी होगी। मंथरा कैकेयी की सारी महत्वकांक्षाओ, गोपनीय बातें तथा उसके मनोविज्ञान को अच्छी तरह से जानती थी कि एक युवा राजकुमारी का वयोवृद्‌ध राजा दशरथ के साथ बेमेल विवाह होने पर उसका भावनात्मक संबल टूटता देख उसने मन ही मन यह निर्णय कर लिया था कि किसी भी तरह समय आने पर अपनी सर्वप्रिय बाल-सखी को उसका अधिकार दिलाकर रहेगी। उद्‌भ्रांत जी लिखते हैं:-

इसलिए अयोध्या के वयोवृद्‌ध
महाराजा दशरथ जब
उसका पाणिग्रहण कर
ले चले अयोध्या में,

तभी मुझे लगा
उसका भीतर से
विदीर्ण हो चुका हृदय
मुझे साथ लिए बिना
शांत न हो सकेगा।

इस वजह से अयोध्या के राजमहल के रनिवास में चलने वाले सूक्ष्म घात-प्रतिघातों के चक्रों को समझने का प्रयास करती थी और समर प्रांगण में महाराज दशरथ से मिले दो वचन को क्रियान्वित करने की मंत्रणा हेतु संकल्पबद्ध थी। पहला-शासन की डोर भरत के हाथ में हो, दूसरा-राम को चौदह वर्ष का वनवास मिले। समय आने पर उसने अपने षड्यंत्र को सफल अंजाम दिया। भले ही,उसकी इस कुमंत्रणा ने जहाँ महाराज दशरथ के चमचमाते सूर्यवंशी मुकुट को चकनाचूर कर दिया,वहीं केकैयी को विधवा बना दिया। इस सर्ग में कवि कहते हैं:-

अलग बात है कि
इस इस भयंकर षड्यंत्र ने
महाराज दशरथ के
सपनों को ही नहीं
उनके दिव्य, चमचमाते
सूर्यवंशी मुकुट धारण किए
मस्तिष्क को भी
चकनाचूर किया!

कवि उद्भ्रांत ने मंथरा शब्द की उत्पति के पीछे मंत्रणा, मंथर गति तथा जैसे शब्दों से जोड़ने का प्रयास किया है और कूबड़ को व्यंग्य रूप में अधोगामी विचारों का प्रतीक बताया है।

मंथरा नहीं
मंत्रणा था नाम मेरा, क्योंकि-
मेरी बुद्धि तीक्ष्ण
कठिन अवसरों पर
ढूंढ लेती थी समाधान युक्तिपूर्ण।

मेरी मंत्रणा के बिना
कोई कार्य कैकयी
न करती कभी।

भदंत आनन्द कौसल्यायन ने अपने आलेख "राम चरित मानस में नारी" में मंथरा को कैकेयी के अपयश को बाँटने के लिए तुलसीदास द्वारा उसका चरित्र खड़ा किया हैं। जिसके अनुसार कैकेयी के अपयश का कुछ हिस्सा सरस्वती ले लेती है, तो कुछ हिस्सा मंथरा ले लेता है। लिखा है :-

नाम मंथरा मदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पिटारी ताहि करी गई गिरा मति फेरि॥12॥
--अयोध्या कांड, राम चरित मानस
कैकेयी की एक मंद बुद्धि वाली दासी थी, जिसका नाम मंथरा था। उसे अपयश की पिटारी बना कर सरस्वती उसकी बुद्धि फेर गई।

देवताओं में ब्रह्मा शुक्ल पक्ष का प्रतीक है और कामदेव कृष्ण पक्ष का। पता नहीं देवियों में सरस्वती के मुक़ाबले किसी कृष्णपक्षी देवी की कल्पना क्यों नहीं की गई? यह काम सरस्वती से न लिया जाता तो अच्छा था। अब मंथरा की करतूत देखिये :-

"करइ विचार कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजू कवनि बिधि राति॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमी गवँ तकई लेउँ कोहि भाँति॥
भरत मातु पहि गई बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी॥
उतरु देइ न लेइ उसांसू। नारि चरित करि ढारइ आँसू॥"
(- अयोध्या कांड, राम चरित मानस)

खोटी बुद्धि वाली और नीच जाति वाली मंथरा विचार करने लगी कि रात ही रात में यह काम कैसे बिगाड़ा जाए? जिस तरह कुटिल भीलनी शहद के छत्ते को लगा देख कर अपना मौका ताकती है कि इस को किस तरह ले लूँ। वह बिलखती हुई भरत की माता कैकेयी के पास गई। उसको देखकर कैकेयी ने कहा कि आज तू उदास क्यों है? मंथरा कुछ जवाब नहीं देती और लंबी साँस खींचती है और स्त्री चरित्र करके आँखों से आँसू टपकाती है।

इन चौपाइयों में खोटी जाति वाली मंथरा की उपमा देते समय तुलसी दास ने इस बात का विचार नहीं किया है कि सारी की सारी किरात जाति की स्त्रियों को कुटिल कह देना कहाँ तक ठीक है? इसका मात्र समाधान यही हो सकता है कि उन्होंने तो मात्र मधुलोलुप किराती को ही कुटिल कहा है। तब इसी प्रकार मंथरा के आँसू टपकाने को भी तो सर्वसाधारण नारियों का चरित्र कह कर कुछ कम आपत्तिजनक स्थिति नहीं रहने दी है। स्वयं कैकेयी भी, जिस की बुद्धि अभी स्थिर है, कह रही है :-

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय विसेषि पुनि चेरी कहि भरतमातु मुसुकानि॥ - मानस, अयोध्या कांड (१४)

काने, लंगड़े, कुबड़े-ये बड़े कुटिल और कुचाली होते हैं और उनमें भी स्त्री और विशेष रूप से दासी-ऐसे कहकर भरत की माता मुसकाई।

विनोद में कही हुई बात में भी प्रायः सर्वथा स्वार्थ नहीं होता। यहाँ कैकेयी के मुख से भी प्रकृत स्त्रियों के संबंध में तुलसी दास की जो प्रतिक्रियावादी मान्यताएँ हैं, उन्होंने ही अभिव्यक्ति पाई प्रतीत होती है।

किन्तु कुछ ही देर में कैकेयी मंथरा के वशीभूत हो जाती है। तुलसी दास कहते है :-

गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि।
सुरमाया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि ॥१६॥

स्त्रियों की बुद्धि होठों में होती है अर्थात वह बातों में आकर चल-विचल हो जाया करती है। तदनुसार रानी कैकेयी ने गुप्त कपट भरे, प्यारे वचनों को सुनकर, देवताओं की माया के वश में हो कर भी मंथरा को अपना हितैषी जानकर उसका विश्वास नहीं किया।

यहाँ मंथरा भी दोषी है, देवताओं की माया भी दोषी है। किन्तु इस सबको दोष की क्या आवश्यकता? जब तुलसीदास के अनुसार स्त्रियों की बुद्धि होठों में ही होती है अर्थात वे बातों में आकर चल-विचल हो जाया करती हैं। स्त्रियों के बारे में कितनी दरिद्र सम्मति है? बातों में आकर तो समय-समय पर सभी चल-विचल हो जाया करते हैं -

जद्यपि नीति निपुण नर नाहू, नारी चरित जलनिधि अवगाहु। - मानस, अयोध्याकांड (२७)

यद्यपि नरनाथ दशरथ राजनीति में दक्ष थे, परंतु स्त्री चरित्र रूपी समुद्र अथाह है।

उस युग में जब राज्य किसी भी राजा की व्यक्तिगत संपत्ति समझा जाता था और उसे राजा जिसे चाहे दे सकता था। पत्नी आसक्त वृद्ध दशरथ से कोई भी विवेकपूर्ण निर्णय करने के लिए किसी अथाह समुद्र की आवश्यकता नहीं थी।

रामचरित मानस (२/१४) में तुलसी दास जी ने लिखा कि विकृत शरीर में विकृत मन का निवास होता है अर्थात :-

"काने, खोरे, कूबरे, कुटिल कुचली जानी।
तिय विसेषि पुनि चेरी कहि, भरतमातु मुसुकनी"॥- मानस, अयोध्याकांड (१४)

स्वस्थ शरीर का मन भी स्वस्थ होता है। स्वस्थ मन से अभिप्राय विकार रहित मन से होता है। शारीरिक स्वस्थता के लिए उसकी स्वच्छता अनिवार्य है। शरीरस्थ मल निवारण से शरीर स्वच्छ एंव स्वस्थ रहता है। शास्त्रों में द्‌वादश मलों का वर्णन मिलता है।

मगर वाल्मीकीय रामायण (अयोध्या काण्ड) के अनुसार मंथरा एक श्रेष्ठ सुंदर और आकर्षक स्त्री थी। उसकी जांघें विस्तृत, दोनों स्तन सुंदर और स्थल उसका मुख निर्मल चंद्रमा के समान अदभुत शोभायमान और करधनी की लड़ियों से विभूषित उसकी कटि का अग्रभाग बहुत ही स्वच्छ था। उसकी पिंडलियाँ परस्पर सटी हुई थी और दोनों पैर बड़े-बड़े थे। वह जब रेशमी साड़ी पहनकर चलती थी, तो उसकी बड़ी शोभा होती थी। इस शारीरिक सुंदरता के साथ - साथ वह बुद्‌धि में भी श्रेष्ठ थी। बुद्‌धि के द्‌वारा किसी कार्य का निश्चय करने में उसका कोई सानी नहीं था। मति, स्मृति, बुद्‌धि,क्षत्रविद्‌या,राजनीति और नाना प्रकार की मायाएँ (विद्‌याएँ) उसमें निवास करती थी।

मंथरा द्‌वारा कैकेयी के भड़काये जाने का वाल्मीकि रामायण के दाक्षिणात्य पाठ में कोई विशेष कारण नहीं दिया गया है। अन्य वृत्तान्तों में इसके लिए भिन्न-भिन्न कारणों की कल्पना की गई है।

1. महाभारत के रामोपाख्यान में जब राम की सहायता करने के लिए देवताओं द्‌वारा रीछों तथा वानरों की स्त्रियों से पुत्र उत्पन्न करने का उल्लेख किया गया है, गंधर्व दुंदुभि के मंथरा के रूप में प्रकट होने की चर्चा मिलती है। पद्‌मपुराण के पाताल खण्ड के गौड़ीय पाठ, आनन्द रामायण, कृतिवास रामायण, वसुदेवकृत रामकथा आदि में भी इसका निर्देश किया गया है। तोरवे रामायण में मंथरा को विष्णुमाया का अवतार माना गाया है। बलराम दास के अनुसार मंथरा वास्तव में गोमाता सुरभि है जिसे देवताओं ने पृथ्वी पर भेजा था।

2. बाद के अनेक वृतन्तों में मंथरा को मोहित करने के लिए सरस्वती के भेजे जाने का वर्णन मिलता है। भावार्थ रामायण के अनुसार ब्रहमा ने मंथरा के मन में ईर्ष्या उत्पन्न करने के उद्‌देश्य से विकल्प को भेजा था।

3. वाल्मीकि रामायण में शत्रुघ्न राम के निर्वासन के कारण मंथरा को पीटते हैं। बाद में राम द्‌वारा मंथरा का उत्पीड़न वनवास का कारण बताया गया है।

   पादौ गृहित्वा रामेण कर्षिता ताड़पराधतः।
   तेन वैरेन सा राम वनवास च काक्षति॥ (अग्निपुराण, अध्याय - 5)

4. वाल्मीकि रामायण के उदीच्य पाठ पूर्व की कुछ हस्तलिपियों में मंथरा के पूर्ववैर का उल्लेख इस प्रकार है :-

रामे सा निरिचता पापा पूर्व बैरमनुस्मरन।
कस्मिरिचदपराधे हि क्षिणता रामेण सा पूरा।

चरणेण क्षिति प्रणता तस्मादैरमनुत्तमम॥

(द॰ बड़ौदा संस्करण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग ७, ९)

"रामायणमंजरी" में भी राम के प्रति मंथरा के बैर का कारण उलेखित है :-

शैशवे किल रामने पूरा प्रणयकोपतः।
चरणोनाहता तत्र चिरकोप्भुवाह सा॥ (१.६६७)

बलराम दास के अनुसार मंथरा ने विवाह के अवसर पर राम का उपहास किया था और राम ने उसे पीटा था। कंबन रामायण में इसका उल्लेख मिलता है कि लड़कपन में राम ने मिट्टी के ढेलों को अपने धनुष पर चढ़ाकर मंथरा के कुबड़ पर मारा था।

तेलुगू रंगनाथ रामायण के अनुसार राम ने बचपन में मंथरा की एक टांग को तोड़ दिया था, सेरी राम और रामकियेन के अनुसार राम ने उसके कुब्ज में बाण चलाया था। तेलुगू भास्कर रामायण में माना गया है कि राम ने मंथरा को लात मारी थी।

5. रामप्योपाख्यान के अनुसार मंथरा ने पूर्व-जन्म के बैर के कारण राम को वनवास दिलाया था। वह दैत्य विरोचन की पुत्री थी और दैत्य-देवता युद्ध में उसने पाशों से देवताओं के विमान और वाहन बाँधे थे। इस पर विष्णु की आज्ञा से इन्द्र ने उसे वज्र द्वारा मारा था।

   मंथरा के अगले जन्म का भी उल्लेख किया गया हैं। आनन्द रामायण के अनुसार वह कृष्णावतार के समय पूतना के रूप में प्रकट होगी और कृष्ण द्वारा मार डाली जायेगी, लेकिन इस रचना के अन्य स्थल पर कहा गया है कि वह कंस के यहाँ कुब्जा के रूप में अवतार लेगी।

श्री रंगनाथ रामायण के तेलुगू संस्करण में राम और मंथरा की कहानी का उल्लेख बालकाण्ड में मिलता हैं। राम जब गुल्ली-डंडा खेल रहे थे तो अचानक मंथरा ने उसकी गुल्ली को दूर फेंक दिया, तो राम ने गुस्से में आकर डंडा मंथरा की ओर फेंका जिससे उसका घुटना टूट गया। कैकेयी ने यह बात महाराज दशरथ को बतायी तो उन्होंने राम और अन्य पुत्रों को गुरुकुल में पढ़ने के लिए भेजने का निर्णय लिया। तभी से मंथरा के मन में राम के प्रति प्रतिशोध लेने की भावना पैदा हो गयी और वह हमेशा मौके की तलाश में रहती थी।

राम के वनवास के बाद रामायण में मंथरा केवल एक बार दिखाई देती हैं। कैकेयी से महंगे-महंगे कपड़े और जवाहरात इनाम के रूप में प्राप्त कर महलों के बगीचे में घूमते हुये

देखकर शत्रुघ्न क्रोधवश उसपर जानलेवा हमला कर देता हैं। उसको बचाने के लिए कैकेयी भरत से प्रार्थना करती है।

समस्याओं की जड़ इच्छाएँ होती हैं और इच्छाएँ डर से पैदा होती हैं। मंथरा को अपना डर है और कैकेयी को अपना डर, दोनों राम के राज्य अभिषेक के परिणामों से भयभीत है और असन्तुष्ट भी।

साहित्यकारों के अनुसार, रामकथा में चरित्र विधान के तहत मुख्यपात्र के व्यक्तित्व को उभरने के लिए मंथरा का गठन किया गया। वास्तव में मंथरा में कैकेयी के अन्तस के भय को प्रकट किया हैं। कई श्रुतियों के अनुसार मंथरा और कैकेयी द्वारा राम को जंगल में भेजकर राक्षसों का अंत करना ही उद्देश्य था। आधुनिक प्रबंधन गुरुओं के अनुसार किसी भी संस्था में शक्ति के अलग-अलग स्तर होते हैं। उन स्तरों को पाने के लिए कुछ लोग अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करते हैं, तो कुछ लोग अपने संबंधों का प्रयोग करते हैं। प्रकृति में शक्तिशाली व्यक्ति ही नेतृत्व के योग्य होता हैं। रामकथा के अनुसार न केवल राम वरिष्ठ थे वरन बुद्धिमान और ताकतवर भी थे। अतः राज सिहांसान के सही हकदार थे। हिन्दू दर्शन के अनुसार प्रत्येक घटनाएँ प्रारब्ध का फल होती हैं। राम का वनवास जाना भी उनके भाग्य का विधान है। मंथरा और कैकेयी को दोष देना अनुचित है, क्योंकि वे तो कर्मसाधक मात्र हैं।

ग्यारहवाँ सर्ग

श्रुतिकीर्ति को नहीं मिली कीर्ति

श्रुतिकीर्ति को ग्याहरवें सर्ग में महाराज कुशीध्वज की सबसे छोटी पुत्री बताया है। कुशीध्वज के अग्रज महाराज जनक ने उसके विलक्षण गुणों को देखते हूए दूर-दूर तक उसकी कीर्ति व्याप्त होगी, शायद यही सोचकर उसका नाम श्रुतिकीर्ति रखा। कवि की भाषा में:-

मैं श्रुतिकीर्ति
सबसे छोटी पुत्री
महाराज कुशीध्वज की
इसलिए लाडली भी सर्वाधिक।

महाराज पिता ने
अपने अग्रज
महाराज जनक की सलाह से
नामकरण मेरा किया।

उसे शास्त्र श्रुतियाँ जल्दी से कंठस्थ हो जाती थी,वेदाध्ययन में वह सबसे आगे रहती थी। माण्डवी और उर्मिला उसकी दो बहनें थी। वह चंचल, चपल और शरारती भी थी। बड़ी बहन सीता के स्वयंवर में अपने पिता के साथ जनकपुर में पहुँची थी और शिव धनुष भंजन न होता देख वह काफी दुखी हो रही थी। उद्भ्रांत जी इस संदर्भ में कहना चाहते हैं:-

ताऊजी ने रखी थी
जो शर्त सीता-स्वयंवर की
उसे सुन
हम तीनों बहने भी मायूस थीं।

और वह मायूसी बढ़ी
शिव-धनु के भंजन में
निष्फल देख-
बड़े बड़े योद्धा को

मगर जब रामचन्द्र जी ने उस धनुष को तोड़ दिया तो वे सभी आनंद अतिरेक से उमड़ पड़ी। इसी घटना के बाद उसी राज घराने में तीनों राजकुमारियों का विवाह हुआ। महाराज दशरथ की सबसे छोटी पुत्रवधू बनकर सूर्यवंशी राजघराने को सामाजिक दृष्टि से उन्नत किया। शत्रुघ्न की पत्नी होने के कारण सभी उन्हें खूब प्यार करते थे। कौशल्या और कैकेई भी। शत्रुघ्न की प्रकृति लक्ष्मण की तरह महाक्रोधी थी। वह कैकेयी को जीवनभर क्षमा नहीं कर सका, यहाँ तक कि उनका व्यवहार असहज हो गया,जो कि रघुवंशी स्त्रियों के भाग्य की बिडम्बना थी।

रघुवंशी स्त्रियों की नियति में
लिखी हुई थी विडंबना बड़ी,
रानी, महारानी हों
या हों पुत्रवधुएं वे।

मैं उससे
वंचित कैसे होती।

'कल्याण' के नारी अंक के अनुसार मांडवी और श्रुति कीर्ति, राजा जनक के भाई कुशीध्वज की कन्याएँ थी और उर्मिला साक्षात राजा जनक की पुत्री थी। जनक के साले का नाम क्षीरध्वज था। श्रुति कीर्ति को राम के वनवास जाने की अप्रत्याशित घटना से बहुत पीड़ा हुई थी। मगर उसमें इतनी शालीनता थी, कि वह उस बात का विरोध न कर सकी। वे देवतुल्य जेठ का वनवास, अपनी लक्ष्मी-सी बहन का तपस्विनी बनकर वन में जाना आदि ऐसी बातें थीं जिनको याद करके उनका कोमल हृदय क्षणभर के लिए भी चैन नहीं पाता था। मगर उस आंतरिक वेदना को अंतर्यामी के सिवाय और कोई देख न सके। सीता वन में रहकर पति के समीप थी मगर मांडवी, उर्मिला और श्रुति कीर्ति महल के भीतर रहकर भी पति से दूर, अत्यन्त दूर थी। इनमें भी अंतर इतना ही था कि मांडवी और श्रुति कीर्ति को नन्दी ग्राम से पति के समाचार मिलते रहते थे, मगर उर्मिला के भाग्य में यह भी नहीं था। श्रुति कीर्ति के दो पुत्र थे एक का नाम सुबाहू था और दूसरे का नाम शत्रुघाती। सुबाहू मथुरा के राजा हुए और शत्रुघाती वैदिशा नगर के। जिस तरह भरत तीनों भाई श्री रामचन्द्र जी के साथ सरयू के गो प्रतार घाट में डुबकी लगाकर परम धाम को पधार गए, उसी तरह मांडवी, उर्मिला, श्रुति कीर्ति भी पतियों के साथ सरयू में गोता लगाकर उन्हीं लोगों को प्राप्त हुई।

कँवल भारती के अनुसार एक साधारण स्त्री भी अपने अपमान के खिलाफ विद्रोह की किसी भी सीमा तक जा सकती है, बशर्त उसमें अपने अपमान का बोध हो। मंथरा को अपने

अपमान का बोध था, परंतु यह बोध श्रुति कीर्ति में देखने को नहीं मिला। शायद यही वजह है श्रुति कीर्ति को गुमनामी का जीवन जीना पड़ा। उनके अनुसार 'त्रेता' में स्त्री विमर्श के नाम पर उद्भ्रांत को कुछ भी नहीं मिला। केवल विरह वेदना को उभारने के सिवाय, मगर यह बात सही नहीं है।

शत्रुघ्न की उपेक्षा के कारण बिचारी निर्दोष निरीह श्रुति कीर्ति रामकथा में युगों तक अश्रुतकीर्ति बनकर रह गई। लेकिन ध्यान रखने योग्य बात यह है कि वह उपेक्षित होकर भी मध्यकालीन नायिकाओं के समान विरह में या अपने दुर्भाग्य पर आठ-आठ आँसू बहाना तो दूर एक आँसू भी नहीं टपकाती है। डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित के अनुसार उद्भ्रांत नए जमाने के कवि है। उनके समय का स्त्री-विमर्श नारी को अबला नही मानता। वह सबला है, आत्मनिर्भर है तो रोना और दीन होना कैसा? उद्भ्रांत रामकथा और त्रेता युग को नए जमाने के प्रकाश में देख रहे हैं। स्वाभाविक है कि उनकी नारियाँ सब सहन करेगी या विद्रोहिनी होगी, खुलकर रोएगी नहीं, प्रिय की मृत्यु पर रोना बिलकुल अलग बात है।

देवदत्त पटनायक की पुस्तक 'सीता रामायण' के अनुसार वैदिक जमाने में शादी का अर्थ केवल आदमी और औरत का मिलन नहीं होता था। बल्कि दो नई संस्कृतियों को जोड़ने का अवसर प्रदान करना था, जिस कारण नए-नए रीति-रिवाज, आस्था, विश्वास जन्म ले सके। भारत में शादी के रीति-रिवाज कृषि-कर्म के प्रतीक थे जो आधुनिक मनुष्य को असंगत लग सकते हैं कि पुरुष किसान की तरह बीज बोता है और स्त्री उस बीज को पोषण करती है। तमिलनाडू, आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक में लाल चन्दन की लकड़ी के आदमी पुरुषों के खिलौने लड़कियों को उनके प्रथम रजोधर्म अथवा उनके शादी के समय दिये जाते हैं। राजा-रानी के यह खिलौने नवरात्रि के त्योहारों में शुभ-लाभ के प्रतीक हैं।

जनक के चरित्र का निर्माण करने में वाल्मीकि का सीधा-सादा सवाल तत्कालीन राजाओं, किसानों और ग्वालों की बुद्धिहीन भौतिकवादिता पर उठाना है। जनक की पुत्रियों की खुशियाँ, वस्तुओं से नहीं विचारों से प्रदान करने की आशा की जाती है।

सीता का घर (मिथला), राम का घर (अयोध्या) के दक्षिण में है, और अयोध्या कृष्ण की मथुरा के दक्षिण में है। ये तीनों चित्र गंगा के मैदानों के हैं, सांस्कृतिक तौर पर अलग-अलग। जहाँ मिथला ग्रामीण कलाशिल्प से संबंधित है, वहीं अवध या अयोध्या शहरीकरण का केन्द्रबिन्दु है। जबकि ब्रज या बृज पार्थिव भक्ति का केन्द्र है। तीनों क्षेत्रों की अलग-अलग बोलियाँ है। जैसे मैथिली, अवधी और बृजभाषा। अनेक स्कॉलर राम को अवतारी राम से अलग समझते हैं। बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड को बाद में लिखा हुआ मानते हैं। यदपि रामायण का जादू आदमी को अपनी दिव्यता की पहचान करने का संघर्ष है। क्या हम अपने अहम से ऊपर उठकर आत्मा को

जान सकते है? क्या अहम स्वार्थ है या आत्मा सत्य है? लेकिन राम या दिव्य राम में कौन ज्यादा प्रिय है? इस तरह हर किसी के जीवन में इस अनिश्चित जगत में निश्चित जीवन जीने का एक प्रश्न उठता है।

बारहवाँ सर्ग

उर्मिला का तप

तेलुगू महिलाएँ अपने गीतों में रामायण की वीर-गाथाओं पर कम बोलती हैं, बल्कि मानवीयों प्रगाढ़ संबंधों और भावनाओं को विशेष महत्व देती हैं। उनके गानों में उर्मिला के भय का वर्णन है, जब कोई आदमी उसे उठाता है, तो वह उसे पहचान नहीं पाती है, वनवास से लौटने के बाद लक्ष्मण द्वारा उर्मिला के बालों में कंघी करने का भी वर्णन मिलता है।

त्रेता के बारहवें सर्ग 'उर्मिला' में कवि उद्भ्रांत ने उर्मिला की भावना, दर्द और पीड़ा को केन्द्रबिन्दु बनाकर स्त्री-विमर्श के आदर्श पहलू की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया है। उर्मिला लक्ष्मण की पत्नी बनकर कितनी खुश थी और अपने आप को सौभाग्यशाली मानती थी। जब राम को वनवास मिला तो उसकी बहन सीता ने उनके साथ जाने की जिद की और जेठ राम ने उन्हें स्वीकृति दे दी। लक्ष्मण जब वन में जाने के लिए उर्मिला के कक्ष में गए तो उर्मिला ने अपनी आँखों में निर्बल भाव नहीं आने दिया। कवि ने उर्मिला की भावना का जिक्र करते हुए कहा कि वह भी लक्ष्मण के साथ वनवास जाना चाहती थी। मगर लक्ष्मण ने यह कहते हुए उसके आग्रह को स्वीकार नहीं किया कि वह राम और सीता की अच्छी तरह से सेवा नहीं कर पाएगा, वनवास के दौरान। मगर इस बात का आश्वासन दिया कि चौदह वर्षों तक कोई भी नारी उसके सपनों में आने का साहस नहीं कर पाएगी, उसके सिवाय क्योंकि उसे सपने देखने का भी अवकाश नहीं मिलेगा। कवि उद्भ्रांत लिखते हैं:-

इन चौदह वर्षों में
तुम्हारे सिवा कोई अन्य नारी
नहीं कर सकेगी साहस
आने का मेरे सपनों तक में,
क्योंकि सपने देखने का
नहीं रहेगा मुझे
कभी भी अवकाश।

रात्रि का कज्जल आँज कर
अपनी कल्पना की आंखों में
तुम्हें देखता ही रहूंगा मैं सतत
उस नातिदीर्घ काल के, कठिन

चुनौती देते दर्पण में।

वह अपने भैया और भाभी के प्रति निष्ठापूर्वक कर्तव्य निभा पाएगा। इस तरह उर्मिला वागयुद्ध में लक्ष्मण से हार गई और उर्मिला को अयोध्या में छोड़कर लक्ष्मण राम के साथ वनवास में चले गए। उद्भ्रांत जी के अनुसार,

तुम तो चले गए
एक अनुज का आदर्श करने स्थापित
जगत में;
लेकिन इन चौदह वर्षों के लिए
अभिशापित कर गए
अपनी उर्मिला को।

इन चौदह सालों में एक-एक घड़ी किस तरह उर्मिला को अनन्त काल की तरह लगी होगी, उस अनिर्वचनीय व्यथा का अनुमान सीता ही कर सकती है, जब अपने अपहरण के बाद लंका में अशोक वाटिका के नीचे बैठकर अपने पति राम को स्मरण करने के बाद एक-एक पल बिताते समय उसकी मानसिक अवस्था उर्मिला की व्यथा को याद दिला सकती है। उर्मिला उस भयानक काली रात्रि को कभी नहीं भूल सकती है, जब जेठ भरत के अमोध बाण से पर्वत को ले जाते समय हनुमान मूर्च्छित हो कर जमीन पर गिर पड़े थे और उसे पता चला था कि रावण पुत्र मेघनाद द्वारा छोड़ी गई अमोघ शक्ति ने उसके पति लक्ष्मण को मूर्च्छित कर दिया था।

कालिदास, सच-सच बतलाना,
इन्दुमति के मृत्यु शोक में
अज रोए थे या तुम रोए थे?
कालिदास सच-सच बतलाना।

नागार्जुन की उपरोक्त कविता 'कालिदास' के कालीदास की तरह उद्भ्रांत ने भी उर्मिला के दुःख को अपने भीतर आत्मसात किया अर्थात्

और मुझे लगा जैसे
बैठे हो तुम उसमें
धनुष पर चढ़ाए बाण
अंधेरे के राक्षस का नाश कर
विजयी मुद्रा लिए हुए:

।

कवि के अनुसार त्रेता के स्त्री पात्रों में सबसे अधिक शोक का सामना उर्मिला को करना पड़ा। उसके जीवन सर्वस्व उसके प्राणाधार पति लक्ष्मण वन में थे। वह उनके दर्शन से, उनके कुशल समाचार से भी वंचित हो गई थी। यदि सीता की भाँति वह भी वन में जाकर स्वामी की सेवा कर सकती तो उसे कुछ संतोष रहता, किन्तु वह ऐसा नहीं कर सकती थी। क्योंकि उसके स्वामी किसी के कहने से नहीं, वरन् स्वेच्छा से वन में गए थे, माता-पिता तुल्य भाई और भाभी की सेवा का शुभ उददेश्य लेकर। अगर वह साथ चली जाती तो स्वामी के कर्तव्य पालन में बाधा बनती। उसके कारण अगर उसके स्वामी के धर्म में कोई त्रुटि आ जाए तो वह कैसे बर्दाश्त कर सकती थी? इस वजह से उर्मिला ने चौदह वर्षो तक विरह की भयंकर आग में झुलसना स्वीकार किया, किन्तु पति के कर्तव्य पथ पर बाधा बनकर नहीं खड़ी हुई। कवि के शब्दों में,

क्या तुम यह करोगे विश्वास कि
इन चौदह वर्षों में
मैं भी कभी सोई नहीं!

दिन में, मैं_अपनी तीनों सासु-मांओं की
सेवा-सुश्रूषा मैं रहती,
भैया शत्रुघ्न,बहन श्रुतकीर्ति-
जो थी देवरानी-शत्रुघ्नप्रिया
जेठजी के साथ मांडवी बहन_जेठानी जी-
सभी का ध्यान रखना था मुझे।

उर्मिला के इस विषाद को मैथिलीशरण गुप्त ने अपने महाकाव्य 'साकेत' (साकेत अयोध्या का पुराना नाम था, मगर एक अलग शहर होने का भी पता चलता है) में प्रकट किया है, जो तुलसीदास के रामचरित मानस में नहीं दिखाया गया है। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने एक स्थान पर लिखा है "रामायण में किसी देवता ने अपने को गर्व करके मनुष्य नहीं बनाया है, एक मनुष्य ही अपने गुणों के कारण बढ़कर देवता बन गया हैं। '' 'साकेत' में सीता ही उर्मिला को आत्मविश्वास की शिक्षा देती हैं।

धनुष के टूटने से पहले ही सीता ने राम को मन से वरण कर लिया है, इसी पर उर्मिला को जीवन में पहली चिंता हुई। वह घबराकर कहती है - प्रभु चाप जो न चढ़ा सकें - परन्तु सीता निश्चिन्त हैं। वे उससे कहती हैं -

"चढ़ता उनसे न चाप जो,
वह होते न समर्थ आप जो,
उठता यह मोह भी भला,
उनके ऊपर तो अचंचला?
दृढ़ प्रत्यय के बिना कहीं,
यह आत्मार्पण दिखता नहीं। "

यही है आत्मविश्वास, जो भयानक कहा जा सकता है। परन्तु उर्मिला ने उसकी शिक्षा पाई है और वह भी यह कहने को समर्थ हुई है कि -

"यदि लोक धरे न मैं रही,
मुझको लोक धरे यही सही। "

इस दृढ़ प्रत्यय की समाप्ति यहीं नहीं हो जाती। अयोध्या में सुना जाता है कि लक्ष्मण को शक्ति लगी है और भरत की ओर से उर्मिला को शत्रुघ्न सांत्वना देते है -

"भाभी, भाभी, सुनो, चार दिन तुम सब सहना,
मैं लक्ष्मण-पथ-साथी आर्य का है यह कहना। "

इस पर उर्मिला उत्तर देती है -

"देवर, तुम निश्चिन्त रहो, मै कब रोती हूँ,
किन्तु जानती नहीं, जागती या सोती हूँ।
जो हो, आँसू छोड़ आज प्रत्यय पीती हूँ;
जीते हैं वे वहाँ, यहाँ जब मैं जाती हूँ। "

सीता के उस विश्वास के समान ही यह दृढ़ है, परंतु मेरा हृदय भीत न होकर स्फीत होता है। इसीलिए सीता राम के समीप मुझे जो भय लगता है, वह उर्मिला और लक्ष्मण के समीप नहीं।

उर्मिला के विषाद में उसका यह विश्वास डूब नहीं गया। यदि अनुकरण करने वालों से ही अनुकरणीय की सार्थकता होती है। तो इसी आत्मविश्वास के अनुकरण के लिये 'साकेत' में उर्मिला का एक विशेष स्थान होना चाहिए। परंतु यदि हम उसे लेंगे, तो हमे उसका विषाद भी लेना पड़ेगा।

डॉ॰ आनंदप्रकाश दीक्षित ने अपनी पुस्तक "त्रेता एक अन्तर्यात्रा" के अन्तर्गत इस सर्ग की कमी की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा है कि इस अंतिम बिन्दु की ओर आकर पतिप्राणा विरहिणी उर्मिला की कथा भी चूक गई। पुनर्मिलन की घड़ियों का वर्णन करने की सुधि ही कवि को नहीं रही। लंका से अयोध्या लौटने के अवसर की स्थितियों का वह वर्णन ही नहीं करता। शायद इसलिए कि उस अवसर का मुख्य संबंध भरत-मिलाप और प्रजा से है और प्रस्तुत काव्य में पुरुष स्वतन्त्र पात्र नहीं है।

बुद्धारेड्डी के 'रंगनाथ रामायण' के अनुसार उर्मिला चौदह साल तक लगातार सोती रही और लक्ष्मण चौदह साल तक जागते रहे। कहानी के अनुसार निद्रा देवी ने लक्ष्मण को सोने के लिए निवेदन किया तो उन्होंने कहा कि अगर मैं सोऊँगा तो भैया राम और भाभी सीता की रक्षा कौन करेगा? इसलिए उन्होंने निद्रा देवी से प्रार्थना की कि वह अयोध्या चली जाए और उसके हिस्से की नींद बनकर उर्मिला को आ जाए।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने वाल्मीकि की उर्मिला के योगदान की उपेक्षा करने के लिए आलोचना की है और मैथिलीशरण गुप्त को अपनी रामायण 'साकेत' में उचित स्थान देने के लिए प्रेरित किया था। कई कवियों को अपने पति द्वारा बड़े भाई की सेवा के लिए अपनी पत्नी को त्याग देना आश्चर्य चकित कर देता है। उनके अनुसार भारतीय नारी की अवस्था अपने पति के परिवार की सेवा के सिवाय कुछ भी नहीं था। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप परिवार के समक्ष किसी व्यक्ति विशेष की अवस्था गौण है। वैयक्तिकता एक संन्यास है, भले ही गृहस्थ क्यों न हो, गृहस्थी एक बंधन है, उन लोगों के लिए जो मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं। रामायण में इस बन्धन को एक दूसरे की संवेदना के रूप में उभारकर प्रस्तुत किया है। दूसरे शब्दों में संन्यासी वह है जो दूसरे की भूख से अलग-अलग है। सही अर्थों में उर्मिला अपने त्याग से वंश की कालिमा को मिटा देती है। अपने अतुलित कुल में जो कलंक प्रकट हुआ था, उसे उस कुल बाला ने चक्षु-सलिल से धो डाला। राम वनगमन दशरथ के कुल में एक कलकिंत प्रसंग है। उर्मिला का पति लक्ष्मण, राम के साथ वन जाता है। यह एक उदात्त भाव है, परंतु इस उदात्त भाव के पीछे उर्मिला का त्याग है। उर्मिला को पति का वियोग सहना पड़ता है। वह अपने आत्म-ज्ञान को विस्तृत कर देती है। वह प्रिय के अनुराग को अपने जीवन को जीने का स्रोत समझती है। उसमें समर्पण और निष्ठा है। वह आरती की तरह जलकर भी सुगंध बिखेरती है। लक्ष्मण जब उर्मिला से मिलने उसकी कुटिया में प्रवेश करते है, तब उन्हें मात्र उर्मिला की छाया रेखा ही दिखाई पड़ती है। उर्मिला का मानना है कि नारी जीवन के लिए बन्धन नहीं है। उसमें परिवार और कुल की मर्यादा की रक्षा के लिए आत्म-बलिदान करने की अपूर्व क्षमता होती है। उर्मिला और लक्ष्मण के आगे तो राम के माता-पिता की आज्ञा से राज्य छोड़कर वनवास स्वीकार करने का गौरव भी फीका है।

"लक्ष्मण, तुम हो तपस्पृही,
मैं वन में भी रही गृही।
वनवासी है निर्मोही,
हुए वस्तुतः तुम दो ही। "

उर्मिला के विरह ने उसमें करुणा का जो संचार किया वह मानव की अमूल्य निधि है। उसकी करुणा केवल मनुष्य के प्रति ही नहीं रहती वह समस्त जीवधारियों के प्रति करुणा है। मकड़ी जैसे तुच्छ जीव के प्रति भी उसकी कोमल भावना है।

"सखि, न हटा मकड़ी को, आई है वह सहानुभूतिवश।
जालगता में भी तो, हम दोनों की यहीं समान दशा॥"

करुणा को प्रत्यक्षतः संबोधित करके गुप्तजी ने उसका महत्व और भी बढ़ा दिया है।

वाल्मीकि को राम से कहीं अधिक 'साकेत' की उर्मिला मुदित मना है। यद्यपि यह प्रिय-वियोग में विदग्ध है, तथापि वह समग्र सृष्टि की मंगल कामना के लिए चिंतित है। अपने दुःख में भी दूसरों के सुख की चिंता उसकी मुनि वृत्ति का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। :-

"तरसूँ मुझ-सी मैं ही, सरसे-हरसे-हँसे प्रकृति प्यारी,
सबको सुख होगा, तो मेरी भी आएगी बारी। "

उर्मिला भीतर से कितनी विदग्ध क्यों न हो, पर बाहर से सामाजिक जीवन में वह हरी-हरी ही रहती है। मुदित ही रहती है।

लक्ष्मण द्वारा कैकेयी के साथ अशिष्टता का व्यवहार करने पर वह लक्ष्मण को नीति पथ पर ले आती है। यही कारण है कि वह वन में जरा भी अनैतिक नहीं होते। वहाँ वह आत्म-संयम, इंद्रिय-निग्रह, सेवा और त्याग की प्रतिमूर्ति बन जाते हैं। मेघनाद से युद्ध करते समय वह अपनी इसी नैतिकता की दुहाई देकर वार करते है :-

"यदि मैंने निज वधू उर्मिला को ही माना,
तो बस अब तू संभल बाण यह मेरा छूटा,
रावण का यह पाप पूर्ण हाटक घट फूटा। " (साकेत - द्वादश सर्ग)

उर्मिला के दो पुत्र हुए, अंगद और चन्द्रकेतु। उन दोनों को कारूपथ नामक देश का प्रभुत्व प्राप्त हुआ। अंगद ने अंगड़िया नमक राजधानी बनाई और चन्द्रकेतु ने चंद्रकांत नामक नगर बसाया।

यह भी कहा जाता है कि जब राम ने सीता को जंगल में छोड़ दिया था, तब उसका विरोध करने वाली उर्मिला ही थी। उसने अपने पति लक्ष्मण को राम की आज्ञा का अनुपालन कर सीता को जंगल में छोड़ने के लिए फटकार भी लगाई थी।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार भारतीय साहित्य की विस्मृत नायिकाओं में से उर्मिला को एक मानते हैं। तेलुगू साहित्य में उर्मिला की भूमिका सीता की तरह ही महत्वपूर्ण मानी जाती है। यहाँ तक कि उन्हें आदर्श पत्नी का दर्जा दिया जाता है और तेलुगू भाषा के रामायण में उर्मिला देवी की निद्रा पर विशेष तौर पर गायन होता है। कवि- कने की पुस्तक "सीता'स सिस्टर (sita's sister)" में लेजेंड्री (legendry) उर्मिला की मिथकीय कहानी की विस्तृत पुनरावृत्ति हुई है।

तेरहवा सर्ग

माण्डवी की वेदना

माण्डवी राजा जनक के भाई कुशध्वज की कन्या थी, जिनका विवाह भरत के साथ हुआ। वह श्रुति कीर्ति की बहन थी। माण्डवी के दो पुत्र हुए, तक्ष और पुश्कल, दोनों ही बड़े वीर थे। पुश्कल ने शत्रुघ्न के साथ सम्पूर्ण देशों में घूमकर रामचन्द्र के अश्वमेघ यज्ञ से संबंधित अश्व की रक्षा की थी। तक्ष और पुश्कल ने भरत के साथ कैकय देशों में जाकर वहाँ रहने वाले तीन करोड़ गंधर्वों को परास्त किया और सिन्धु नदी के दोनों तटों पर अपने विशाल साम्राज्य की स्थापना की। वहाँ भरत ने दो समृदधशाली नगर बसाए। गंधर्व देश (सिंध), सिंध में तक्ष के नामपर तक्षशिला नामक नगरी बसाई और गांधार देश (अफगानिस्तान) में पुश्कल के नाम से पुष्कलवती नाम की नगरी बसाई गई।

कवि उद्भ्रांत ने तेरहवें सर्ग 'माण्डवी' में उसकी मनोस्थिति का वर्णन किया है कि जब भरत, शत्रुघ्न के साथ ननिहाल से अयोध्या लौटे तो वहाँ हलचल मच गई थी। राम के वनवास के बारे में सुनकर वह भयभीत हो गई। जब भरत का निस्तेज विवर्ण मुख मण्डल देखा तो न केवल माण्डवी भयभीत हुई, वरन् कैकेयी भी भयाक्रांत हो गई थी, क्योंकि उसने जो भी किया वह उसके पुत्र की प्रकृति के विपरीत था। शादी के बाद की बातों को याद करते हुए वह कहती है कि भरत का राजमहल में कभी मन नहीं लगता था। राम के वन-गमन करते समय उन्हें अवश्य यह लगा होगा कि अगर उन्हें खुद को वन जाने का अवसर मिला होता, तो भगवत भक्ति की साधना के मार्ग में उनका एक पग और बढ़ा होता। कवि उद्भ्रांत जी यहाँ कहना चाहते हैं:-

" प्रिया मांडवी!
अयोध्या के इस राजमहल में
रमता नहीं मन मेरा। "

मुझे यह प्रतीत हुआ
भैया राम के
वन-गमन के बाद-

*उन्हें लगा होगा यह_*
वन में एकांत चिंतन करने का
यह अवसर

उन्हें मिला होता तो
भगवद्भक्ति की साधना के मार्ग में
उनका एक पग बढ़ा होता।

मगर माँ की राजलिप्सा के कारण भैया राम को व्यर्थ में चौदह वर्ष सपत्निक घूमना पड़ेगा, वह भी लक्ष्मण के साथ। महाराज दशरथ की खराब अवस्था को देखकर उन्होंने राम को वापस बुलाने का प्रयास किया। मगर वह प्रयास निष्फल हुआ, तो उनकी चरण पादुकाओं को प्रतीक का चिहन मानकर सिंहासन पर अवस्थापित कर राजकाज का प्रबंध देखते और सुबह-शाम राजमहल के बाहर निर्मित कुटिया में भगवत चिन्तन में लीन रहते हुए अपने आपको आदर्श पुरुष बना लिया था। कवि उद्भ्रांत ने भरत की व्यथा अपने शब्दों में अंकित की हैं :-

भैया राम को
वापस लौटाने का
उपक्रम जब उनका हुआ निष्फल तो
उनकी चरण-पादुकाओं को ही
मानकर प्रतीक-चिन्ह
आदर-सम्मान से
राजसिंहासन पर उन्हें
अवस्थित किया उन्होंने;

मानो स्वयं राम ही-
बैठे हो सिंहासन पर।

कभी भी उन्होंने यह नहीं सोचा कि वे विवाहित हैं, उनकी एक पत्नी है, जो अयोध्या वासियों की दृष्टि में महारानी है। वे खुद तो भूमि पर शयन करते थे, तो मैं किस तरह राजसी शैय्या पर सोने का सपना देख पाती। मैं भी भिक्षुणी की तरह जीवन बिताते हुए भूमि पर सोती थी, राजमहल के भव्य दिव्य रनिवास में। सादा,स्वाद रहित भोजन करते वे जीवन गुजार रही थी। सास कैकेई के इस कृत्य ने न केवल उसे विधवा बना दिया, वरनं लोक निंदा के परम दुःख ने उसके जीवन को दारुण बना दिया था। कवि कहना चाहता है :-

ऐसा कृत्य
जिसने उन्हें विधवा बनाते हुए
छीन लिया

स्त्री का स्वाभाविक तेज।

लोक कर उठा
निंदा प्रारंभ;

न तो राज सिंहासन मिला और न ही राम अयोध्या लौटे। दुःख का अवसाद उसके चेहरे पर स्पष्ट दिखाई देता था। राजमहल में राजकीय प्रथा के अनुसार नियमों का आचरण होता था। सभी के लिए आत्मानुशासन और आचार सहिंता का पूरी तरह पालन होता था। वस्त्र पहनने ओढ़ने अथवा बिछाने में मुझ पर कोई प्रतिबंध न था। मगर मैंने अपने आप पर प्रतिबंध लगा दिया था। उत्तर दायित्व की भावना का निर्वहन करते हुए मेरे भीतर कभी भी राजा की बेटी होने का भाव पैदा नहीं हुआ था। मांडवी की भावना को कवि उद्भ्रांत अपने शब्दों में इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं:-

पर,मुझ पर तो न था
कोई बंधन,
मैं थी अयोध्या की महारानी,
*और थी स्वतंत्र_*
राजकीय गरिमा के अनुसार
आचरण करने_
वस्त्र पहनने,
ओढ़ने अथवा बिछाने।

महाराज ने लगाया नहीं था
कोई प्रतिबंध मुझ पर।

प्रतिबंध किंतु मैंने
लगाया था स्वयं पर था!
आत्मा को अनुशासन में रखने का
था मुझको बचपन से अभ्यास1

कवि उद्भ्रांत ने माण्डवी नाम के रहस्य उदघाटन करते हुए लिखा है कि - माँ ने उसकी रगरग में स्त्री धर्म को जल में गूँथे आटे की तरह माण्ड दिया था, इसलिए मेरा नाम माण्डवी हुआ। इस तरह मैंने सूर्यवंश की उजली छवि पर अपना आत्म संयम न खोकर सारा कलंक लगने से बचा दिया, अन्यथा भरत भी बड़े अपयश के भागी होते। मैंने अपना सारा जीवन जल में रहती

मछली की तरह बिताया,वह भी थोड़े समय के लिए नहीं वरन् चौदह साल। कवि की मौलिकता निम्न हैं:-

जल में गूँथे आटे की तरह
मां ने मांड दिया था मुझको
पोर-पोर में
स्त्री-धर्म से।

स्त्री-धर्म में दीक्षित मांडवी से
हो सकता था_
अधर्म-कर्म नहीं;
पुरुष अपने धर्म की
परवाह करे या नहीं।

चौदहवाँ **सर्ग**

शान्ता: स्त्री विमर्श की करुणगाथा

शान्ता महाराजा दशरथ की एक मात्र पुत्री थी और राम कथा में वह सदैव उपेक्षित रही है। यहाँ तक कि रघुवंश में कालिदास तथा वाल्मीकि ने भी अपने काव्य में संस्पर्श तक नहीं किया। कौशल्या की इस पुत्री ने महाराजा दशरथ के चेहरे पर चिंता की रेखा खींच दी थी, और धीरे-धीरे जैसे दशरथ की उम्र बढ़ती जा रही थी और वह अपने राज्य के उत्तराधिकार के लिए चिंतित रहने लगी। वैसे-वैसे शान्ता जैसी पुत्री को जन्म देने वाली माँ कौशल्या का अनुराग तिरोहित होते हुए पहले उपेक्षा फिर ठंडेपन में बदलता गया। कवि उद्भ्रांत की इस सोच ने गौरवशाली रघुकुल में ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता'' जैसे शास्त्रीय वचनों पर प्रश्नवाचक चिह्न खड़ा कर दिया। माँ कौशल्या ने पुत्री को जन्म देकर क्या ऐसा कोई अपराध कर दिया कि महाराज का सारा ध्यान कौशल्या से हटकर कैकेयी की रूप पिपासा पर केन्द्रित हो गया। कौशल्या धीरे-धीरे अपनी भावनाओं पर काबू पाते हुए, आँसुओं को पत्थर बनाते हुए ईश्वर आराधना में लीन रहने लगी। कवि उद्भ्रांत शान्ता के माध्यम से यह कहलवाना चाहते हैं "तत्कालीन राजवंश की पुरुष परंपरा के निर्मम हाथों में कौशल्या का शोषण हुआ और शान्ता का बचपन असहाय हो गया। पितृत्व की ओछी लालसा के राज सिंहासन पर शान्ता के जन्म के बाद न तो कभी मंगल गीत गाये गए और न ही राजमहल में कोई चहल-पहल, चारों तरफ केवल सन्नाटा ही सन्नाटा। दशरथ ने आपातकालीन बैठक बुलाकर कन्या जन्म की बदनामी से मुक्ति पाने के लिए, मुझ जैसी नवजात बालिका को दूर कहीं वन में छोड़ने अथवा सरयू की धारा में बहा देने अथवा मेरी अविलम्ब हत्या की अनेकानेक कर्कश ध्वनियाँ फूटने लगीं। दशरथ परम प्रतापी न होकर कायर व नपुंसक थे, लेकिन दुःख तो इस बात का भी है, तत्कालीन समाज के बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि प्रतिष्ठितगण रघुकुल के गुरु महामुनि वशिष्ठ, विश्वामित्र सभी ने उनके पक्ष में कोई आवाज नहीं उठाई। तब उसे ऐसा लगा कि मुझ जैसी नन्हीं बच्ची के अस्तित्व से घबराकर बड़े-बड़े वीर दार्शनिक चिंतक, ऋषि-महर्षि सभी ने एकजुट हो कर मेरे खिलाफ महायुद्ध का शंखनाद कर दिया हो। उस सभा में पुत्रेष्टि यज्ञ (पुत्र की कामना वाले यज्ञ के आयोजन) करने का सर्व सम्मति से निर्णय लिया गया और पुत्री जन्म के अमंगल सूचक अपशकुन मिटाने के लिए यथेष्ट दक्षिणा और दान करने का भी तय किया गया। "

कवि उद्भ्रांत ने इस सर्ग में पुत्रेष्टी यज्ञ की सार्थकता पर संदेह प्रकट करते हुए अपनी जिज्ञासा हेतु पुत्रिष्टी यज्ञ के उद्देश्य पर भी शंका जाहिर की है कि महाराज दशरथ जैसे

धनाढ्य और समृद्ध राजा क्या पुत्री वाले यज्ञ से डर गए थे और अपनी पुत्री शान्ता का विवाह वृद्ध श्रृंगी ऋषि के साथ बचपन में ही कर उसे बालिका वधू बना दिया। उसके खेलने, कूदने, पढ़ने-लिखने की इच्छाओं का ख्याल किए बिना। "मनु स्मृति" की संहिताओं ने मानो धरती माँ के कर्ण विवरों को पिघला शीशा डालकर बंद कर दिया हो। शायद इसी कारण दशरथ की पुत्री की प्रकृति पूरी तरह से शान्त हो गई और "शांताकारम् भुजग-शयनम" के अनुरूप उसका नाम ही सार्थक कर दिया। शान्ता की आत्मा को इस बात का अभी भी दुख होगा कि उसके पिता ने उसकी उपेक्षा कर पुत्रेष्टि यज्ञ के माध्यम से तीन रानियों के द्वारा चार छोटे-छोटे राजकुमारों को जन्म दिया। मगर आज भी शान्ता समाज के समक्ष परोक्ष-अपरोक्ष रूप में चेतन-अवचेतन मन पर कई सवाल उठा रही है।

देवदत्त पट्टनायक की पुस्तक "सीता रामायण" के अनुसार जब राम दंडक अरण्य में जाते हैं तो राम लक्ष्मण की मुलाक़ात एक सुन्दर-स्त्री से होती है। उस समय वह अपना परिचय देते हुए यह कहती है, "मैं राम की बड़ी बहन शान्ता हूँ" और सीता को समझाते हुए कहने लगती है,"अपने पति के साथ जंगल में जाने का निर्णय उत्तम है; मगर एक वधू के रूप में जंगल में वनभ्रमण करना ठीक नहीं है, वह भी दो सुन्दर पुरुषों के साथ। क्योंकि दोनों में से कोई भी तुम्हारी तरफ नहीं देखेगा, एक इसलिए कि वह संन्यासी है और दूसरा इसलिए कि तुम्हारे पति का भाई है। तुम्हारे चारों तरफ केवल चिड़ियों की चहचाहट, सर्पों की फुफकार, मेढ़कों की टर्रटर्र और जंगली जानवरों की दहाड़ मिलेगी। उस समय तुम अपने आपको किस तरह काबू कर पाओगी और वह भी उस अवस्था में जब, राक्षस जिनके लिए सतीत्व का कोई अर्थ नहीं है तथा अपने जंगल-जिसकी कोई सीमा नहीं है। " सीता शान्ता की यह सारी बात नहीं समझ पाई कि वह सब रोमांटिक कहानियों और प्रेम-संगीत के बारे में बता रही है। यह सोचकर शान्ता ने उसे बताया "तुम अभी जवान हो और तुम्हारा शरीर लगातार बदल रहा है, मैं एक चीज का अनुभव कर रही हूँ; तुम भी अनुभव करोगी कि तुम्हारा जंगल में कदम रखना अपने आप में एक वरदान है। तुम वास्तव में इस धरती की पुत्री हो। "

देवदत्त पटनायक के अनुसार सीता और शांता के वार्तालाप दक्षिण भारत की लोक कथाओं में मिलते हैं। तमिल मंदिरों में तथा श्री वैष्णव परंपराओं के अनुसार सीता और राम सोते समय बीच में धनुष रखते थे। जो उनके ब्रहमचर्य पूर्वक जीवन जीने का प्रतीक था। यही नहीं, वनवास के पूर्व और वनवास के दौरान राम और सीता में शारीरिक संबंध बनने की धारणा को माना जाता है। वास्तव में संस्कृत नाटकों में यह दर्शाया गया है। मगर उन शारीरिक संबंधों में कोई पुत्र प्राप्ति नहीं हुई, जबकि दोनों की युवा अवस्था में असंभव प्रतीत होता है। इसीलिए ऐसा माना जाता है कि दोनों ने ब्रहमचर्य पूर्वक जीवन बिताने का निर्णय लिया था, राम ने संन्यासी के रूप में और सीता ने संन्यासी की पत्नी के रूप में।

देवदत्त पटनायक की पुस्तक “द बुक. ऑफ. राम” (The Book of Ram) के “दशरथ पुत्र” अध्याय में लिखा है कि वाल्मीकि रामायण में शांता की कहानियों में इस संदर्भ में कुछ जानकारी अवश्य मिलती है। विभाण्डक ऋषि तथा उर्वशी के पुत्र “ऋषि शृंगी का अभिशाप”- ऋषि शृंगी ने बादलों से अपने आपके भींगने पर नाराज होकर अभिशाप दे दिया कि वे ज्यादा बारिश न कर सके, ताकि उनकी तपस्या में किसी भी प्रकार का विध्न न पड़े, और उन्हें सिद्धियाँ प्राप्त हो सके। ऋषि शृंगी के इस अभिशाप से मुक्ति पाने का एक ही इलाज था, उनकी शादी कर देना। देवताओं ने स्थानीय राजा लोमपद (Lompada/Rompada) अंग देश के महाराज तथा भट का नामक वेर्शिनी (vershini) से कहा- जब तक उन्हें स्त्रियों का ज्ञान नहीं होगा तब तक अकाल पड़ता होगा। मगर लोमपद की कोई पुत्री नहीं थी, जो सन्यासी को गृहस्थ बना सके। इसीलिए उन्होंने राजा दशरथ की पुत्री शान्ता को गोद लेने की अनुमति प्रदान की। ऋषि शृंगी को पति के रूप में स्वीकार कर अकाल की समस्या से सामाधान पाया गया और लोमपद के राज्य में फिर से बारिश होने लगी। शान्ता और शृंगी की यह कहानी रामायण को गृहस्थ लोगों के काव्य में बदलता है, जहाँ दुनिया प्रति पल बदल रही है और अनित्यताओं से भरी हुई है, वहाँ उन चीजों से भागना या दुनिया का परित्याग करना खतरनाक और विनाशकारी साबित हो सकता है। इसीलिए जब ऋषि शृंगी पति के रूप में शान्ता को गले लगाते हैं, तो बारिश होती है और पृथ्वी खिलखिला उठती है। स्टार प्लस (star plus) पर दिखाया जा रहे टी॰वी सिरियल ‘सिया के राम’ (Siya ke Ram) के अनुसार शान्ता अपने जैविक माता-पिता के साथ रहती थी। मगर स्वेच्छा से राजमहल और अपने माता-पिता को त्याग कर ऋषि शृंगी से शादी करने के लिए चली गई। क्योंकि मात्र यही एक तरीका था जिसकी वजह से उसके पिता दशरथ को पुत्रों की प्राप्ति हो सकती थी। शान्ता और ऋषि शृंगी के वंशज सेंगर (Senger) राजपूत हैं। मात्र ऐसे राजपूत हैं जो ऋषिवंशी राजपूत हैं। शान्ता वेद, कला और शिल्प में सिद्धहस्त थी और अपने जमाने की बहुत ही खूबसूरत स्त्री थी। शान्ता का ऋषि शृंगी से शादी करने का मुख्य उद्देश्य अपने पिता की वंशावली में बढ़ोत्तरी करना था। ऋषि शृंगी ने अपने ससुर दशरथ के यहाँ पुत्र-कामेष्टि यज्ञ कर उनके वंश को आगे बढ़ाया और दशरथ के राम, भरत और जुड़वा लक्ष्मण और शत्रुघ्न पैदा हुए। हिमाचल प्रदेश के कुल्लू जिले से पचास किलोमीटर दूर पर ऋषि शृंगी का एक मंदिर है जिसमें ऋषि शृंगी की पूजा देवी शांता के साथ होती है। डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित के अनुसार त्रेता के कवि की सूझबूझ ने इस बात को लक्षित करके शान्ता के चरित्र का मौलिक गठन किया है और उसके माध्यम से नारी विमर्श से जुड़ी समस्यओं को काव्य में अंतर्निविष्ट कर लिया है। शान्ता का जीवन और मनोस्थिति रामकथा की अन्य राजकन्याओं से पूरी तरह भिन्न है। किसी के साथ वह घटित नहीं हुआ, जो शान्ता के साथ उसके जन्म लेते ही हुआ। कन्या जन्म आज भी एक समस्या है। भ्रूण हत्या, जन्म लेते ही परित्याग या हत्या, पराया धन मानकर कन्या की उपेक्षा, पुत्र की तुलना में उसे हीन मानना, उसकी शिक्षा का समुचित प्रबंध न

करना, उसे बोझ समझना, उसकी इच्छाओं, आकांक्षाओं की संपूर्ति न कर उनका दमन करना आदि अनेक स्थितियाँ हैं, जो समाज के सामने कठिनइयाँ उपस्थित कर रही हैं। शान्ता का जीवन घनीभूत पीड़ा का जीवन है। सारी आपदाएँ-समस्याएँ जैसे उसी के भाग्य में लिख दी गई हैं। इसीलिए कवि उद्भ्रांत शान्ता सर्ग के माध्यम से कहलवाता है*:- "शान्ता मैं महाराजाधिराज दशरथ की पुत्री एकमात्र / अकथ मेरे जीवन की कथा / ...कोई मुझे जानता तक नहीं / पहचानने की बात क्या करूँ मैं ! " जैसे अवसादपूर्ण शब्दों से शुरू करती है। और मानती है कि "रघुकुल जैसे / गौरवशाली कुल में / जन्म लेकर भी / मैं रही अभागी ही। "*

शान्ता का अभाग्य यह तो है ही कि, *"मेरे नाम को / मेरे काम को, नहीं मिला - किसी वाल्मीकि की तूलिका का / सामान्य संस्पर्श तक। "* (और शान्ता से ऐसा कहलाकर कवि उसे विषाद की व्यंजना के साथ-साथ वाल्मीकि से अपनी स्पर्द्धा की व्यंजना भी करता दिखाई देता है, उसके व्यथा के और भी अनेक कारण हैं। अन्यान्य कारणों में से पहला कारण है, उसके जन्म होते ही रघुवंशियों के मुखमंडल का निस्तेज और महाराज दशरथ के मुख का विवर्ण हो जाना / उनके मस्तक पर चिंता की रेखाएँ खिंच गईं / नंगी तलवार-सी / उत्तराधिकारी न पाने के कारण माँ का तिरस्कार भी हुआ- *"महारानी कौशल्या के प्रति/ उनका अनुराग हुआ / तिरोहित / उसमें स्थान लिया शनैः-शनैः / उनकी उपेक्षा का"* और वह अपेक्षा भी उनके प्रति ठंडेपन (coldness of behaviour) में बदलती चली गई। चोट खाई हुई शान्ता एक आधुनिका के समान प्रश्न पूछती है।

"माँ कौशल्या का दोष क्या था - / जो जन्म दिया / उन्होंने एक पुत्री को / महाराज भी / कारक थे / मेरे इस अभागे जन्म के। " और शायद शांता ही नहीं, स्वयं कवि भी इसके औचित्य को प्रश्न चिहनांकित करता है :-

> *"पुत्री के प्रति ऐसा / भाव उपेक्षा का,*
> *क्या था अनुकूल / गौरवशाली रघुकुल में?"*
>
> आश्चर्य नहीं यदि कोई पाठक भी कवि से यही जानना चाहे। कवि उद्भ्रांत ने शान्ता के इस प्रश्न को सांस्कृतिक स्तर पर जोड़कर उसे महार्घता प्रदान करते हुए कहा है:-
>
> *"महाराज पुरखों के / शास्त्रवचनों को - / कर गए थे क्यों विस्मृत / यत्र नार्यस्तु पुजन्ते / रमन्ते तत्र देवताः। "*
>
> *उनके राजसी चिंतन में / न आया क्यों ऐसे भाव की - /*
> *नारी का अस्तित्व नहीं होता तो / महाराज स्वायंभुव मनु कैसे /*
> *करते प्रारंभ / मानुषों से भरी / सृष्टि का। "*

और वे फिर शान्ता के साथ पुत्री-जन्म की दोषी मानी जाने वाली माता (कौशल्या) की इस नियति को लेकर चिंतित हो गए है कि पुरुष उसे दंडित करने के अभिप्राय से किस तरह रूप-सौंदर्यशालिनी सपत्नी के प्रति समर्पित हो जाता है! जैसे मानो - "उन्हें दंडित करने को संभवतः/महाराज दशरथ ने अपना चित्त केंद्रित कर दिया/माँ कैकेयी के/दिये की लौ जैसे/तप्त रूप पर! " पुत्री-जन्म की प्रतिक्रिया इतनी ही नहीं हुई, बल्कि और भी भीषण प्रतिक्रियाओं का जैसे दौर ही चल पड़ा। कौशल्या ने अपने मन को नियंत्रित करके भगवदाराधना में लीन कर दिया। अश्रु पी लिए और मौन हो गई- नितांत निरीह और असहाय। जन्म पर मंगल विधाएँ तो हुई ही नहीं थी, राजदरबार से लेकर अयोध्या की गलियों तक, 'शोकाकुल सन्नाटा' पसर गया। महाराज ने मंत्रिमंडल की एक आपात बैठक बुला डाली। *"जैसे राज्य पर / अनायास लगे मंडराने / कोई भयानक संकट / कोई महामारी फैल गई हो या -/ किसी प्रबल शत्रु ने / आक्रमण कर दिया हो अचानक / और घेर लिया हो समूचा राज्य! "*

> मंत्रिमंडल की उस बैठक में *"कन्या के जन्म से जो बदनामी मिली। महाप्रतापी रघुवंशी को- / उसे दूर करने हेतु / किसी ने अस्पष्ट स्वरों में / यह कहा फुसफुसाते हुए -/ नवजात बालिका को / दूर कहीं वन में छोड़ दें अथवा / सरयू की धारा में बहा दे। "*

महाराज दशरथ 'कायर और नपुंसक' की भांति देखते-सुनते रहे। रघुकुल गुरु महामुनि वशिष्ठ ने प्रतिद्वंदी महामुनि विश्वमित्र की उपस्थिति के कारण 'कूटनीति के तहत' मौन धरण कर लिया, मानो स्वीकृति दे रहे हों। उस काल में सोनोग्राफी की सुविधा भले ही नहीं थी, किन्तु 'दिव्य-ज्ञान-चक्षु' तो संभव थे। यदि उन 'दिव्य-ज्ञान-चक्षुओं' से जन्म के पूर्व ही उस बच्ची को देख लिया गया होता तो जन्म से पूर्व ही उसका दुखद अंत भी सुनिश्चित था। इस प्रसंग को कवि ने इतनी सूक्ष्मता से वर्णित किया है और आधुनिक स्थितियों को इस तरह उस काल पर आरोपित किया है कि पाठक का चित्त आकुल-व्याकुल हुए बिना नहीं रह सकता। आधुनिक तंत्र-ज्ञान सोनोग्राफी की जगह दिव्य चक्षुओं का बहाना भी उसे तत्काल मिल गया, किन्तु पाठक यह प्रश्न पूछे बिना शायद नहीं रह सकता कि प्रतापी रघुवंश पर इतनी बढ़ा-चढ़ाकर यह तोहमत क्यों लगाई जा रही है; जबकि कन्याएँ तो और राजाओं के यहाँ भी पैदा हुईं, पली-बढ़ी। महाराज चाहते तो पुत्री के जन्म होते ही उसे मृतक घोषित कराकर, कहीं दबा-फेंककर छुट्टी पा सकते थे। उसके लिए (आपात) मंत्रिमण्डल की बैठक बुलाने की क्या आवश्यकता थी? उतराधिकारी के लिए पुत्र-जन्म काम्य था, तो कुछ अनहोना नहीं था। उसके लिए विचार किया जा सकता था। कन्या की हत्या में बड़े-बड़े वीर, दार्शनिक, चिंतक, ऋषि-महर्षि और स्वयं 'रघुकुलगुरु' उपस्थित थे। माना कि महर्षि विश्वामित्र की उपस्थिति में 'गुरु' जी को कुछ कहते नहीं बना, पर क्या कहने भर को भी उस युग में कोई ऐसा न्यायनिष्ठ साहसी, सभासद नहीं था जो इस प्रकार की हिंसा का विरोध या प्रतिरोध करता? क्यों कवि ने 'परम प्रतापी' पिता को 'कायर नपुंसक' होने

का आरोप करने का अवसर दिया है। क्यों कवि इसे 'भ्रूण हत्या' तक की घृणित स्थिति की कल्पना तक ले गया है? कवि ने इसका एक मात्र कारण बताया, महाराज की उत्तरोत्तर अवस्था-वृद्धि। लेकिन अवस्था-वृद्धि का संबंध उत्तराधिकारी न होने की चिंता से है, कन्या के जन्म होने पर उसके विरुद्ध कदम उठाने से नहीं है। कन्या होने पर आपात बैठक उत्तराधिकारी की समस्या का हल करने के लिए बुलाई गई होगी न कि सद्य जात बालिका का क्या किया जाए, इस पर विचार करने के लिए। बालिका के परित्याग या उसकी नृशंस हत्या से उत्तराधिकारी की समस्या हल नहीं होती। कवि उद्भ्रांत इस सारी स्थिति से अवगत न हो, ऐसा नहीं लगता ! इसलिए वे उस प्रस्ताव को फुसफुसाहट मात्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं। और शेष सारी घटना को बड़ी हुई शान्ता की प्रतिक्रियात्मक सोच के रूप में व्यक्त करते हैं। उस सोच में माँ की दुःस्थिति-जनित उसके प्रति पुत्री का स्नेहादर-भाव भी मिश्रित है। अतएव उसका स्वर आक्रोशात्मक तथा पिता के प्रति अनादरपूर्ण है।

इस आक्रोश और अनादर का एक और कारण भी है जो आगे पुत्रेष्टि यज्ञ किए जाने के प्रस्ताव के साथ प्रकट हुआ है। वह यह कि - *"और पुत्री-जन्म के अमंगल-सूचक/ अपशगुन के दोष के निवारणार्थ / नवजात दान कर दी जाये / किसी विवाहित महर्षि को / देते हुए उन्हें यथेष्ट दक्षिणा /----"*

- *"पक्ष बीतते ही कन्या / वापस ले आयी जाये / राजमहल में ही / घोषित करते हुए कि / महाराज कृपालु हुए एक निर्धन जन पर / और उसकी कन्या के / पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा / और विवाहादि समस्त उत्तरदायित्वों को / निर्वहन के लिए उन्होंने -/ उसे गोद लेने का किया उपक्रम / असाधारण"*
- *"इससे कन्या जन्म का / असगुन तो मिटेगा ही /*
  राज्य में चहूँ और कीर्ति फैलेगी / राजा की। "

पुत्रेष्टि यज्ञ और इस प्रकार का कन्यादानादि दोनों ही अंधविश्वास तो है ही, दूसरा तो छलावा भी है। त्रेता में यह सब प्रचलित रहा हो या न रहा हो, किंतु आधुनिक चिंतक को वह मान्य नहीं है। शान्ता उस आधुनिकता का प्रतिनिधित्व करती हुई इन मान्यताओं का विरोध करती है। पुत्रेष्टि यज्ञ के विषय में वह प्रश्न करती है :-

"क्या पुत्रियों की / उत्पत्ति के लिए भी /
आयोजित होता है / ऐसे ही पुत्रीष्टि यज्ञ"
और क्या / उसी के पश्चात / जन्मी हूँ मैं भी?
"क्या पुत्री की कामनावाले यज्ञ में भी /
धन का होता है / असीमित व्यय?"

अबोध बालिका माँ के सामने एक से एक नए प्रश्न रखती रही, किंतु माता कौशल्या का मौन नहीं टूटा। उनके मुखमंडल पर उदासी, क्षोभ, करुणा और दुःख के मिश्रित भाव मेघ बनकर अवश्य छा गए। परिणामतः शान्ता भी मौन होती गई और समय से पहले परिपक्व होकर शान्ता हो गई, अपने नामके अनुरूप। इस बीच उसके जीवन में जैसे एक दुर्घटना और घटित हो गई - क्रीडा करने और ज्ञान बधू की अप्रतिम पदवी 'देकर उसका असमय विवाह कर दिया गया। इस तरह एक समस्या उसके जीवन में जुड़ गई। समस्याओं का अंत यहाँ भी नहीं हुआ, बल्कि पुत्रेष्टि यज्ञ के बाद महाराज दशरथ के पुत्रों के जन्म के साथ उसके मन में एक नई ही शंका उभर आई - *"पता नहीं, उसका ही प्रभाव था या- / महाराज को पौरुष - वर्ष ने / सूख चुकी पृथवी को / किया रस में सराबोर। "* उसके प्रश्नों का कोई अंत नहीं हुआ; चेतन-अचेतन में कोई-कोई प्रश्न उठते रहे।

पंद्रहवाँ सर्ग

सीता का महाआख्यान

कवि उद्भ्रांत ने 15वें सर्ग “सीता” में सीता की उत्पत्ति के बारे में उल्लेख करते हुए लिखा है कि मिथलांचल कि शस्य-श्यामला उर्वर भूमि किसी के अभिशाप से बंजर भूमि हो गई थी। न तो वहाँ अन्न की पैदावार होती थी और न ही किसी भी तरह की कोई वर्षा। देखते-देखते भयंकर दुर्भिक्ष के कारण वहाँ के निवासी लाखों की सख्या में अस्थि-पिंजरों में बदलने लगे, तब विदेही महाराज जनक ने प्रजा की आर्त पुकार सुनी। अर्द्धरात्रि में विवस्त्र होकर बंजर कृषिक्षेत्र में अगर वे हल चलाएँगे तो उनकी दयनीय अवस्था देखकर मेघराज इंद्र को दया आ जाएगी और वर्षाजल से सींचकर पुनः उस भूमि को उर्वर बना देंगे। शायद यह उस जमाने का लोक-प्रचलित अंधविश्वास अथवा टोना-टोटका था। मगर कवि के अनुसार हल चलाते समय अचानक उसकी नोक सूखी मिट्टी के ढेर में दबे ढँके कुम्भ से टकरा गई, उस कुम्भ में सुदूर प्रांत के ऋषि वंशज ब्राह्मण के किसी अप्सरा के साथ गोपनीय प्रणय का परिणाम था। यह परिणाम ही सीता थी। हो सकता है लोग उसे सामाजिक तिरस्कार के भय से कपड़ों में लपेट कर मटके में डाल मरने के लिए खुला छोड़ गए थे। क्या यह सीता का अवांछित जन्म था? संतानहीन महाराज जनक तो सीता जैसे अमूल्य कन्या-रत्न को धरती माता से प्राप्त कर हर्ष विभोर हो उठे। यह विचित्र कथा सुनने पर विश्वास नहीं हो पाता। कवि उद्भ्रांत सीता की कथा को आगे बढ़ाते हुए लिखते हैं कि जनकपुर में न केवल नगरवासियों से वरन् माता-पिता के भावाकुल हृदय में वह हमेशा बसी रही। शस्त्र-संचालन की सभी विद्याओ में वह पारंगत होती रही। शादी के लिए पिता ने सर्वश्रेष्ठ वर ढूँढने के लिए चारों दिशाओ में स्वयंवर का असाधारण न्यौता भेजा कि जो कोई वीर महादेव शिव के प्राचीनतम धनुष को उठाकर प्रत्यंचा खींचकर बाण को चढ़ा देगा, वही उसकी पुत्री के लिए योग्य वर होगा। भगवान शिव के प्रति सीता के हृदय में भी गहन श्रद्धा थी और आँगन में बने देवालय में रखे इस धनुष की सफाई के दौरान सीता ने उसे उठाकर एक जगह से दूसरी जगह रखा था। सीता के निवेदन करने पर फिर से उसे यथास्थिति पर रखने के लिए कहा। शायद वह यह नहीं जानना चाहते थे कि सीता कोई साधारण कन्या नहीं है, वरन दिव्य शाक्तियों से संपन्न है। तभी उन्होंने घोषणा कि जो कोई इसकी प्रत्यंचा को चढ़ाएगा,वही सीता का पति होगा। जब सीता को शिव धनुष की महिमा का ज्ञान हुआ तो उसने महादेव से अपराध क्षमा करने की प्रार्थना की। शिव मंदिर से पूजा अर्चना करके जैसे ही वह बाहर निकल रही थी, वैसे ही दो श्यामवर्ण वाले सुगठित, सुंदर, देहयष्टि के राजकुमार विश्वामित्र के साथ

उधर से गुजर रहे थे, उनकी हँसी मधुर संगीत की ध्वनियाँ पैदा करते हुए सीता की चेतना को भंग कर दिया। लज्जा, संकोच के भाव रक्तिम वर्ण के रूप में सीता के चेहरे पर उभरने लगे। बाद में उसे ज्ञात हुआ कि वे दोनों राजकुमार अयोध्या के नरेश महाराज दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण हैं। राम को देखते ही शिव मंदिर में की गई प्रार्थना सीता को याद आ गई और पहली नज़र में ही राम को अपने वर के रूप में स्वीकार कर लिया। मगर सीता को यह चिंता होने लगी कि अगर राम शिव धनुष नहीं उठा सके या किसी दूसरे योद्धा ने उसे उठा लिया तो उसके जीवन पर क्या गुजरेगा। पुलस्त्य ऋषि के कुल में उत्पन्न लंकापति रावण शिव धनुष को उठाने में असक्षम रहा,जबकि राम इस परीक्षा में खरे उतरे। जैसे ही सीता राम को जयमाला पहनाने जा रही थी, वैसे ही वहाँ भगवान शिव के परम भक्त क्रोधी परशुराम का प्रादुर्भाव होता है और वे शिव धनुष को स्पर्श करने वाले राम की हत्या के लिए तत्पर हो जाते हैं। मगर राम ने अपने मधुर व्यवहार से माहौल को ठंडा कर दिया। और सीता की शादी हो जाती है। अयोध्या के राजमहल में नववधू सीता का दूसरा भविष्य इंतज़ार कर रहा था। कुछ समय बाद राम को चौदह वर्ष का वनवास हुआ और सीता ने हठ करके राम के साथ जाने का निर्णय किया, भले ही उसे अनेक असाधारण अग्नि-परीक्षाओं से गुजरना पड़ा। मगर सीता को इस बात की संतुष्टि है कि बाहर की अग्नि में बिना झुलसे यह भीतर ही भीतर आँसुओं को पिये एकाकी स्त्री के जीवन के विपरीत अपने पति के अनन्य और मूर्त अनुराग की अनुभूति को प्राप्त कर सकी। लक्ष्मण के भाई और भाभी के प्रति अनन्य प्रेम, वन में रहने वाले वनवासियों, वानरों, रीछों, राक्षसों की सदभावना, हनुमान जैसे महाबली से मातृवत् आदर सम्मान, निषादराज (केवट) के चतुर-प्रेम, गिद्धराज जटायु की आर्त पुकार, मेरे प्रति धर्मात्मा विभीषण का आदर, अशोक-वाटिका में सखी त्रिजटा का स्नेह, कुंभकर्ण का मेरे प्रति पुत्रीवत् सहृदय आचरण और रावण की निंदा - ऐसे सारे अनुभव चौदह वर्षों में सीता को प्राप्त हुए, जो कि आज भी वर्णनातीत है। आज भी शोधार्थी सीता के अपहरण के उद्देश्य को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखते हैं। कुछ विचारक शूर्पणखा के अपमान का प्रतिशोध लेना मानते हैं, तो अन्य विचारक अशोक वन में सीता को रख कर वन की विपतियों से बचने का उपकरण समझते हैं। तभी तो त्रिजटा को सीता की सुरक्षा के लिए नियुक्त किया। इसमें कोई संदेह नहीं कि रावण सीता को अपनी पुत्री समझता था और सीता के पिता जनक के साथ उसका बंधुवत् व्यवहार था। कवि उद्भ्रांत ने इस सर्ग में दिखाया है कि रावण ने कभी भी स्त्री के अधिकारों और मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया। साधु के वेश में भिक्षा माँगते समय भी चाहता तो वो उसे अकेला देख कुटिया में प्रवेश कर सीता का शील हरण कर सकता था, मगर लक्ष्मण रेखा (मर्यादा रेखा) तो स्वयं सीता ने पार की थी। क्या जरूरी था उसके लिए अनजाने पुरुष को भिक्षा देना, जबकि वह यह जानती थी कि किसी स्त्री के घर से बाहर निकला हुआ एक पग उसे नर्क की और ले जा सकता है? क्या कहीं रावण अपनी पुत्री (सीता) को महाराज जनक द्वारा दिए गए व्याहारिक शास्त्र ज्ञान की परीक्षा तो नहीं ले रहा था?

आज के इस युग में चतुर, चालाक, धूर्त, लम्पट लोगों के सामने भोला होना क्या मूर्खता का पर्याय तो नहीं है। इस तरह कवि उद्भ्रांत ने अपराध का सारा ठीकरा सीता के सिर पर फोड़ दिया, यही नहीं और कुछ अपराधों पर प्रकाश डालते हुए सीता को भर्त्सना का पात्र बनाया, जैसे स्वर्णवर्ण वाले हिरण की चमड़ी को प्राप्त करने का लोभ छोड़ न कर पाना, वन गमन की विपतियों, सकटों और असुविधाओ के बारे में पति राम द्वारा समझाने पर भी, स्त्री हठ कर बैठना और माया, मोह, लोभ, काम से विरक्त रहकर जीवन यापन करना। परम-त्यागी देवर लक्ष्मण की उपस्थिति से तो भले ही सीता ने काम पर विजय पा ली थी, मगर सोने के आभूषणों के प्रति उसके अवचेतन मन में समाया मोह स्वर्णवर्ण बाले हिरण के चर्म को प्राप्त करने की इच्छा में बदल गया। क्या मिट्टी से पैदा हुई सीता यह भूल गई थी कि सच्चा सोना तो मिट्टी ही है, तब सुन्दर वन्य जीव की निर्मम हत्या करने की इच्छा उसके मन में क्यों जागृत हुई? इस हत्या का दण्ड विधाता ने महादण्ड के रूप में परिणत कर दिया। सोने की लंका में एक दीर्घ अवधि तक पति से बिछुड़कर एकाकी निस्सार जीवन जीने पर विवश कर दिया। क्या राम के अनन्य प्रेमरूपी सोने के सामने सुनहरे हिरण का चर्म बड़ा था? सीता की आँखों पर से पर्दा तो तब हटा जब हनुमान ने पलक झपकते ही सारी सोने की लंका को अपनी पूँछ के माध्यम से जला दिया और अपनी पहचान बताने के लिए राम-नाम से अंकित सोने की मुद्रिका फेंककर सोने की असत्यता को उजागर किया। तपस्वी हनुमान उन्हें चमकती हुए माया के वश से भरे कनक से मुक्त करना चाहते थे।

कवि यह कहना चाहते हैं कि सोने की लंका को अग्नि में जलते देख सीता को जीवन की अग्नि-परीक्षा का अहसास हो गया और समुद्र तट पर धधकते अंगारों पर चलकर अग्नि परीक्षा देकर, सीता ने अपनी गहरी संवेदना के फफोलों पड़े पाँवों से अयोध्या पहुँचकर फिर से एक बार पत्नी प्रताड़ित तुच्छ व्यक्ति की वार्ता से दुखी होकर अपने चरित्र के संबंध में शंका के विषैले कीट से ग्रस्त होकर राज-आज्ञा का अंधानुपालन किया। लक्ष्मण को गर्भवती भाभी को रामराज्य से दूर जंगल राज्य का रास्ता दिखाना पड़ा। गर्भवती सीता के सामने और सर्जनात्मक विस्फोट करने का उचित अवसर प्रदान किया। राम-यश की आधारशिला के रूप में कथानक को लेकर आदिकवि ऋषि वाल्मीकि सीता के दूसरे पिता बनकर उभरे और उनके स्नेह संरक्षण में सीता ने दो पुत्रों लव और कुश को जन्म दिया, उन्हें सर्वोत्तम संस्कार दिए, शस्त्र-शास्त्र में शिक्षित किया, सुयोग्य बनाया। महाकवि के संसर्ग में उनकी वाणी में संगीत का जादू उतर गया। राम की इस कथा का मधुर पाठ करते हुए जब वे अयोध्या पहँचे तो उन्हें आदर के साथ राज दरबार में बुलाया गया और जब उन्हें अपना परिचय देने के लिए पूछा गया तो बालोचित चपलता से उन्होंने उत्तर दिया कि राजा प्रजा-जनों का पिता है, इसलिए आप ही हमारे पिता हैं। दुख इस बात का है कि उन्होंने किसी मूर्ख प्रजा की घरेलू निरर्थक बकवास सुनकर अपनी गर्भवती पत्नी

सीता को देश निकाला दे दिया। यह क्या समूचे रघुवंश का सिर ऊँचा कर सकता है? हमारी माता सीता है। हमारी दूसरी चुनौती और क्या हो सकती थी! मगर उन परिस्थितियों ने सीता के भीतर छुपी महाशक्ति पिता भी है, आप तो केवल कहलाने के लिए पिता हैं। यह कहते हुए लव और कुश समूचे राम दरबार को स्तब्ध और अवाक् छोड़कर वाल्मीकि आश्रम लौट गए। उनका अनुसरण करते हुये भावाकुल राम, लक्ष्मण, हनुमान, भरत,शत्रुघ्न, मंत्री सुमंत सभी वाल्मीकि आश्रम पहुँचकर अयोध्या वापस ले जाने के लिए आग्रह किए थे। मगर सीता ने उसे अस्वीकार कर दिया और हनुमान के माध्यम से अपनी अनिर्वचनीय पीड़ा को राम के पास पहुँचाया कि उसे उचित समय की प्रतीक्षा है, अपने पुत्रों लव और कुश को योग्य बनाना है, साथ ही साथ समाज में व्याप्त अंध-विश्वासों, कुरीतियों, स्त्री विरोधी पाखंडों से युद्ध कर उन्हें पराजित भी करना है। कुछ समय बाद राम ने अश्वमेध यज्ञ की घोषणा की। जिसके अश्व को युवा लव-कुश ने पकड़ लिया और युद्ध की चुनौती देते हुये राम के समस्त दल को मूर्च्छित कर जब राम पर धनुष चढ़ाने लगे, तो सीता ने उन्हें रोक दिया कि शस्त्र का ज्ञान रखने वाले को शस्त्र की उपयोगिता जाननी चाहिए। पिता पर शस्त्र उठानेवाला पुत्र अपयश का भागी होता है। सीता के निदेश पर राम की चरण वंदना करते हुए छोड़ दिया। उस समय भी राम ने सभी को अयोध्या चलने का आग्रह किया। मगर सीता ने उनके इस आग्रह को ठुकरा दिया कि उसे घर लौटने पर पहले जैसी प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती है, चाहे वह कितनी भी निरपराध क्यों न हो। मैं तो अपने लिए उसी समय मर गई थी, जिस समय आपने मुझे वन में छोड़ने का निर्देश दिया था। मेरे जीवन का अंतिम दिवस होता, अगर महर्षि वाल्मीकि वहाँ नहीं होते। मैं अब तक लव-कुश के लिए केवल ज़िंदा थी, अब अपको सौंपते हुए इस अटल विश्वास के साथ कि उनके प्रति सदैव प्यार में आप किसी भी प्रकार की कमी नहीं रखेंगे, मैं अपसे विदा लेती हूँ और उस मिट्टी में मिल जाना चाहती हूँ, जिस मिट्टी के पट के माध्यम से मेरे पिता ने मुझे सुरक्षित आश्रय दिया था। लंका-दहन के समय में इस बात को समझ गई थी कि आखिरकार मिट्टी में मिलना है तो क्यों नहीं ऐसे कुछ कार्य किए जाए जिसके माध्यम से इस मिट्टी को अमरता प्रदान हो।

यह कहते हुए पहले से ही खोदे हुए मौत के अंधे कुँए में छलांग लगाते हुए उसने सूर्यवंशियों के सामने कई अनुत्तरित और प्रज्ज्वलित प्रश्न छोड़ दिये, जिसका उत्तर सोचने के लिए उन्हें आगामी सहस्रों वर्षों तक कई साधना की यात्रा करनी होगी, जबकि समय के विचित्र उस अंधे कुँए में सूर्य की कोई भी किरण प्रवेश नहीं पा सकती है।

इस सर्ग में कवि ने जिन चरित्रों का मुख्य रूप से उल्लेख किया है उनमे परशुराम, सीता, लक्ष्मण, राम आदि हैं। सीता की व्याख्या करने से पूर्व परशुराम के बारे में जानना भी उतना ही जरूरी है। जहाँ ब्राह्मण वर्ग परशुराम को विष्णु भगवान का अवतार मानते हैं, वहीं महात्मा ज्योतिषि फूले उन्हें मातृहन्ता व निर्दयी प्रवृति वाला मानते हैं। "उनकी पुस्तक

‘गुलामगिरी’ के अनुसार ईरान से आए हुए ब्रहमा ने यहाँ के मूल क्षेत्र-वासियों को अपना गुलाम बना दिया था। लोग उन्हें प्रजापति के नाम से जानने लगे। उसके मरने के बाद ब्राहमणों के जाल में फँसे हुए अपने भाइयों को गुलामी से मुक्त करने के लिए यहाँ के मूल निवासियों ने इक्कीस बार युद्ध किया। वे इतनी दृढ़ता से लड़े कि उनका नाम द्वैती पड़ गया। और उस शब्द का बाद में अपभ्रंश दैत्य हो गया। जब परशुराम ने इन सभी को परास्त किया तो यह दक्षिण में जाकर रहने लगे। जैसे-जैसे मुसलमानों की सत्ता इस देश में मजबूत होती गई, वैसे-वैसे ब्राहमणों द्वारा यह अमानवीय परंपरा समाप्त होती गयी। लेकिन इधर क्षत्रियों से लड़ते-लड़ते परशुराम के इतने लोग मारे गए कि ब्राहमणों की अपेक्षा ब्राहमणों की विधवाओं की संख्या ज्यादा हो गई। इस हार से परशुराम इतना पागल हो गए थे कि निराधार गर्भवती विधवा औरतों को खोज-खोज कर मारने की मुहिम शुरू कर दी। हिरण्याक्ष से बलि राजा के पुत्र को निर्वंश करने तक उस कुल के सभी लोगों को तहस-नहस कर दिया। उधर क्षेत्रपतियों के दिमाग में यह बात जमा दी गयी कि ब्राहमण लोग जादू विद्या में माहिर हैं। वे लोग ब्राहमणों के मंत्रों से डरने लगे। उस समय वहाँ के क्षेत्रपति के रामचंद्र नामक पुत्र ने परशुराम के धनुष को जनक राजा के घर में भरी सभा में तोड़ दिया तो उसके मन में प्रतिशोध की भावना भर गई। उसने रामचंद्र को अपने घर जानकी को ले जाते हुए देखा तो रास्ते में युद्ध छेड़ दिया। इस युद्ध में उसकी करारी हार हुई। इस युद्ध से वे इतना शर्मिंदा हो गए कि उसने अपने सारे राज्य को त्याग कर अपने परिवार और कुछ निजी संबंधियों को साथ लेकर कोंकण के निचले हिस्से में जाकर रहने लगे। वहाँ उन्हें अपने बुरे कर्मो का पश्चाताप हुआ। जिसका परिणाम इतना बुरा हुआ कि उसने अत्महत्या कर ली। ”

सीता को कई नामों से जाना जाता है जैसे वैदेही, जानकी, मैथिली और भूमिजा। सीता जनकपुर के राजा जनक और रानी सुनयना की दत्तक पुत्री है, भूमि देवी की वास्तविक पुत्री है। दण्डक वन से इनका अपहरण हो जाता है और अशोक वाटिका में रखा जाता है। जनकपुर नेपाल के दक्षिण बिहार के उत्तर पूर्वी मिथिला के जनकपुर और सीतामढ़ी, नेपाल की सीमा के पास, सीता का जन्म स्थान माना जाता है। वाल्मीकि रामायण में सीता को भूमि से उत्पन्न बताया जाता है, जबकि “रामायण मंजरी” में जनक और मेनका से उत्पत्ति, तो महाभारत रामोपाख्यान तथा विमल सूरी की ‘पउम चरियम’ में सीता को कुछ जनक की वास्तविक पुत्री, तो रामायण के कुछ संस्करणों में रावण के अत्याचारों से प्रताड़ित वेदवती का सीता के रूप में जन्म लेना तो उत्तर पुराण के गुणभद्र के अनुसार अलकापुरी के अमित वेदय की पुत्री मीनावती, रावण और मंदोदरी के गर्भ से जन्म लेकर रावण का अंत करने के लिए अवतरित, तथा अवधूत रामायण और संघदास के जैन संस्करण में सीता को रावण की पुत्री वसुदेव वाहिनी के रूप में माना जाता है जो कि रावण की पत्नी विद्याधर माया की पुत्री है। स्कन्द पुराण में वेदवती का जिक्र आता

है जो पदमावती बनती है और विष्णु के अवतार लेने पर वे उनसे शादी करते है। वेंकटेश्वर बालाजी के तिरुमलाई में उनका निवास है। रामायण के परवर्ती संस्करणों में वेदवती रावण की मृत्य के लिए जन्म लेने की कसम खाती है, क्योंकि रावण ने उसके साथ छेड़खानी की थी। अग्नि देवता उसे जला नहीं सकते, वह उसे छुपाकर सीता की जगह अपहरण के पूर्व रख देते हैं। इस तरह यह डुप्लीकेट सीता थी, जिसे रावण उठाकर लंका लाया। वास्तविक सीता वेदवती की अग्नि-परीक्षा के बाद राम के पास लौट जाती है। जम्मू में वेदवती को वैष्णो देवी के रूप में जाना जाता है। जिसने भैरव की गर्दन काट दी थी, जो उसे जबरदस्ती अपनी पत्नी बनाना चाहता था। बाद में भैरव के कटे सिर ने माफी मांगते हुए, यह कहा कि- वह उन परम्पराओं का अभ्यास कर रहा था। जिसके लिए एक स्त्री की आवश्यकता थी, जो उसे पुनर्जन्म के चक्रों से मुक्ति प्रदान कर सके। तब उसने कहा- "तुम मेरी पूजा करो, मैं तुम्हें मुक्त कर दूँगी" कहते हुए वह देवी में बदल गयी। अधिकांश देवियों के शक्ति पीठ स्थल पर रक्तबलि दी जाती है, जबकि वैष्णोदेवी एक अलग शक्ति पीठ है, क्योंकि वह शाकाहारी देवी है। जो वैष्णव संप्रदाय की पुष्टि करती है। क्या राम-लक्ष्मण-सीता जंगल में रहते समय माँस भक्षण करते थे? आज भी यह सवाल अनुत्तरित है। जबकि प्राचीन काल में मांसाहार को घृणित निगाहों से नहीं देखा जाता था। कई पेटिंग में राम और लक्ष्मण को जंगली जानवरों का आखेट करते हुए दिखाया गया है, कुछ-कुछ में तो मांस भूनते हुए भी। यह दृश्य क्षत्रिय परिवार के अनुरूप है। संस्कृत में मांस का अर्थ फूलों के मांस से लिया जाता है। बाद मै बौद्ध, जैन धर्म और वैष्णव संप्रदाय के विस्तार के साथ शाकाहारी को जातिप्रथा में उच्चता का प्रतीक माना जाने लगा। वाल्मीकि रामायण में जानवरों के आखेट से सीता अप्रसन्न रहती है।

इस तरह अलग-अलग कहानियों को अलग-अलग रूप देकर आज भी पढ़े-लिखे लोगों को भी सत्यता से दूर रखा जाता है। क्या साहित्य हमें वैचारिक गुलामी की ओर ले जाता है अथवा साहित्य सच्चा जीवन जीने के लिए प्रेरित करता है? यह बात सत्य है कि सीता ने अपने जीवन को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर सम्पूर्ण विश्व में यह बात अवश्य स्थापित की है कि भारतीय स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध अत्यंत ही घनिष्ठतम होता है।

कवि उद्भ्रांत की पंक्तियाँ :-

किसी व्याघ्र के तीर से अबिद्ध
चंचुपात करते हुए प्रणय में निरत क्रोंच -युगल के
नरपक्षी के वध को देखकर...
माता वाणी की प्रेरणा से जिनकी वाणी से
फूटा आदिश्लोक...
करुणा-कातर हो-

दस्यु जीवन को
क्षण में तिलांजलि देने वाले
आदिकवि
ऋषि वाल्मीकि ही वे
मेरे हो गए
एक और पिता

बचपन में जब सीता अपने साथियों के साथ बगीचे में खेल रही थी तो दो तोते किसी पेड़ पर बैठकर राम-कथा का गान कर रहे थे। सीता की यह बाल्य अवस्था थी। रामकथा का माधुर्य और सुनहरे भविष्य की कल्पना में सीता ने दोनों पक्षियों को पकड़कर अपने घर ले जाना चाहा, मगर उन्होंने मना कर दिया यह कहकर कि वे स्वतंत्र पक्षी है और गगन में उन्मुक्त होकर विचरण करना चाहते थे। मगर सीता अपने बालोचित हठ के कारण उन्हें छोड़ना नहीं चाहती थी। तोती के लिए अपने पति का वियोग असह्य हो गया और वह बोली "मुझ दुखिनी को गर्भवती अवस्था में अपने पति से अलग कर रही है, तो तुझे भी उसी अवस्था में अपने पति से अलग होना पड़ेगा। यह कहकर उसने प्राण त्याग दिए। " पत्नी के वियोग में तोते ने भी प्राण त्याग दिए। इसी बैर का बदला लेने के लिए वे दोनों अयोध्या में धोबी-धोबन के रूप में प्रकट हुए। इस प्रकार सीता के जीवन में विरह दुःख का बीज उस समय से पड़ गया था। इस तरह का भय दिखाकर रामकथा में एक नया अध्याय लिखा जाता है।

जबकि महात्मा ज्योतिष फूले अपनी "सार्वजनिक सत्यधर्म" पुस्तक में रामायण की बातों को काल्पनिक व अविश्वसनीय मानते हैं। धनुष यज्ञ में रावण की छाती पर पड़े हुए शिव / परशुराम के धनुष को कभी घोड़ा बनाकर खेलने वाली जानकी को भेड़िये की तरह आसानी से कंधे पर डालकर भागने में रावण कैसे सफल हो गया? दूसरी बात यह कि यदि रावण की मानव के अलावा अलग जाति थी, तो जनक राजा ने दूसरी जाति के रावण को अपनी लड़की के स्वयंवर समारोह में आने का निमंत्रण कैसे दिया? इससे यह सिद्ध होता है कि राम और रावण की जाति अलग-अलग नहीं थी। ऐसा लगता है कि रामायण का इतिहास उस समय केवल लोगों का दिल बहलाने के लिए कल्पना के आधार पर लिखा होगा।

कँवल भारती भी इस सर्ग में सीता के विद्रोह को देखते हैं कि राम ने सीता को सास-ससुर की सेवा करने से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है, कहकर उससे जंगल में जाने से रोकना चाहा। मगर सीता ने यह कहकर विद्रोह का बिगुल बजाया कि राम के बिना विरह के शोक में एक पल भी वह ज़िंदा नहीं रह सकती है। सत्यवान और सावित्री का दृष्टान्त देकर वन-गमन का औचित्य सिद्ध किया। उद्भ्रांत ने जिस सीता का चरित्र-चित्रण किया है, वह रावण की पुत्री जैसी है। मगर वाल्मीकि के अनुसार राजा जनक यज्ञ के लिए भूमि शोधन करते समय खेत में

हल चला रहे थे, उसी समय हल के अग्रभाग से जोती गयी भूमि से एक कन्या प्रकट हुई। जिसका हल द्वारा खोदी गई रेखा को सीता कहते है,इसलिए इस तरह उत्पन होने के कारण सीता नाम रखा गया। जबकि लोक विश्वास के आधार पर अंधविश्वास को जन्म देनेवाली कहानी का विस्तार किया गया है। यह बात अलग है कि राजा दशरथ ने कन्या का तिरस्कार किया था। मगर राजा जनक अवैध संतान के रूप में सीता को पाकर खुश हुए थे। यही नहीं, उसे पढ़ाने, लिखाने, शस्त्र संचालन सभी की शिक्षा में दक्ष भी किया था। संतानहीन होकर भी राजा जनक ने पुत्रेष्टि यज्ञ नहीं करवाया और न ही अपनी पुत्री को किसी वृद्ध-ऋषि को समर्पित किया। वरन् धूमधाम से स्वयंवर करके उसका विवाह किया। 'त्रेता' की सीता रावण की प्रशंसा करती है कि उसने कभी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया, अपहरण के समय में भी नहीं। स्वयंवर में रावण की उपस्थिति से सीता विचलित हो जाती है। अगर स्वयंवर के बारे में सोचा जाए तो यह एक वाहियात और स्त्री विरोधी परंपरा थी। क्योंकि उसमें योग्य-अयोग्य, युवा-वृद्ध कोई भी आदमी भाग ले सकता है। अगर रावण शिव-धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा लेता तो नियमानुसार उसकी शादी रावण से हो जाती। रावण एक राजा था तो फिर वह भिक्षा कैसे मांगता! रावण तो राक्षस संस्कृति का प्रवर्तक था, आर्य संस्कृति का घोर विरोधी था। कँवल भारती के अनुसार उद्भ्रांत ने रावण को ब्राह्मण इसीलिए माना कि वह सीता को उसकी पुत्री बनाना चाहते थे। अपने इतिहास पर परदा डालने के लिए कुछ ब्राह्मण लेखकों ने रावण को ब्राह्मण बना दिया, पर यह विचार नहीं किया कि ब्राह्मण की हत्या पर प्रतिबंध था। यह प्रतिबंध तो 1817 में ईस्ट इंडिया कंपनी ने समाप्त किया। राम ने रावण को मारकर ब्रह्म हत्या को प्राप्त किया।

कवि उद्भ्रांत ने इन मिथकों को वैज्ञानिक रूप देने के लिए स्वर्ण के रंगवाले हिरण, स्वर्ण आभूषण का मोह, सोने की लंका, आदि से जोड़कर विपत्तियों के आवाहन का कारण नारी के लोभ को ठहराया है। सीता के चरित्र-चित्रण में स्त्री विमर्श की भरपूर गुंजाइश थी। राजमहलों के भीतर कैद रहनेवाली महिलाओं की मर्यादाओ पर आधुनिक चिंतन भी अपरिहार्य है। सीता को लंका पुरी में चौदह माह तक निर्वासित जीवन जीना पड़ा। रावण वध के बाद जब सीता राम से मिलने आयी तो उसका खिला हुआ चेहरा देखकर राम ने कहा- "मैंने तुम्हें प्राप्त करने के लिए यह युद्ध नहीं जीता है। तुम पर मुझे संदेह है। जैसे आँख के रोगी को दीपक की ज्योति अच्छी नहीं लगती, वैसे ही तुम मुझे आज अप्रिय लग रही हो। तुम स्वतंत्र हो, यह दस दिशाएँ तुम्हारे लिए खुली है। मैं अनुमति देता हूँ,तुम्हारी जहाँ इच्छा हो, चली जाओ। रावण तुम पर अपनी दूषित दृष्टि डाल चुका है। ऐसी अवस्था में, मैं तुमको ग्रहण नहीं कर सकता। तुम चाहो तो लक्ष्मण, भरत या शत्रुघ्न किसी के भी साथ रह सकती हो और चाहे तो सुग्रीव या विभीषण के साथ भी रह सकती हो। " (वाल्मीकि रामायण युद्धखण्ड)

राम के ऐसे कठोर शब्द सुनने के बाद सीता के दिलो-दिमाग पर क्या गुजरी होगी, इसका उद्भ्रांत जी ने लेशमात्र भी उल्लेख नहीं किया है। इन कठोर शब्द-बाणों ने सीता का हृदय छलनी कर दिया था और उसके भीतर एक विद्रोहिणी नारी ने जन्म ले लिया था। इस विद्रोहिणी नारी को आदि कवि वाल्मीकि ने उभारा है, क्योंकि राम के व्यवहार से वह भी उद्वलित हो गए थे। राम का गुण-गान करने वाले वाल्मीकि भी तब सीता के पक्ष में खड़े हो गए थे और सीता पूरे प्रतिशोध के साथ राम पर बरस पड़ी। उसने सबके सामने ही राम से कहा -

कि मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्र दारुणम।
रुक्ष श्रवयरो वीर प्राकृतः प्रकटमिव॥

आप ऐसी कठोर, अनुचित, कर्णकटु और रूखी बात मुझे क्यों सुना रहे हैं। जैसे बाजारू आदमी किसी बाजारू स्त्री से बोलता है, वैसे ही व्यवहार आप मेरे प्रति कर रहे हैं। जब आपने लंका में मुझे देखने के लिए हनुमान को भेजा था, उसी समय मुझे क्यों नहीं त्याग दिया? यदि आप मुझे उसी समय त्याग देते, तो मैंने भी हनुमान के सामने ही अपने प्राण त्याग दिए होते। तब आपको जीवन को संकट में डालकर यह युद्ध आदि का व्यर्थ परिश्रम नहीं करना पड़ता और न आपके मित्र लोग अकारण कष्ट उठाते। आपने मेरे शील-स्वभाव पर संदेह करके अपने ओछेपन का परिचय दिया है। इसके बाद सीता ने लक्ष्मण से कहकर चिता तैयार करवायी और वह यह कहकर कि "यदि मैं सर्वथा निष्कलंक हूँ, तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें", अग्नि-चिता में कूद पड़ी। वाल्मीकि ने लिखा है कि अग्नि ने सीता को रोममात्र भी स्पर्श नहीं किया। किन्तु वास्तव में हुआ यह होगा कि सीता को अग्नि में कूदने से पहले ही बचा लिया गया होगा, वरन् आग की लपटें किसी को नहीं छोड़ती। जनता के सामने राम की शंका समाप्त हो गई थी और उन्होंने उसे अंगीकार कर लिया था। अधिकांश लेखकों द्वारा सीता के जीवन को वन में त्रासदी (tragedy) के तौर पर व्यक्त किया जाता है। वे जंगल में जीवन को गरीबी के साथ जोड़कर देखते हैं, न कि बुद्धि के तौर पर। साधु के पास कुछ नहीं होने पर भी कभी भी गरीब नहीं होता। वे लोग भूल जाते है कि भारत में धन-संपदा केवल कार्यकारी तौर पर मानी जाती है न की स्व-निर्माण के सूचक के तौर पर। सीता भी महाभारत की कुंती, उपनिषदों की जाबाला और भरत की माँ शकुंतला की तरह एकल माता है। महाभारत में अष्टावक्र की कहानी में वह अपने दादा, उद्दालक को अपना पिता मानता है। जब तक कि उसका चाचा श्वेतकेतु संशोधन नहीं कर लेता। यह ठीक इसी तरह है जिस तरह वाल्मीकि के राम के पुत्रों लव-कुश को समझा नहीं देते। केरल के वायनाड़ (wayanad)में सीता का उसके दोनों पुत्रों के साथ मंदिर बना है। केरल की

रामायण में कई मोड़ ऐसे हैं जो वाल्मीकि रामायण में नहीं मिलते, वायनाड़ के स्थानीय लोगों का मानना है कि रामायण की घटनाएँ उनके इर्द-गिर्द हुईं।

फादर कामिल बुल्के की पुस्तक 'रामकथा' के अनुसार सीता के जन्म को लेकर तरह-तरह की कहानियाँ कही जाती हैं। इण्डोनेशिया, श्रीलंका तथा भारत के आसपास के क्षेत्रों में सीता के पिता के रूप में कभी राजा जनक, तो कभी रावण और यहाँ तक कि दशरथ को भी दर्शाया गया है।

1. जनक आत्मजा- वाल्मीकि द्वारा रचित आदि रामायण में राम के क्रिया-कलापों की तारीफ में सीता को जनक की पुत्री बताया गया है। महाभारत में चार बार रामकथा की आवृति होती है। मगर कहीं पर भी सीता के रहस्यमय जन्म की कहानी का वर्णन नहीं है। यहाँ तक कि रामोपाख्यान में भी नहीं, सब जगह उसे जनक आत्मजा ही कहा है। रामोपाख्यान की शुरुआत में विदेहराजो जनकः सीता तस्य आत्मणाविभो।

हरिवंश की रामकथा में भी सीता की अलौकिक उत्पत्ति का उल्लेख नहीं मिलता।

जैन पउमचरियं के अनुसार जनक की पत्नी विदेहा से सीता अपने धवल आभामण्डल के साथ उत्पन्न हुई थी। जन्म होते ही आभामण्डल को एक देवता ने उसे उठा लिया था और किसी अन्य राजा के यहाँ छोड़ दिया। वाल्मीकि रामायण में जनक का कोई पुत्र नहीं है, किन्तु ब्रह्माण्ड पुराण, विष्णु पुराण, वायु पुराण में 'अनुमान' जनक का पुत्र कहा गया है। कालिका पुराण में ऐसा उल्लेख है कि नारद निसंतान जनक को यज्ञ कराने का परामर्श देते हुए कहते है, कि यज्ञ के प्रभाव से दशरथ को चार पुत्र उत्पन्न हुए हैं। तदनुसार जनक यज्ञ के लिए क्षेत्र तैयार करते समय एक पुत्री के अतिरिक्त दो पुत्रों को भी प्राप्त करते हैं।

2. भूमिजा- सीता की अलौकिक उत्पत्ति का वर्णन वाल्मीकि रामायण में दो बार कुछ विस्तारपूर्वक किया गया है; कतिपय अन्य स्थलों पर भी इनके संकेत मिलते हैं। एक दिन जबकि राजा जनक यज्ञ-भूमि तैयार करने के लिए हल चला रहे थे, एक छोटी-सी कन्या मिट्टी से निकली। उन्होंने उसे पुत्री-स्वरूप ग्रहण किया तथा नाम सीता रखा। सीता जन्म का यह वृतान्त अधिकांश रामकथाओं में मिलता है।

संभव है कि भूमिजा सीता की अलौकिक जन्म-कथा सीता नामक कृषि की अधिष्ठात्री देवी के प्रभाव से उत्पन्न हुई हो। कृषि की उस देवी से सम्बन्ध रखने वाली सामाग्री का वर्णन किया गया है। मैं यह नहीं कहता कि यह वैदिक देवी और रामायणीय सीता अभिन्न है। वैदिक सीता ऐतिहासिक न होकर सीता अर्थात् लांगल-पद्धति के मानवीकरण का परिणाम है।

बलरामदास (अरण्यकाण्ड) लिखते हैं कि हल जोतते समय जनक ने मेनका को देखकर उसी के समान एक कन्या प्राप्त करने कि इच्छा प्रकट की थी। मेनका ने उनकी यह इच्छा जानकार उसको आश्वासन दिया कि मुझसे भी सुंदर कन्या तुझको प्राप्त होगी।

वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में जो वेदवती की कथा मिलती है, वह भी उस समय उत्पन्न हुई होगी। इस वृतान्त में सीता के पूर्व जन्म का वर्णन किया गया है, अतः उसकी उत्पत्ति के समय सीता के लक्ष्मी के अवतार होने का सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं था, कथा इस प्रकार है:-

ऋषि कुशध्वज की पुत्री वेदवती नारायण को पति-रूप में प्राप्त करने के उद्देश्य से हिमालय में तप करती है। उसके पिता की भी ऐसी अभिलाषा थी। किसी राजा को अपनी पुत्री प्रदान करने से इंकार करने पर कुशध्वज का उस राजा द्वारा वध किया गया था। किसी दिन रावण की दृष्टि उस कन्या पर पड़ती है। उसके रूप-लावण्य से विमोहित होकर वह उसे उसके केशों से पकड़ता है। अपना हाथ असि के रूप में बदलकर वेदवती उससे अपने केशों को काटकर अपने को विमुक्त करती है। अनन्तर वह रावण को शाप देकर भविष्यवाणी करती है, कि मैं तुम्हारे नाश के लिए अयोनिजा के रूप में पुनः जन्मग्रहण करूंगी। अन्त में, वह अग्नि में प्रवेश करती है और बाद में जनक की यज्ञभूमि में उत्पन्न होती है।

श्रीमद् भागवतपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण में इस कथा में परिमार्जन किया गया है। कुशध्वज और उसकी पत्नी मलवाती लक्ष्मी की उपासना करते हैं और उनसे उनको पुत्री स्वरूप में प्राप्त करने का वर पाते हैं। जन्म ग्रहण करते ही लक्ष्मी वैदिक मंत्रो का गान करती है; इस कारण उन्हें वेदवती का नाम दिया जाता है। कुछ समय के उपरान्त वह हरि को पति रूप में वरण करने के लिए तप करने लगती है तथा रावण द्वारा अपमानित हो जाने पर वह उसे शाप देती है कि मैं तेरे विनाश का कारण बन जाऊँगी। अनन्तर वह योग के बलपर अपनी शरीर त्याग देती है और बाद में सीता के रूप में उत्पन्न होती है। यह स्पष्ट है कि सीता तथा लक्ष्मी के अपमानित होने के विश्वास की प्रेरणा से वेदवती की कथा को नवीन रूप दिया है।

3. <u>रावणात्मजा</u> - सीता-जन्म की कथाओं में, जिनका हमें यहाँ विश्लेषण करना है, सर्वाधिक प्राचीन तथा प्रचलित कथा वह है जिसमें सीता को रावण की पुत्री माना गया है। भारत, तिब्बत, खोतान (पूर्वी तुर्किस्तान), हिन्देशिया और श्याम में हमें यह कथा मिलती है। भारतवर्ष में इस कथा का प्राचीनतम रूप वसुदेवहिण्डि में सुरक्षित है। इसके अनुसार विद्याधर मय ने रावण के पास जाकर उसके साथ अपनी पुत्री मन्दोदरी के विवाह का प्रस्ताव रखा। शरीर के लक्षणों का ज्ञान रखने वालों ने कहा कि मन्दोदरी की पहली संतान अपने कुल के नाश का कारण बनने वाली है, रावण मन्दोदरी का सौन्दर्य देखकर मोहित हो चुका था, अतः उसने उसकी पहली

संतान का त्याग देने का निर्णय कर उसके साथ विवाह किया। बाद में मन्दोदरी ने एक पुत्री को जन्म दिया था। उसे रत्नों के साथ एक मंजूषा में रखकर मंत्री को आदेश दिया कि उसे कहीं छोड़ दिया जाए। मंत्री ने उसे जनक के खेत में रख दिया। बाद में जनक से कहा गया कि यह बालिका हल की रेखा से उत्पन्न हुई है। जनक ने उसे ग्रहण किया। महारानी धरिणी को सौंप दिया। गुणभद्र के उत्तरपुराण की निम्नलिखित कथा में वेदवती वृतांत तथा वसुदेवहिणिड की कथा का समन्वय किया गया है--

"अलकापुरी के राजा अमितवेग कि पुत्री राजकुमारी मणिमती विजयार्थ (विन्ध्य) पर्वत पर तप करती थी। रावण ने उसे प्राप्त करने का प्रयास किया। सिद्धि में विघ्न उत्पन्न होने के कारण मणिमती ने क्रुद्ध होकर निदान किया कि मैं रावण कि पुत्री बनकर उसके नाश का कारण बन जाऊँगी। उस निदान के फलस्वरूप वह मन्दोदरी के गर्भ से उत्पन्न हुई। उसका जन्म होते ही लंका में भूकंप आदि अनेक अपशकुन होने लगे। यह देखकर ज्योतिषियों ने कहा कि यह कन्या रावण के नाश का कारण होगी। इस पर रावण ने मारीच को यह आदेश दिया कि वह उसे किसी दूर देश में छोड़ दे। मन्दोदरी ने कन्या को द्रव्य तथा परिचयात्मक पत्र के साथ-साथ एक मंजूषा में रख दिया। मारीच ने उसे मिथिला देश कि भूमि में गाड़ दिया, जहाँ वह उसी दिन कृषकों द्वारा पाई गई। कृषक उसे जनक के पास ले गए। मंजूषा को खोलकर जनक ने उसमें से कन्या को निकाल लिया तथा उसका पुत्रीवत पालने का आदेश देकर अपनी पत्नी वसुधा को सौंप दिया। "महाभागवत पुराण" में भी इसका उल्लेख है कि सीता मन्दोदरी से उत्पन्न हुई है।

सीता मंदोदरीगर्भे संसुता चारूरुपिणी।
क्षेत्रजा तनयाप्यस्य रावणस्य रघुत्तम॥

गुणभद्र के उत्तरपुराण के अनुसार रावण की पटरानी की कन्या की जन्म पत्रिका में उसके द्वारा पिता का नाश होने की भविष्यवाणी के कारण वह समुद्र में फेंकी जाती है और बचाने पर कृषकों द्वारा पाली जाती है। इसका नाम लीलावती है।

4. <u>पदमजा सीता</u> - रामायण की भूमिजा सीता की कथा इसमें स्वीकृत है। सीता और लक्ष्मी का अभेद है। लक्ष्मी के अनेक नामों में एक नाम पदमा है और नामों ने सम्भवतः पदमजा सीता की आधारभूमि तैयार की है।

रावण एक विशिष्ट स्थान पर बार-बार जाता है। वह आरम्भ में वहाँ एक पर्वत देखता है, तपश्चात नगर देखता है,फिर जंगल देखता है, उसके बाद एक विस्तृत गड्ढा और अंत में कमलयुक्त एक सुंदर सरोवर। वहाँ एक लिंग स्थापित कर रावण सरोवर के कमलों से शिव उपासना करता है। एक कनक-पदम पर उसे एक कन्या दृष्टिगत होती है,जो लक्ष्मी की है। वह उसे पुत्री के रूप में ग्रहण कर लंका ले आता है और मन्दोदरी को दे देता है। नारद एक दिन

मन्दोदरी के यहाँ पहुँचते है और उसकी गोद में उस कन्या को देखकर कहते है कि यह कन्या बाद में रावण की प्रेमपात्री बनेगी (कन्या भविष्यति अभिलाषभूमि चपलेद्रस्य)। यह सुनकर मन्दोदरी उस कन्या को स्वर्ण पेटिका में बंद करके किसी दूर देश में छोड़ आने का आदेश देती है। यज्ञ के लिए स्वर्ण हल चलाते हुए जनक उसे प्राप्त करते हैं।

5. <u>रक्तजा सीता</u> - सीता जन्म की अनेक अर्वाचीन कथाओं में सीता ऋषियों के रक्त से उत्पन्न मानी जाती है।

रावण दिग्विजय करते-करते दण्डकारण्यवासी ऋषियों से राजकर लेते हैं। द्रव्य के अभाव में वे रावण को रक्त की कुछ बूंदे प्रदान करते हैं, जिन्हें ऋषि गृत्समद के पात्र में एकत्र किया जाता है। उस पात्र में कुश का किंचित रस था, जिसमें गृत्समद के मंत्रो के फलस्वरूप लक्ष्मी विद्यमान थी। रावण उस पात्र को लंका ले जाता है और मन्दोदरी को उसे यह कहकर देता है:- "इसमें तीव्र विष भरा है" कुछ समय बाद रावण दूसरी विजय-यात्रा के लिए चला जाता है। यह सुनकर कि रावण परस्त्रियों के साथ रमण करता है, मन्दोदरी आत्महत्या के उद्देश्य से उस रक्त का पान कर लेती है और गर्भवती हो जाती है। इस पर वह तीर्थयात्रा के लिए निकलती है। और गर्भ प्रसव करके कुरुक्षेत्र में भ्रूण गाड़ देती है। बाद में जनक के यज्ञ के लिए वहाँ हल जोतते समय एक कन्या भूमि से निकलती है। जनक उसे पुत्रीवत ग्रहण कर उसका नाम सीता रखते है।

उत्तर भारत की एक अन्य कथा इस प्रकार है:- जनक ने महादेव के धनुष के प्रभाव से रावण को कई बार पराजित किया था। अद्भुत रामायण के वृतांत के अनुसार रावण राजस्व के स्थान पर ऋषियों का रक्त लेता है। इस पर ऋषि शाप देते है, कि इस रक्त से तुम्हारा नाश होगा। रावण उस शाप की अवज्ञा करता है और उस रक्त को एक घड़े में रखकर उसे लंका ले जाता है। उस समय से लंका राज्य में अनावृष्टि आदि अनिष्ट घटित होते हैं, शास्त्री रावण से कहते है कि जब तक यह रक्त लंका में विद्यमान है विपत्तियों का अंत नहीं होगा। यह सुनकर रावण जनक से प्रतिकार लेने के उद्देश्य से उस घड़े को मिथिला में गड़वाते हैं। अब वहाँ भी वे ही अनिष्ट घटित होने लगते हैं। मंत्री राजा को रानी के साथ जाकर हल जोतने का परामर्श देते है। ऐसा करते हुए जनक उस घड़े को प्राप्त करते हैं, जिसमे ऋषिरक्त से उत्पन्न सीता दिखलाई पड़ती है। इसके बाद सर्व अनर्थ शांत हो जाते है। अन्यत्र भी उसका उल्लेख किया गया है कि मिथिला में रक्त गड़ा था, कन्या नहीं।

6. <u>अग्निजा सीता</u> - लंका के साथ सीता के सम्बन्ध का अंतिम रूप आनन्द रामायण में उपलब्ध है। सीता-जन्म का यह वृत्तान्त वेदवती की कथा पर आधारित प्रतीत होता है। कठोर तपस्या के उपरान्त राजा पदमाक्ष ने लक्ष्मी को पुत्रीरूप में प्राप्त किया था और उसका नाम

पद्मा रखा था। पद्मा के स्वयंवर के अवसर पर युद्ध हुआ और उसका पिता पदमाक्ष मारा गया। यह देखकर पद्मा ने अग्नि में प्रवेश किया, एक दिन वह अग्निकुंड से निकालकर रावण द्वारा देखी जाती है। जिस पर वह शीघ्र ही अग्नि में प्रवेश करती है। किन्तु रावण अग्नि को बुझा देता है और उसकी राख में पाँच दिव्यरत्न देख कर उन्हें एक पेटिका में रख देता है और लंका ले जाता है। लंका में कोई भी उस पेटिका को उठा नहीं सकता, उसे खोला जाता है और उसमें से एक कन्या मिलती है। मंदोदरी के परामर्श से यह पेटिका मिथिला में गाड़ दी जाती है। बाद में उसे एक शुद्र पाता है और खोलकर तथा उसमें एक कन्या देखकर राजा को सौंपता है। जनक उसे पुत्री रूप में स्वीकार करते है।

7. <u>फल अथवा वृक्ष से उत्पन्न</u> - दक्षिण भारत के एक वृतांत के अनुसार लक्ष्मी एक फल से उत्पन्न होती है और वेदमुनि नामक एक ऋषि द्वारा उनका पालन पोषण होता है उनका नाम सीता है और बाद में वह समुद्र तट पर तपस्या करने जाती है। उनके सौंदर्य के विषय में सुनकर रावण उसके पास पहुँचता है, जिस पर वह अग्नि में प्रवेश कर भस्मीभूत हो जाती है। राख को एकत्र कर वदमुनि उसे एक स्वर्णयष्टि में बंद कर देता है। बाद में यह यष्टि रावण के पास पहुँच जाती है, जो उसे अपने कोषागार में रख देता है। कुछ समय के उपरान्त उस यष्टि से आवाज सुनाई पड़ती है। उसे खोला जाता है और उसमें एक लघु कन्या के रूप में परिणत सीता दिखाई पड़ती है। ज्योतिषी कहते हैं कि यह कन्या सिंहल के नाश का कारण सिद्ध होगी: इस कारण रावण उसे एक स्वर्ण मंजूषा में बन्द करके समुद्र में फेंक देता है। यह मंजूषा लहरों पर तैरती हुई बंगाल की ओर बह जाती है और गंगा में प्रविष्ट होकर एक खेत तक पहुँच जाती है। वहाँ कृषक उसे देखते हैं और अपने राजा को दे देते हैं।

8. <u>दशरथात्मजा</u> - दशरथ की पटरानी मन्दोदरी के सौंदर्य का वर्णन सुनकर रावण दशरथ के पास जाता है और मंदोदरी की याचना करता है। मन्दोदरी यह सुनकर कि उसका पति उसे दे देने को उद्यत-सा हो रहा है, अपने भवन में जाती है और जादू के द्वारा एक दूसरी मन्दोदरी उत्पन्न करती है, जिसे रावण ले जाता है। बाद में वास्तविक मन्दोदरी से सच वृतांत सुनकर दशरथ घबराते हैं। यह नई मन्दोदरी अक्षतयोनि है जिससे रावण को धोखा होने का पता चलेगा। अनन्तर दशरथ लंका जाते है और छिपकर उस नवीन मन्दोदरी से मिलते हैं। बाद में रावण-मन्दोदरी का विवाह मनाया जाता है और मन्दोदरी के एक पुत्री उत्पन्न होती है। उसकी जन्म कुंडली से पता चलता है कि उसका पति रावण-हंता सिद्ध होगा। अतः उसे पेटिका में बंद करके समुद्र में फेंका जाता है। महर्षि कली उसे पाते हैं और उसका पालन-पोषण करते हैं।

अग्नि परीक्षा के बाद सीता ने राम जैसे अविश्वासी पुरुष को त्याग क्यों नहीं दिया। शायद रचनाकार अपने कथानक में और मानविक पुट देना चाह रहा था। तभी तो सीता के गर्भ में पल रहे बच्चे की चिंता के लिए उसने जीवन के शेष दिन वाल्मीकि के आश्रम में बिताए। यह

तो माँ की ममता ही थी कि इतना कष्ट सीता ने सहन किया। कँवल भारती के अनुसार हजारों साल की यात्रा के बाद भी हिन्दू जनता राम के अपराध में कोई प्रतिरोध नहीं देखती, राम को अपराधी नहीं मानती, दुःख तो इस बात का है कि स्त्री विमर्श से जुड़ी अनेक हिन्दू स्त्रियाँ सीता की पीड़ा से जुड़ न सकी। वे अभी भी स्त्री-विरोधी चौपाइयों का श्रद्धा से पाठ करती हैं और गद-गद होती हैं। कारण एक ही था अवतारवाद और कर्म-फल के सिद्धान्त की मान्यता ने जनता में यह विश्वास पैदा कर दिया कि राम मनुष्य नहीं हैं, वह विष्णु के अवतार हैं। जो कुछ कर रहे हैं या उनके साथ घट रहा है, वह सब उनकी लीला मात्र है। सीता एक विद्रोहिनी स्त्री थी। वह "असूर्यम्पश्या" की तरह नहीं रहकर अपने पति के साथ जाना, क्या विद्रोह नहीं था। सीता ही वह पहली स्त्री थी जिसने राम के द्वारा राक्षसों के वध किए जाने का घोर विरोध किया। वाल्मीकि रामायण के अनुसार उसने कहा था- यह आप अच्छा काम नहीं कर रहे हैं। मुझे चिंता हो रही है कि इतनी हिंसा के बाद आपका कल्याण कैसे होगा? आप इन लोगों की क्यों हत्याएँ कर रहे है? इन्होंने आपका क्या बिगाड़ा है? बिना अपराध के ही लोगों को मारना संसार के लोग अच्छा नहीं समझते हैं। यह अधर्म है। शस्त्र का उपयोग करने से आपकी बुद्धि कलुषित हो गयी है। जब आप वल्कल वस्त्र धारण कर वन में आ गए है; तो मुनिवृत्ति से ही क्यों नहीं रहते? हम अयोध्या में नहीं है, तपोवन में ही हैं। यहाँ के अहिंसामय धर्म का पालन करना ही हमारा कर्तव्य होना चाहिए।

राम ने सीता को उत्तर दिया था," मैं अपने प्राण छोड़ सकता हूँ, तुम्हारा और लक्ष्मण का भी त्याग कर सकता हूँ, किन्तु ब्राहमणों के लिए की गयी अपनी प्रतिज्ञा को कदापि नहीं छोड़ सकता। "

सवाल यह नहीं है कि राम ने क्या उत्तर दिया वरन् सवाल यह है कि जिस सीता ने मनु-व्यवस्था को तोड़कर राम को धर्म का उपदेश दिया हो, उसके उस विद्रोह को कवि उद्भ्रांत ने रेखांकित क्यों नहीं किया?

डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित के अनुसार त्रेता की सीता अपराध बोध से पीड़ित है। वह अपने आपको स्वर्णमृग की घटना के बहाने माया, मोह, लोभ से ग्रस्त स्वीकार करती है और श्री राम से अपने बिछोह के चौदह महीनों को उसके परिणाम स्वरूप 'महादण्ड' मानती है। यह उसका कर्मफल था। अपराध बोध के कारण ही वह इन त्रिदोषों की वार्ता को दीर्घ व्यवहार के रूप में अग्नि-परीक्षा की घड़ी तक खींच ले जाती है। शायद रामकथा-काव्य की परंपरा में अपराध-बोध-ग्रस्त सीता का चित्रण पहला ही है।

पहला है तो है, किन्तु तनिक ठहर कर सोचें कि न्यायालय में खड़ी हुई किसी अपहृता की यह आत्मस्वीकृति और अपहरणकर्ता के मर्यादायुक्त व्यवहार को सूचित करने वाला यह और

इसी प्रकार के दूसरे बयान क्या अभियुक्त को दोषमुक्त कर दिए जाने के पक्ष में नहीं जाते? क्या इन सब बयानों और आगे मन्दोदरी के कथनों के बाद भी उसके अपने पक्ष में कहने की आवश्यकता रह जाती है? यदि नहीं तो रावण के दोषमुक्त हो जाने के बाद रामावतार और रावण-बोध की सार्थकता क्या रहेगी? सीता द्वारा रावण को पितृवत आदृत किए जाने की बात जान (पढ़) लेने के बाद पाठक की क्या गति होगी? क्या उसके लिए रावण-वाद की कथावाला शेषांश अपरिहार्य और विश्वसनीय बना रहेगा; आस्वाद्द्य होगा? क्या पाठक पूछ सकता है कि जब सीता, रावण के मर्यादापूर्ण आचरण के प्रति इतनी आश्वस्त थी, तब उन्होंने अशोकवाटिका में हनुमान को इसका संकेत क्यों नहीं दिया। यदि दिया होता तो युद्ध रुक जाता? अनर्थ घटित होने से बच जाता। रावण के हठ और छद्मपूर्ण आचरण के कारण मान लें तो युद्ध अनिवार्यतः होना ही था; तो भी क्या अग्निपरीक्षा के पश्चात अयोध्या लौटने पर सीता ने जब कभी प्रसन्न भाव से राम को रावण के मर्यादित व्यवहार के बारे में बताया होगा, तब श्रीराम को अपने किए पर पछतावा नहीं हुआ होगा? इस प्रकार के प्रश्न पाठक को विकल कर सकते हैं। इससे कथा-नियोजन में व्याघात पहुँचता प्रतीत होता है। देखें, कदाचित मन्दोदरी या शूर्पणखा के वक्तव्य से इस समस्या का कोई समाधान मिल जाय।

भरत आनंद कौसल्यायन ने तुलसीदास की सीता के बारे में उसे कन्यादान कहना तथा राजा जनक द्वारा दहेज देने की प्रथा का उल्लेख कर भारतीय संस्कृति की विकृति की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। सीता का कन्यादान दान नहीं था। वह तो स्वयंवर था। जहाँ स्वयं वरण हो वहाँ दान कैसा? इसी तरह आज भी दहेज प्रथा न जाने कितनी लड़कियों के माता-पिता के जीवन का अभिशाप बनी हुई है। क्या यह हो सकता है? रामचरित्र की कथा जगह-जगह पर सुनाई जाए, मगर इस देश से दहेज-प्रथा समाप्त हो जाए। बालकाण्ड के श्लोक में यह बात आसानी से देखी जा सकती है--

- *सुखमूल दुलहू देही दंपति पुलक तनु हुलस्यों हियो,*
  करि लोक वेद विधानु कन्यादानु नृपभूषन कियो। - मानस बालकांड
- *दाइज अमित न सकिय कहि दीन्ह बिदेहँ बहोरि।*
  जो अवलोकत लोकपति लोक संपदा थोरि॥३३३॥ - मानस बालकांड

तुलसीदास जी की सीता राम की सहयोगिनी नहीं, सह-धर्मिणी नहीं, वरन एकदम किंकरी है, तो क्या आश्चर्य है कि आज की इस विकृत संस्कृति में स्त्री को पाँव तले की जूती कहा जाए या समझा जाए।

"तुलसीस सीलु सनेहु लखि निज किंकरी करि मानिबी॥"

इस तरह राम के विवाह के बाद राजतिलक के मंगल कार्य में किसी ने बाधा डाली तो वह स्त्री थी, राम वनवास का कारण भी स्त्री बनी। इसी तरह राजा दशरथ के मृत्यु का कारण भी स्त्री बनी।

अग्निपरीक्षा - राम-रावण युद्ध हो चुका है, सीता लौट आई है। यह तो ज्ञात ही नहीं था कि वास्तविक सीता का कभी हरण ही नहीं हुआ। वास्तविक सीता तो अग्नि में सुरक्षित रही। रावण तो केवल उनके प्रतिबिंब को उन जैसी बनावटी मूर्ति को ले गया था। तब भी लोकापवाद के लिए स्थान था ही। रामचन्द्र ने सीता को अथवा उनके प्रतिबिंब को सार्वजनिक तौर पर अपनी शुद्धि प्रमाणित करने के लिए कहा। प्रतिबिंब के अग्नि-प्रवेश द्वारा और आग में से वास्तविक सीता के सकुशल बाहर आने से सीता की शुद्धि प्रमाणित हुई।

प्रचलित वाल्मीकि रामायण में अग्नि परीक्षा के संदर्भ में जो कथा दी गयी है, उसी कथा को कँवल भारती ने अपनी पुस्तक 'त्रेता-विमर्श और दलित चिंतन' में प्रकट किया है कि जब राम ने सीता के चरित्र पर संदेह प्रकट किया कि जब वह दूसरे घर में रही है तो कोई आकर्षण नहीं रहा। वह जहाँ चाहे चली जा सकती है, राम के यह कठोर वचन सुनकर सीता के अपने सतीत्व की शपथ खाते हुये लक्ष्मण द्वारा तैयार की गयी चिता में प्रवेश करने का प्रसंग है। अंत में अग्नि देवता आग में से निकालकर सीता के सतीत्व का साक्ष्य देते हुए उसे ग्रहण करने का अनुरोध करते हैं। तब राम कहते है कि मुझे सीता के चरित्र पर संदेह नहीं था। अगर मैं अग्नि परीक्षा नहीं लेता तो लोग मुझे कामात्मा होने का आक्षेप लगाते।

शायद सीता के अग्नि परीक्षा का यह वर्णन बाद में जोड़ा गया है। इसीलिए महाभारत समेत प्राचीन पुराणों में भी उदाहरणार्थ - हरिवंश, विष्णुपुरण, वायुपुराण, भागवत पुराण, नृसिंह पुराण, अनामक जातकम, स्याम का रामजातक, खोतानी और तिब्बती रामायण, गुणभद्रकृत, उत्तर पुराण में अग्नि परीक्षा का निर्देश नहीं मिलता।

रामोपाख्यान में विभीषण और लक्ष्मण सीता को राम के पास ले जाते हैं।

पउमं चरीय में भी राम और सीता के पुनर्मिलन के समय देवताओं की पुष्पवृष्टि तथा सीता की निर्मलता के पक्ष में उनकी सक्षमता के अतिरिक्त किसी भी परीक्षा का उल्लेख नहीं मिलता। एक बात अवश्य लिखी गई है कि सीता त्याग और सीता के पुत्र द्वारा राम सेना से युद्ध के पश्चात राम अपने परिवार के साथ अयोध्या लौटे तो राम ने सीता को लोगों के सामने अपने सतीत्व का प्रमाण देने को बात कही तो सीता ने कहा- मैं तुला पर चढ़ सकती हूँ, आग में प्रवेश कर सकती हूँ, लोहे की तपी हुई लंबी छड़ धारण कर सकती हूँ अथवा मैं उग्र विष भी पी सकती हूँ। राम ने अग्नि परीक्षा को उचित समझा और 300 हाथ गहरा अग्निकुण्ड खोदने का आदेश दिया। अग्नि प्रज्वलित होने पर सीता ने सतीत्व की शपथ खाकर प्रवेश किया। सीता

के प्रवेश करते ही वह कुण्ड स्वच्छ जल से भर गया। उसके बाद जब राम ने उससे क्षमायाचना की और अयोध्या में निवास करने का अनुरोध किया तो सीता ने इंकार कर दिया और जैन धर्म में दीक्षा लेने के लिए चली गई।

कथा सरितसागर में राम द्वारा सीता की परीक्षा लेने का उल्लेख नहीं है। मगर वाल्मीकि आश्रम में अन्य ऋषि सीता के चरित्र पर संदेह करते हैं, तो सीता स्वयं कोई भी परीक्षा देने को तैयार हो जाती है। उसके लिए लोकपाल टीटिभा सरोवर बनाते है। जब सीता जल में प्रवेश करती है, तो पृथ्वी देवी प्रकट होकर उसे अपने गोद में ले लेती है और सरोवर के उस पार पहुँचा देती है। यह देखकर ऋषि राम को शाप देना चाहते हैं, मगर सीता ऐसा नहीं करने का अनुरोध करती है।

अन्य रचनाओं में अधिकांश मध्यकालीन रामायणों में माया सीता अग्नि में प्रवेश करती है और वास्तविक सीता उसमें से प्रकट हो जाती है। आनन्द रामायण के अनुसार सीता अपने हरण के पूर्व तीन रूपों में विभक्त हो गई थी, अग्नि परीक्षा में समय वह एक हो जाती है। कृतिवास रामायण में मन्दोदरी का शाप अग्निपरीक्षा का कारण माना गया। मन्दोदरी ने राम के दर्शनों की आशा में सीता को यह कहकर शाप दिया था कि तुम्हारा यह आनन्द अकस्मात निरानन्द हो जाएगा। लंका की स्त्रियों ने भी उस अवसर पर सीता को शाप दिया था।

रामायणमसिही में मन्दोदरी सीता को राम के पास ले जाती और राम स्वयं सीता को आग में डालते हैं।

ब्रहमचक्र के अनुसार सीता ने राम का संदेह देखकर आग जलाने का आदेश दिया और सीता के अग्नि में प्रवेश करते ही अग्नि बुझ गई। कश्मीरी रामायण में सीता को चौदह दिनों तक जलते हुए दिखाया है और बाद में वह सोने की तेजस्विता की तरह बाहर निकलती है। 'अद्‌भुत रामायण' और 'मलयन रामायण' में रावण द्वारा सीता की छाया सीता या माया सीता का अपहरण किया जाता है, न की वास्तविक सीता का। यह वास्तव में वेदवती होती है, और अग्नि परीक्षा का अर्थ वास्तविक सीता को वापस लाना है। ग्रीक माइथोलोजी में भी मूल नायिका की जगह डुप्लिकेट नायिका के अपहरण के कथानक मिलते हैं। हेरोडोटस(Herodotus) कहता है कि पेरिस (Paris)द्वारा हेलेन (Helen) का अपहरण कर ट्रॉय (Troy) ले जाया गया है, वह असली हेलेन नहीं है, बल्कि उसके जैसे दिखने वाली है और असली हेलेन मिश्र में है, जिसके लिए ग्रीक और ट्रोजन (Trojan)आपस में युद्ध करते हैं। इस तरह विश्व-संस्कृति में पुरुषों का सम्मान पाने के लिए स्त्री की पवित्रता, सतीत्व और फीडेलिटी(fidelity)जरूरी है। अग्नि परीक्षा को शुद्धिकरण की दृष्टि से भी देखा जाता है। महाभारत में द्रौपदी जब तक एक पति से दूसरे पति के पास जाती है तो आग के माध्यम से गुजरकर अपने आप को शुद्ध कर लेती है।

अनय दृष्टान्तों में सीता की निम्नलिखित परीक्षाओं का उल्लेख मिलता है-

विषैले साँपों से भर घड़े में हाथ डालना, मदमस्त हथियों के सामने फेंका जाना, सिंह और व्याघ्र के वन में त्याग किया जाना, अत्यन्त तप्त लोहे पर चलना।

सीता-त्याग - आदि रामायण, महाभारत और प्राचीन पुराणों में सीता त्याग का अभाव है। जबकि दूसरी रचनाओं में सीता त्याग के भिन्न करणों में लोक अपवाद, धोबी की कथा, रावण के चित्र, परोक्ष कारणों में भृगु, तारा, शुक का साथ, लक्ष्मण का अपमान, सुदर्शन मुनि की निंदा, वाल्मीकि को प्रदत्त वरदान आदि से दिया गया है। जबकि गीतावली, अध्यात्म रामायण, मधुराचार्य, आनन्द रामायण में अवास्तविक सीता के त्याग की बात कही गई है।

सीता-त्याग के भिन्न-भिन्न कारण- रामकथा के अधिकांश लेखकों ने प्रचलित वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड के अनुकरण पर सीतात्याग का वर्णन किया है। परित्याग के विभिन्न कारणों के अनुसार ये वृतांत तीन वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं।

- **लोकापवाद** - उत्तरकाण्ड की कथा इस प्रकार है। गर्भवती सीता किसी दिन राम के सामने तपोवन देखने की इच्छा प्रकट करती है। उनको अगले दिन भेज देने की प्रतिज्ञा करके राम अपने मित्रों के साथ बैठकर परिहास की कहानियाँ सुनते हैं - कथा बहुबिधा : परिहास समन्विताः। संयोगवश राम भद्र से पूछते है - "मेरे, सीता तथा भरत आदि के विषय में लोग क्या कहते हैं?" तब भद्र सीता के कारण हो रहे लोकापवाद और जनता के आचरण पर पड़नेवाले उसके कुप्रभाव का उल्लेख करता है। लोग कहते हैं - हमको भी अपनी स्त्रियों का ऐसा आचरण सहना होगा।

यह सुनकर राम लक्ष्मण को बुलाते हैं और सीता को गंगा के उस पार छोड़ आने का आदेश देते हैं। तपोवन दिखलाने के बहाने लक्ष्मण सीता को रथ पर ले जाते हैं और वाल्मीकि के आश्रम के समीप छोड़ देते हैं।

वाल्मीकि कथा कालिदास के रघुवंश में भी मिलती है। अंतर यह है कि इसे भद्र मित्र न होकर गुप्तचर बताया गया है। उत्तररामचरित, कुंदमाला, दशावतारचरित आदि प्राचीन रचनाओं में इस प्रकार का वर्णन किया गया है। उत्तररामचरित में गुप्तचर का नाम दुर्मुख है। आध्यात्म रामायण तथा आनन्द रामायण में इसका नाम विजय माना गया है।

"चलित राम" के अनुसार दो छद्मवेशी राक्षस राम को सीता के विरोध के लिए उकसाते है,जबकि "असमिया लवकुशर युद्ध" में राम के एक स्वप्न की चर्चा है।

विमलसुरीकृत पउमचरियं में सीता त्याग का विस्तृत तथा किंचित परिवर्द्धित वर्णन किया गया है।

राम स्वयं गर्भवती सीता को वन में विभिन्न चैत्यालय दिखला रहे थे कि राजधानी के नागरिक उनके पास आए और अभयदान पाकर उन्होंने अपने आने का कारण बताया, पहले वे साधारण जनता के दुष्ट स्वभाव का वर्णन करते हैं; जिसके निम्नलिखित अवगुण होते हैं- पवमोहित्यमई (पापमोहितमति), परदोसगहणरउ (परदोषग्रहरणरत), सहववको (स्वभाव-कुटिल), सठ्सिलों (शठशील), ऐसी जनता में सीता के अपवाद को छोड़कर किसी और बात की चर्चा नहीं होती। नागरिकों का यह भाषण सुनकर राम ने लक्ष्मण के साथ परामर्श किया, किन्तु लक्ष्मण ने सीतात्याग का विरोध किया। राम को सीता पर संदेह हुआ। अतः उन्होंने अपने सेनापति कृतान्तवदन को बुलाकर आदेश दिया कि जैन-मंदिर दिखलाने के बहाने सीता को गंगा के पार भयानक (निमानुष) वन में छोड़ दो। सेनापति ने ऐसा ही किया। संयोग से पुण्डरीकपुर के राजा बज्रपंध ने उस वन में सीता का विलाप सुन लिया। वह सीता को अपने भवन में ले आया और उसके यहाँ सीता के दो पुत्रों का जन्म हुआ।

रविषेण के 'पदमचरित' में सीता को ग्रहण करने के दुष्परिणाम के वर्णन में परिवर्द्धन किया गया है। समस्त प्रजा मर्यादा-रहित बताई जाती है। स्त्रियों का हरण हुआ करता है और बाद में पुनः वे अपने-अपने घर लौट कर स्वीकृत हो जाती हैं।

हेमचन्द्रकृत योगशास्त्र में सीतात्याग के पश्चात की एक घटना का वर्णन किया गया है। इनके अनुसार राम अपनी पत्नी की खोज में वन गए थे, किन्तु सीता का कहीं भी पता नहीं चल सका। राम ने सोचा कि सीता कहीं किसी हिंस्र पशु द्वारा मारी गई है। अतः उन्होंने घर लौटकर सीता के श्राद्ध का आयोजन किया।

- **<u>धोबी का वृतान्त</u> -** सीता त्याग की कथाओं का एक दूसरा वर्ग मिलता है, जिसमें लोकापवाद का एक विशेष उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। एक पुरुष (बाद में यह धोबी कहा जाता है) अपनी पत्नी को, जो घर से निकली थी; वापस लेने से इन्कार करते हुए कहता है - "मैं राम की तरह नहीं हूँ, जिन्होंने दीर्घकाल तक दूसरे के घर में रहने के पश्चात सीता को ग्रहण किया। "

  इस वृतान्त का सर्व प्रथम वर्णन सम्भवतः आजकल गुणादय कृत वृहत्कथा में हुआ था और अब सोमदेव-कृत कथासरित्सागर में सुरक्षित है। कथा इस प्रकार है- एक दिन अपने नगर में गुप्त-वेश में घूमते हुए राजा ने देखा कि एक पुरुष अपनी स्त्री को हाथ से पकड़कर अपने घर से निकाल रहा है और यह दोष दे रहा है कि तू दूसरे के घर गई थी। इस पर वह स्त्री कहती है- राम ने सीता को राक्षस के घर रहने पर भी नहीं छोड़ा; यह मेरा पति राम से बढ़कर है, क्योंकि यह मुझे बंधु के गृह जाने पर भी अपने घर से

निकाल रहा है। यह सुनकर राम को बहुत दुःख हुआ और उन्होंने लोकापवाद के भय से गर्भवती सीता को वन में छोड़ दिया।

भागवतपुराण में जो वृतान्त मिलता है वह कथासरित्सागर की उपर्युक्त कथा से बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

जैमिनीय अश्वमेघ तथा पदमपुरण की सीतात्याग विषयक कथाओं का मूल-स्रोत एक ही प्रतीत होता है; क्योकि दोनों में शाब्दिक समानता के अतिरिक्त एक ही नया तत्त्व मिलता है। जिस पुरुषों ने अपनी पत्नी को निकाला वह धोबी कहा जाता है।

आगे चल कर धोबी की यह कथा व्यापक हो गई है। तमिल रामायण का उत्तरकाण्ड, आनन्द रामायण, नर्मद्कृत गुजराती रामायण सार, रामचरितमानस के प्रक्षिप्त लवकुश-काण्ड आदि में इसका वर्णन किया गया है। तिब्बती रामायण का वृतान्त कथासरित्सागर तथा भागवत-पुराण की कथा से विकसित प्रतीत होता है। उसमें जनश्रुति का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है। राम किसी पुरुष को अपनी व्यभिचारिणी पत्नी से झगड़ा करते सुनते हैं। पति कहता है- तुम अन्य स्त्रियों की तरह नहीं हो। इस पर पत्नी उत्तर देती है- तुम स्त्रियों के बारे में क्या जानते हो, सीता को देख लो; एक लाख वर्ष तक वह दशग्रीव के साथ रही, फिर भी राम ने उसे ग्रहण कर लिया।

यह सुनकर राम को सीता के विषय में संदेह उत्पन्न होता है और वह छिपकर उस स्त्री से मिलते हैं। स्त्रियों का स्वभाव समझाते हुए वह राम से यो कहती है- ज्वर-पीड़ित मनुष्य जिस प्रकार शीतल सरिता का निरन्तर स्मरण करता है, ऐसे से ही काम-पीड़ित स्त्री रूपवान पुरुष का निरन्तर स्मरण करती रहती है। जब तक उसे कोई देखता अथवा सुनता हो वह निंदनीय आचरण नहीं करती, लेकिन एकांत में बंधन से मुक्त होकर वह पर-पुरुष के साथ अपनी काम-पीड़ा शान्त कर लेती है।

यह सुनकर राम के मन में शंका सुदृढ़ हो जाती है। वह घर जाकर सीता को कहीं भी चले जाने का आदेश देते हैं और सीता अपने दो पुत्रों के साथ किसी आश्रम के लिए प्रस्थान करती है।

- **रावण का चित्र -** पउमचरिय के अनुसार राम को सीता के चरित्र पर संदेह होने के कारण सीता के पास रावण का चित्र होना बताया है। जैन साहित्य के टीकाकार मुनिचन्द्र सूरी के अनुसार सीता ने अपनी ईर्ष्यालु सपत्नी की प्रेरणा से रावण के चरणों का चित्र बनाया था। सपत्नी ने राम को यह चित्र दिखाया। इसीलिए राम ने सीता का त्याग कर दिया, राम ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया तो सपत्नियों ने यह बात दासियों के द्वारा जनता में फैला दी। बाद में राम जब गुप्त वेश धारण कर नगर के उद्यान में टहल रहे

थे, तो सीता को ग्रहण करने के कारण अपनी निन्दा सुननी पड़ी। इस बात का गुप्तचरों ने भी समर्थन किया। लक्ष्मण ने सीता का पक्ष लिया था। मगर राम ने कृतांत-वदन की तीर्थयात्रा के बहाने सीता को जंगल में छोड़ने का आदेश दिया।

कृतिवास रामायण में इसी तरह का वृतान्त देखने को मिलता है। चन्द्रावली-कृत रामायण गाथा में कैकेयी की पुत्री 'कुकुआ' के बहकावे में आकर सीता रावण का चित्र खींचती है, जिसे कीकवी देवी (भरत और शत्रुघ्न की सहोदरी) उसे सोती हुई सीता की छाती पर रख देती है और यह अभियोग लगाती है कि उन्होंने चित्र का चुम्बन भी किया था।

हिंदेशीय के शोरीराम में यह दिखाया गया है कि रावण की पुत्री अपने पिता का चित्र सीता की छाती पर रख देती है, जिसका वह नींद में चुम्बन करती है। यह दृश्य देख राम सीता को कोड़ों से मारते हैं; उसके बाल काटते हैं और लक्ष्मण को बुलाकर मार डालने तथा प्रमाण स्वरूप उसका हृदय लाने का आदेश देते हैं।

सिंहल द्वीप की रामकथा, रामकीर्ति के अनुसार शूपर्णखा की पुत्री अदूल सीता से रावण का चित्र खिंचवाती है। ब्रह्मचक्र की कथा में शूपर्णखा स्वयं छद्मवेश में सीता के पास आती है। कश्मीरी रामायण में रामायण के दो भाग है, पहला "सरी राम अवतार चरितम्" तो दूसरा "लवकुश युद्ध चरितम्। " चोल साम्राज्य में दो कवि कम्बन और ओट्टाकोथार ने 12वीं शताब्दी में रामायण के ऊपर अपनी व्याख्या लिखी है। तमिल साहित्य में कहा जाता है कि पूर्व रामायण कम्बन द्वारा लिखी गई और उत्तर रामायण ओट्टाकोथार द्वारा। वाल्मीकि रामायण में इसे केवल स्ट्रीट गॉसिप माना है। जबकि तेलगु कन्नड़ और ओड़िआ कथाओं में सीता द्वारा रावण की परछाई बनाने का वर्णन आता है, तो कई गाथाओं में शूर्पणखा और उसकी पुत्री, मंथरा,कैकेयी, तो अन्य स्त्रियों द्वारा सीता को रावण की तस्वीर खींचने के लिए बाध्य किया जाता है। संस्कृत कथासरित सागर (11वीं शताब्दी) तथा बंगाली कीर्तिवास रामायण (15वीं शताब्दी) में धोबी और उसकी पत्नी के झगड़े का संदर्भ है।

रामायण के अन्य परोक्ष कारणों में दुर्वासा मुनि का शाप, भृगु पत्नी-वध, तारा का शाप (बालीवध के बाद), उद्यान में शुकों के साथ, पूर्व जन्म में सीता द्वारा मुनि सुदर्शन की निन्दा, सीता द्वारा लक्ष्मण पर आक्षेप, वाल्मीकि की तपस्या द्वारा लक्ष्मी के पिता बनने के वरदान की कथा, जैसे अनेकानेक कथानक देखने को मिलते हैं।

तुलसीदास की गीतावली, अध्यात्म रामायण, आनंद रामायण आदि में राम के चरित्र के आदर्श को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से अनेक अर्वाचीन राम कथाओं में सीता त्याग के वृतान्त को एक अन्य रूप देकर अवास्तविक बनाने का प्रयास किया गया है। गीतावली के अनुसार दशरथ अपनी आयु के पूर्ण होने से पहले ही स्वर्गवासी हो गए थे और राम को उनकी शेष आयु

मिली थी। पिता की आयु सीता के साथ भोगना अनुचित समझकर राम ने अपनी आयु के समाप्त होने पर सीता का निर्वासन किया।

अर्वाचीन रामकथा साहित्य में काल-क्रम के अनुसार सीता-त्याग की कथाओं के विकास की पुष्टि होती है। धोबी द्वारा लोकापवाद, रावण के चित्र और अंत में सीता की एक रजस्तमोमयी छाया मात्र का हरण होने तथा सत्वगुण से अदृश्य रूप से राम के वामांग में निवास करना।

रविषेण के अनुसार राजा जनक की विदेहा नामक महाराणी की एक पुत्री सीता और एक पुत्र भामण्डल उत्पन्न हुआ। राम म्लेच्छों के विरोध के समय जनक की सहायता करते हैं। जिसके फलस्वरूप राम और सीता का वाग्दान हुआ। सीता हरण के बारे में विमल सूरी लिखते है, कि चंद्रनखा और खरदूषण का पुत्र सूर्यहास खंग की सिद्धि के लिए बारह साल तक साधना करते हैं। जब उसकी साधना सफल हो जाती है, खंग प्रकट होता है; संयोगवश लक्ष्मण वहाँ पहुँचते हैं और खंग को उठाकर बाँस काटकर शंबुक का सिर काट देते हैं। चंद्रनखा अपने मृतपुत्र को देखकर विलाप करते-करते वन में फिरने लगती है। वह राम और लक्ष्मण के पास पहुँचकर उनकी पत्नी बनने का प्रस्ताव रखती है। असफल होकर वह अपने पति खरदूषण को पुत्रवध का समाचार सुनाती है और रावण को भी खबर कर देती है। रावण अपनी अवलोकनी विद्या से सिंहनाद करके राम और लक्ष्मण को वहाँ से हटाकर सीता का हरण करने में सफल हो जाता है।

उत्तरचरित में राम की आठ हजार पत्नियाँ बताई गयी है, जिनमें से सीता, प्रभावती, रतिनिभा और श्रीदामा प्रधान है। जबकि लक्ष्मण की दस हजार पत्नियाँ बताई गयी है। सीता के पुत्रों के नाम लवण, (अनंग लवण) तथा अंकुश (मदनांकुश) माने गए हैं।

वैदिक काल में पशु पालन करने वाले आर्यों के लिए जो स्थान गायों का था, वही स्थान कृषकों के लिए खेतों की सीता का था। फलस्वरूप गायों का हरण सीता हरण में बदल जाते हैं। डॉ वेबर के अनुसार रामकथा का मूलस्वरूप बौद्ध दशरथ जातक में सुरक्षित है। इस कथा में सीता हरण और रावण का युद्ध का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। डॉ. वेबर के अनुसार सीता हरण की कथा का मूल-स्रोत होमर में वर्णित पैरिस द्वारा हेलन का हरण है और जो लंका में युद्ध हुआ था, उसका आधार संभवत यूनानी सेना द्वारा त्राय का अवरोध है।

हनुमान शब्द संभवत एक द्रविड़ शब्द का संस्कृत रूपान्तरण है। इसका अर्थ है 'नर कपि'। इसी कारण अनुमान किया गया है कि वृषाकपि तथा हनुमान दोनों किसी प्राचीन द्रविड़ देवताओं के नाम है।

दूसरे मत के अनुसार रामायण के अन्य वानर, ऋक्ष और राक्षस विन्ध्य प्रदेश और मध्यभारत की आदिवासी अनार्य प्रजातियाँ थीं। वाल्मीकि रामायण में इन्हें आदिवासी ही कहा

गया है। मगर आदिकाव्य के अनेक स्थलों से पता चलता है कि प्रारम्भ में यह सभी मनुष्य ही माने जाते थे। जैन रामायण के विद्वानों के अनुसार उन जातियों की ध्वज के कारण नाम पड़े। अर्थात जिस जाति के ध्वज पर बंदर का चिह्न था,वह वानर जाति कहलाए और जिसकी ध्वज पर रीछ का चिह्न था वह रीछ कहलाए। आज भी क्रिकेट खेल में आस्ट्रेलिया को ध्वज के कारण कंगारू, अंग्रेज़ों की ध्वज पर शेर का चिह्न होने के कारण ब्रिटिश लॉयन और रुस की ध्वज पर बियर(रीछ) का चिह्न होने के कारण रूसी लोगों को बियर कहते है। कुछ विद्वानों के अनुसार आदिवासी जातियाँ पशु या वनस्पति की पूजा करती थी और उसी के नाम से पुकारे जाते थे जिन्हें 'टोटम' या 'गोत्र' कहते है। रामायण में वानर, ऋक्ष (जम्बुवान) और गिद्ध (जटायु, सम्पाति और रावण) आदि इन्हीं टोटमों के परिणाम है। ध्यान देने योग्य बात यह है उराँव, असुर तथा खरिया आदि आदिम जातियों की भाषा में रावण का अर्थ गिद्ध ही है। जैन रामायण में विमलसूरी के अनुसार रावण का एक ही सिर था,जब उसका जन्म हुआ था। तो माँ ने नौ दर्पण वाला हार उनके गले में डाला था, जिसमें उसकी छाया थी। इसलिए माँ दशानन के नाम से पुकारती थी,जो आगे जाकर उसका नाम बन गया। मगर दूसरे कवियों ने अदभुत रस और अतिशयोक्ति का सहारा लेते हुए रावण के दस सिर होने, हनुमान द्वारा समुद्र लाँघने तथा आकाश में उड़कर पर्वत लाने जैसे वाक्यों का प्रक्षेपण किया है- ऐसा अनुमान लगाया जाता है।

रामायण के अनुसार सीता अपने आपको साधारण स्त्री मानती है और अपने इस जन्म को दुःखों का कारण पूर्व जन्म के किए हुए पाप को समझती है। राक्षसों के प्रति राम की हिंसात्मक प्रवृति देखकर राम के परलोक की चिन्ता करती है और रावण उनसे अनुरोध करता है कि वह राम जैसे साधारण मनुष्य को छोड़ दे तो वह उत्तर नहीं देती है। राम साधारण मनुष्य नहीं है। युद्ध के समय भी वह राम को अमर नहीं समझती है। रामकथा की लोकप्रियता का एक कारण बौद्ध और जैन साहित्य से मिलता है। बौद्ध ने राम को बोधिसत्व मानकर लोकप्रियता और आकर्षकता का साक्ष्य दिया है और जैनियों ने वाल्मीकि की रचनाओं को मिथ्या कहकर राम को नए रूपों में अपनाने का प्रयत्न किया है। कृपा निवास, मधुराचार्य (रसिक संप्रदाय के आचार्य) के अनुसार न तो वास्तव में सीता का हरण हुआ और न ही स्वयं ब्रह्म राम ने एक तुच्छ राक्षस के वध के लिए धनुष बाण उठाया। वनयात्रा के समय राम, लक्ष्मण और सीता चित्रकूट से आगे तक नहीं गए।

तत्वसंग्रह रामायण के अनुसार माया सीता का वृतांत सामने आता है, जिसके अनुसार वास्तविक सीता राम के वक्ष स्थल में छुप जाती है और शतानन रावण का वध खुद सीता ही करती है।

कथासरितसागर में राम और सीता का मिलन दिखाकर रामकथा का सुखांत किया है।

असुर और राक्षस अधिकांश एक दूसरे के लिए प्रयुक्त होते है, मगर दोनों में अंतर है। असुर कश्यप के वंशज थे, जो जमीन पर रहते थे और देवताओं से लड़ाई करते थे। जबकि राक्षस पुलस्त्य की संतान थे, जो जंगलों में रहते थे और आदमियों से लड़ाई करते थे। वास्तुविदों के अनुसार रावण को दक्षिण दिशा(यम की दिशा) तथा कुबेर को उत्तर दिशा (स्थायित्व / धन संग्रह) का प्रतीक माना है।

कुछ विद्वानों के अनुसार धनुष तोड़ने का अर्थ अनासक्ति से लिया जाता है। शायद सीता की आसक्ति से मुक्त होने के लिए राम को वनवास जाना पड़ा, जो एक राजा के लिए अनिवार्य शर्त थी। वैदिक विचारों के अनुसार मनुष्य समाज को चार अवस्थाओं में गुजरना पड़ता है। व्यतिक्रम क्रेता (4), त्रेता (3), द्वापर (2), कली (1) और उसके बाद प्रलय (0) और उसके बाद 4, 3, 2, 1... हर समाज आदर्शवादिता से शुरू होता है और धीरे-धीरे करके अपने समापन को प्राप्त करता है। हर युग की समाप्ति एक अवतार से होती है, जैसे क्रेता में परशुराम, त्रेता में राम, द्वापर में कृष्ण और कलि में कल्की। रामबाण का अर्थ अपने उद्देश्य का अचूक निशाना है।

भारतवर्ष में सभी बच्चों को चंद्रमा के प्रति राम के प्रेम के बारे में सुनया जाता है। मगर कुछ विद्वानों के अनुसार सीता और शूर्पणखा पर किए गए अत्याचारों के कारण उनके सूर्यवंशी परिवार की आभा धूमिल होने की वजह से उन्हें रामचन्द्र कहा जाने लगा। राम को मर्यादा पुरषोत्तम कहा जाता है, जिनके लिए नियम कानून ही सब-कुछ होता है, भावना और संवेदनाओं की कोई कद्र नहीं होती है। तत्कालीन समाज में कानून को ज्यादा मान्यता देने का अर्थ यह नहीं था कि अपने पिता का दिल दुखाना अथवा अपनी पत्नी पर अत्याचार करना। नियम का अनुसरण करने वाला कभी भी न तो आज्ञाकारी पुत्र हो सकता है और न ही एक अच्छा पति। इससे ऐसा लगता है कि उस समाज में नियम कानून को व्यक्ति की तुलना में ज्यादा मान दिया जाता था। पाँचवी शताब्दी तक राम एक अच्छे मानवीय नायक थे। वाल्मीकि ने भी उन्हें देवता के रूप में स्वीकार नहीं किया। धीरे-धीरे राम को पृथ्वी पर विष्णु का अवतार तथा एक आदर्श राजा माना जाने लगा और उनकी कहीं हुई हर बातों को दिव्यता से परिपूर्ण देखा जाने लगा। कंबन के तमिल 'रामायण-ई-रामवताराम' में राम अपने देवत्व से संघर्ष करते हैं और अपने देवत्व के विपरीत किए गए कार्यों की वजह से नीरवता में लोप हो जाते हैं। मगर बारहवीं शताब्दी के शुरूआत में वेदान्त के प्रवर्तक रामानुज ने राम की तुलना भगवान से कर राम भक्ति की शुरूआत की।

आज भी महाकाव्यों में यह सवाल हमेशा बना रहता है कि सीता राम का अनुकरण क्यों कर रही थी। वह इसे अपना कर्तव्य समझती थी, अथवा वह राम को अत्यधिक प्यार करती थी। क्या सीता का यह निर्णय सामाजिक नियमों पर आधारित था, अथवा भावना केंद्रित? राम जब

नियमों की बात करते है तो सीता भावनाओं की तरफ झुक कर संतुलित करती है। सीता की परंपरागत कथाओं में आज्ञाकारी पत्नी होने के विपरीत वाल्मीकि रामायण में उसे अपने मस्तिष्क का प्रयोग करने वाली सजग नारी के रूप में चित्रित किया गया है। वह राम के पौरुष को ललकारती है। जिसके कारण वह उन्हें अपने साथ जंगल में नहीं ले जाना चाहते। कई संस्करणों में अभी तक यह भी गुत्थी बनी हुई है कि सीता ने राम के साथ शाही परिधानों में वन गमन किया था अथवा वल्कल पहन कर।

भारत में रामायण की घटनाओं के अनुरूप महानगरों को विभाजित किया गया है। उदाहरण के तौर पर वाराणसी में अयोध्या (राम नगर) और लंका के कुछ हिस्से हैं - जो गंगा नदी के आमने-सामने वाले तट पर हैं। इसी तरह चित्रकूट (जहाँ राम का भरत से मिलाप होता है) तथा पंचवटी (जहाँ से सीता का अपहरण होता है) आदि स्थान गंगा के आस-पास ही हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार रामायण की घटनाओं का विस्तार मध्य भारत से आगे नहीं जा सका, मगर तीर्थों की कहानियाँ और रामायण के स्थानों के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हुए इसका विस्तार प्रायदीप तथा इससे आगे श्रीलंका तक माना जाने लगा। जहाँ राम के पाँवों के निशान तथा अपने हाथों से ही स्थापित किए गए शिव मंदिर के अवशेष नजर आते हैं।

भास द्वारा रचित 'प्रतिमा नाटक' के अनुसार राम की अपने पिता की अंत्येष्टि कर्म न करने की निराशा के अवसर का फायदा उठाते हुए, रावण ने अंत्येष्टी नियमों में पारंगत होने का बहाना बनाकर राम को अपने पिता की आत्मा की शांति के लिए हिमालय में पाए जाने वाले सोने के हिरण समर्पित करने की सलाह दी। इस वजह से सीता कुटिया छोड़कर जा सके और वह सीता का अपहरण कर सके। गया में पूर्वजों की आत्मा की शांति के लिए आज भी हिन्दू लोग श्राद्ध करते हैं।

अधिकांश रामकथाओं में राम को रावण के अत्याचार से दुनिया को बचाने के लिए विष्णु के अवतार के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। साहित्यिक दृष्टि से दक्षिण भारत में राम की यात्रा का अर्थ औपनिवेशवाद तथा अग्नि-पूजक, वैदिक आर्यों के धीरे-धीरे विस्तार होने की दिशाओं में संकेत है। प्रतीकात्मक रूप में जंगल का अर्थ अपालतू, डरपोक और इधर-उधर भटकने वाले मन से लिया जाता है। उसके पश्चात राम और साधुओं के पहुँचने का अर्थ मानवीय शक्तियों के उजागरण से लिया जाता है। कुछ लोग रावण को रक्ष संस्कृति के प्रवर्तक के रूप में मानते है। जिसने ऋषि संस्कृति का विरोध किया। संस्कृति में ऐसा क्या था, जिसका स्वागत और आदान-प्रदान नहीं हुआ; दोनों संस्कृतियों में आपसी टकराव के क्या कारण थे? क्या दोनों संस्कृतियाँ एक-दूसरे से स्वतन्त्र रह सकती थी अथवा उन्हें एक-दूसरे को प्रभावित करते हुए बदला जाना चाहिए था। वाल्मीकि ने रावण के पिता ऋषि तथा माता राक्षस होने के कारण इस सवाल पर बहुत ज्यादा विचार किया। राक्षसों का वर्णन अस्पष्ट है, उन्हें उग्र हथियार लिए हुए, बड़ी-बड़ी

आँखों वाले, बड़े-बड़े नाखूनों वाले पंजे तथा खून से सने हुए दिखाया जाता है। कभी-कभी उन्हें बहरूपिया, तो कभी-कभी उन्हें सुंदर, संवेदनशील और सभ्य दिखाया गया है। राक्षसों को डरावने और दैत्य के रूप में दिखने के पीछे मुख्य उद्देश्य उन्हें अमानवीय बताकर उनकी हत्या करने के कारणों को न्याय-संगत सिद्ध करना है। यह ऐसा ही है कि सभ्य देश अपने युद्ध के कारणों को उचित ठहराते हैं। मानवीय मस्तिष्क में निहित जन्तु-पिपासा कभी-कभी उसके चरित्र पर हावी हो जाती है, उसे सुरक्षित स्थान प्रदान करना भी ऐसा ही है। राक्षस अगर पालतू नहीं है या उन्हें छोड़ दिया गया है, वे भी हमारे ऊपर प्रभुत्व जमाकर हमें समाप्त कर देंगे। इसीलिए उनका व्यस्त रहना अत्यंत ही अनिवार्य है।

भारत में राम-लक्ष्मण-सीता की गुफाएँ देखने को मिलती है। कई जगह तीनों गुफाएँ अलग-अलग है। अर्थ यह लगाया जाता है कि साथ रहने के बावजूद भी वे लोग अलग-अलग रहते थे। विभिन्न सूत्रों का अध्ययन करने से तरह-तरह की बातें सामने आती है कि किस तरह घुमक्कड़ बंजारा जाति एक जगह इकट्ठी होकर खेती-बाड़ी का काम करने लगी, किस तरह जंगल में रहने वाली जतियों ने गाँव और नगरों का निर्माण किया, किस तरह अग्नि-पूजक परम्पराएँ मंदिर की कथात्मक परम्पराओं में तब्दील हो गई? अमरता और परिवर्तन को स्वीकार करने के द्वन्द्व और अस्थायित्व में किस तरह मूल वैदिक अवस्थाएँ बरकरार रही। शायद इन्हीं आस्थाओं ने कर्म, काम, माया और धर्म के विचारों को जन्म दिया।

अनेक कहानियों के अनुसार राम-लक्ष्मण और सीता जंगल में जाते समय किशोरावस्था में थे। जंगल में उनका विकास हुआ। यह विकास उस समय हुआ,जब उनके दिमाग बचपन की निश्चिंतता को चुनौती दे रहे थे। और उस दौरान वे सामाजिक संरक्षण के कृत्रिम रूप को आसानी से देख सकते थे। जंगल में जानवर अथवा पेड़-पौधों ने उनके साथ कोई अलग व्यवहार नहीं किया। इसलिए कि वे राजसी घराने से संबंध रखते थे। उन्हें शिकार अथवा शिकारी के दृष्टि से ही देखा गया। यह कथानक ग्राम, क्षेत्र, उपनिवेश को वन या अरण्य से पृथक करता है। कुछ विद्वान वनगमन की घटना को मीमांसा अर्थात् आत्म-अवलोकन की दृष्टि से देखते हैं, अर्थात राजसी घराने के उन तीनों ने मीमांसा के माध्यम से अपने आप को साधुओं में बदल दिया।

राम-लक्ष्मण-सीता के नाम पर कई पोखरियों का नाम रामकुण्ड, लक्ष्मणकुण्ड, सीताकुण्ड रखा गया है, जो उनके संन्यासी जीवन का प्रतीक है कि वे कभी भी एक तलाब में नहीं नहाते थे। महाराष्ट्र के नासिक, तमिलनाडु के रामेश्वरम्, बिहार के हजारीबाग और ओड़िशा के शिमलीपाल में यह कुण्ड पृथक-पृथक देखे जा सकते हैं। पितृसत्तात्मक प्रवृतियों के विपरीत उस समय उन ब्रहमचारियों को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था, जिनका नियंत्रण अपनी इंद्रियों से खत्म हो जाता था।

उद्भ्रांत जी के 'सीता-सर्ग' में सोने का हिरण खुशियों के अंत का प्रतीक है। युद्ध के बाद जब राम और सीता मिले तो सामाजिक प्रोपराइटी(Propriety)और फ़िडेलिटी (Fidelity)के मुददों की वजह से उनके संबंध तनाव में रहे। ओड़िशा की मिनिएचर क्लॉथ पेंटिंग(Miniature cloth painting)में दो सिर बाला हिरण दिखाया जाता है। गुजरात में रहने वाले भीलों के रामायण में भी यह बात दिखाई गई है। कई कहानीकारों को सीता द्वारा हिरण पकड़ने अथवा उसका आखेट करने का कथानक स्वीकार नहीं है। इसलिए भील रामायण (राम सीता नि वार्ता) में यह दिखाया गया है, दो मुखवाला सोने का हिरण सीता के बगीचे को नष्ट करता है, और उसे परेशान करता है; इसलिए राम क्रोध में आकर मारने का निश्चय करते हैं। मारीच के रूप में जो हिरण मरता है, वह तो केवल वास्तव में राम और रावण के युद्ध का निरीह शिकार है, जो अपने मालिक की खातिर प्राण-त्याग देने वाला समान्य नौकर का प्रतीक है।

सीता आज्ञाकारी लक्ष्मण को अवज्ञाकरी बनाने का भरसक प्रयास करती है। यहाँ तक कि डरकर वह उस पर झूठा दोषारोपण करती है। सीता स्त्री गुणों की पराकाष्ठा का प्रतीक है। इसलिए अधिकांश पाठक इस बात को नहीं मानते हैं। भारत की कई जातियों में आज भी उत्तर-पश्चिम और गंगा के मैदानी घाटों में विधवा भाभी की देवर के साथ शादी की जाने की रस्म है। पति के मरने के बाद उसके बच्चे को तथा विधवा महिलाओं को सहारा प्रदान करने के लिए यह परिपाटी बनाई गई होगी। लोक-संगीतों में भी दोनों के बीच काम-जन्य तनाव के उदाहरण दिये जाते हैं। बाली के मरने के बाद सुग्रीव द्वारा तारा को अपनी पत्नी बनाने तथा रावण के मरने के बाद विभीषण द्वारा मन्दोदरी को अपनी पत्नी बनाने का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि रामायण में कहीं पर भी लक्ष्मण रेखा का उल्लेख नहीं है। वाल्मीकि रामायण के हजारों साल बाद तेलगु और बंगाली रामायण में इसका उल्लेख आता है। अनेक शुरुआती संस्कृत नाटकों में सीता के अपहरण में इस बात का उल्लेख नहीं मिलता। बद्द रेड्डी की तेलुगू 'रंगनाथ रामायण' में लक्ष्मण सीता की झोंपड़ी के सामने भूमि पर सात रेखाएँ खींचता है, एक नहीं। जैसे-जैसे रावण इन रेखाओं को पार करता है, वैसे-वैसे आग निकलती जाती है। वाल्मीकि रामायण में इस बात में कोई संदेह नहीं है कि रावण ने सीता को हाथ से पकड़कर खींचा था, जबकि परवर्ती हजारों सालों के क्षेत्रीय संस्करणों में रावण सीता को स्पर्श नहीं करता है। 'कम्बन' रामायण में वह उसे झोंपड़ी समेत लंका ले जाता है। यह विचारधारा मध्ययुग में प्रकट हुई कि भारतीय समाज में स्पर्श से प्रदूषण अथवा व्यभिचारी प्रवृतियाँ बढ़ती है। दक्षिण भारतीय कहानियों के अनुसार रावण सीता का एक प्रेमी था। राम सभ्य, वफादार और मर्यादा में रहनेवाला प्रेमी था, जबकि रावण भाव-प्रवण और अमर्यादित, जो किसी भी हालत में इन्कार को स्वीकार नहीं कर सकता था।

नवीं शताब्दी के शक्ति भद्र द्वारा रचित संस्कृत नाटक 'आचार्य चूड़ामणि' में राम और सीता को साधुओं द्वारा उपहार दिये जाते हैं, राम को अंगूठी और सीता को हेयर पिन (hair pin)। ये जेवर कुछ खास होते हैं। जब तक वे लोग इसे पहने रहेंगे,तब तक कोई भी दानवीय शक्ति उन्हें स्पर्श नहीं कर सकती। यहाँ तक कि राक्षसों के मायाजाल का पर्दाफाश करती है। नाटक में रावण सीता के पास साधु के वेश में न आकर, रथ पर राम के रूप में आरूढ़ होकर आता है। जिसका सारथी लक्ष्मण होता है और वह सीता से कहता है कि दुश्मनों की सेना ने अयोध्या पर आक्रमण किया है। सीता यह विश्वास कर रथ पर चढ़ती है। रावण हेयर पिन के डर से उसे स्पर्श नहीं करता है। मगर जब सीता उसे स्पर्श करती है, तो रावण अपने वास्तविक रूप में प्रकट होता है। इसी तरह शूर्पणखा राम को सीता के रूप में मिलती है और अंगूठी की वजह से स्पर्श नहीं करती है। मगर जब राम उसे स्पर्श करता है, तो वह अपने मायावी रूप में प्रकट हो जाती है। कहानी कहती है, राम के जीवन पर आधारित शक्ति भद्र का यह नाटक जब वेदान्त ज्ञाता शंकर को समीक्षा के लिए दिया जाता है, मगर जब वह उस पर कोई टिप्पणी नहीं करते हैं तो वह इस नाटक जला देते हैं। बाद में जब शंकर उस कार्य की तारीफ करते हैं तो शक्ति भद्र को अपने किए पर पश्चाताप होता है। रावण के रथ या कुबेर के रथ को पुष्पक विमान कहा जाता है। जिससे यह विश्वास किया जाता है कि प्राचीन भारतीयों को सर्वोत्कृष्ट तकनीकी उपलब्ध थी। इस बात को इंगित करते हैं। सिंहल देश में रावण के रथ को दानदु मोनारा (dandu monara) कहते हैं, जिसका अर्थ होता है उड़ने वाला मोर, श्रीलंका में वेरागंतन (weragantotan)(महियांगन से 10 कि॰मी. दूर) रावण का एयरपोर्ट है।

सीता का अपहरण वनवास के अंतिम वर्ष में हुआ था। महाराष्ट्र में गोदावरी नदी के तट पर नासिक के नजदीक पंचवटी से सीता का अपहरण हुआ था। संस्कृत और प्राकृत भाषा में "नासिका" का अर्थ नाक होता है, जो शूर्पणखा के नाक काटने की घटना पर आधारित है। हेयर पिन या चूड़ामणि स्त्रियों द्वारा बालों में लगाया जाने वाला जेवर होता है। खुले बाल प्रतीकात्मक रूप से आजादी तथा जंगलीपन का प्रतीक है। जबकि बंधे हुए बाल बंधन एवं संस्कृति का प्रतीक है। महाभारत में द्रौपदी के खुले बाल सभ्य, आचरण के खत्म होने का संकेत करते हैं।

भारतीय दर्शन आदमी और उसके आधिपत्य की सामग्री को पृथक करता है। हमारे अपने विचार हैं और हमारी अपनी वस्तुएँ हैं। राम अपने विचारों से शक्ति पाते हैं, जबकि रावण अपने सामानों से शक्ति खोजते हैं। रावण के पास ज्ञान है, वह समझदार हो सकता है, मगर बुद्धिमान नहीं। रावण के माध्यम से लोक-गीतों में यह ध्यान आकर्षण किया गया है कि भले ही आप अच्छी तरह से मंत्र उच्चारण कर सकते हैं, मगर उनका अर्थ समझकर अपने आपको बदल नहीं सकते है। सीता रेणुका नहीं है, जो कार्त्तवीर्य की इच्छा करती हो, न ही वह अहिल्या है, जो इन्द्र की जालसाजी में फँसती हो। उसे राम के प्यार पर पूरा भरोसा है। रामायण यह

सवाल पूछती है, प्यार क्या है? क्या यह आसक्ति है? क्या यह नियंत्रण है? क्या प्यार बदला जा सकता है? क्या प्यार को खास होना चाहिए? क्या यह शारीरिक, बौद्धिक या संवेदनशील होता है? क्या राम की चुप्पी या रावण का बड़बोलापन प्यार का प्रतीक है। रामायण के खलनायक रावण की कई पत्नियाँ हैं। अगले जन्म में जब राम, कृष्ण बनते हैं तो उनकी भी अनेकों पत्नियाँ होती हैं। कृष्ण का प्यार और रावण का प्यार अलग-अलग है। रावण का प्यार वासना, अधिकार और नियंत्रण का प्रतीक है, जबकि कृष्ण का प्यार स्नेह, समझ और स्वतन्त्रता का प्रतीक है। अधिकांश पाठक रामायण की कहानी पढ़ते समय सीता के विपरीत "स्टॉकहोम सिंड्रोम " (falling in love with one's captors) के शिकार हो जाते हैं और रावण के गुणों की तारीफ करना शुरू कर देते है, भले ही वह किसी औरत को अपने घर में जबरदस्ती खींचकर लाता हो और जबरदस्ती बंधक बनाता हो। कुछ विद्वानों के अनुसार "नाक काटना" एक मुहावरा है, जिसका अर्थ होता है, किसी की इज्जत का मटियामेट करना। जब सुपर्नखा की नाक काटी गई तो रावण रघुवंश के परिवार की मर्यादा का प्रतीक सीता का हरण कर राम की नाक काटना चाह रहा था। सीता का शारीरिक शोषण हुआ हो या नहीं, मगर राम की इज्जत को दाग अवश्य लग गया था। आधुनिक समय में भी इज्जत के गहरे संस्कार औरतों के प्रति हिंसा व दमन को उचित ठहराने में किए जाते हैं।

सीता के अपहरण और हनुमान के अशोक वाटिका में पहुँचने तक कम से कम एक 'वर्षा ऋतु' का अंतर है। बारिश से पहले गर्मियों में सीता का अपहरण हुआ था और राम ने बारिश के बाद दशहरे के त्यौहार (Autumn) में रावण से युद्ध किया। सीता और हनुमान का मिलना भी कई तरीके से दिखाया गया है। वाल्मीकि रामायण में रावण द्वारा सीता को उसे स्वीकार न करने पर रावण द्वारा मारने की धमकी पर हनुमान का आगमन, तेलगु रामायण में सीता द्वारा अत्महत्या करते समय, मराठी रामायण में राम के नाम का उच्चारण करते समय तथा ओड़िआ रामायण में हनुमान द्वारा उसके प्रहरियों के सो जाने पर अँगूठी फेंक कर उसका ध्यान आकर्षित कर मिलने का उल्लेख मिलता है। वाल्मीकि रामायण में हनुमान सोचते हैं कि वे सीता से देव वाचन (देवताओं की भाषा) अर्थात् संस्कृत अथवा मनुष्य वाचन (मनुष्यों की भाषा) अर्थात् प्राकृत (कोई-कोई तमिल कहते है) भाषा में बात करें, मगर एक बंदर को ये भाषाएँ बोलते सुनकर सीता को आश्चर्य होगा। वाल्मीकि की कहानियों में राम की दिव्यता को अलग रखा गया है। राम को अपनी दिव्यता का ज्ञान है, मगर वह पृष्ठभूमि में है। जैसे-जैसे शताब्दियाँ पार होती जाती है, वैसे-वैसे राम की दिव्यता सामने आने लगती है और उनका नाम एक मंत्र बन जाता है। राम विष्णु से जुड़ने लगते हैं, हनुमान शिव के साथ या तो रुद्र अवतार बनकर या फिर उनके पुत्र के रूप में और सीता देवी बनती चली जाती है। इस तरह रामायण में हिंदुओं की तीनों मुख्य शाखाओं- शैव, वैष्णव और शाक्त संप्रदायों का सम्मिश्रण हो जाता है। संस्कृत के हनुमान

नाटक में रुद्र के ग्यारह रूप बताए गए हैं, जिसमें से दस रुद्र रावण के दस सिरों की रक्षा करते है। जबकि ग्यारहवाँ हनुमान के रूप में अवतरित होता है। राम नाम से अंकित मुद्रिका जो सीता को हनुमान जी देते है, उसमें राम का नाम क्या संस्कृत, हिन्दी, मराठी अथवा गुजराती में लिखा हुआ था? मुद्रिका पर लिखा हुआ राम का नाम आज भी विद्वानों को राम के समय में प्रचलित लेखन की पद्धति के प्रयोग की और ध्यानाकृष्ट करती है। यह कथा दांडी (गलियाँ) में गाई जाती है, संस्कृत को चाहने वाले पण्डितों के भय से,आम आदमी को खुश करने के लिए। तुलसीदास के रामचरित मानस पढ़ने के उपरान्त 19वीं और 20वी' सदी में शंकाओं का समाधान करने के लिए लिखी गई विशेष पुस्तक "शंकावली" के अनुसार वह अंगूठी वास्तव में सीता की थी जो उसने केवट (गुहा) को देने के लिए राम को दी थी। मगर गुहा ने स्वीकार नहीं की, इसलिए राम के पास रह गई थी।

राम का दुःख उनके व्यक्तिगत जीवन की झाँकी है। जब तक कि वह सामाजिक, मर्यादा और शाही आभिजात्य (stoicism) को व्यक्तिगत रूप से देखते हैं। जब बुद्धि लड़खड़ाने लगती है और भावुकता आने लगती है, लक्ष्मण भी उन्हें अपनी भावनाओं के अनुचित प्रदर्शन के लिए फटकारते हैं। कहीं-कहीं इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि शिवजी की इच्छा के विरुद्ध पार्वती सीता का रूप धारण कर राम के दुख को कम करने के लिए उनसे मिलती है। मगर वह राम को मूर्ख नहीं बना पाती, राम उसे देवी के रूप में पहचान लेते हैं और उसे प्रणाम करते हैं। महाराष्ट्र की पौराणिक गाथा तूलजा भवानी का यह अंश है। तुलसीदास जी इसी कहानी को अपने संस्करण में लिखते हैं कि शक्ति द्वारा राम की दिव्यता को पहचानने में विफल होने पर वह उसकी सती दाह के रूप में परीक्षा लेना चाहते हैं। रामायण में कैकेयी, राम, लक्ष्मण और सीता सामाजिक निश्चिंतता के अंत, अस्तित्व से जुड़े भाव तथा wilderness से घिरे हुए प्रतीक हैं,जिसे तंत्र में मूलाधर चक्र से प्रकट किया गया है। तंत्र की भाषा में हिरण का यहाँ अर्थ लोभ, मोह, माया से ऊपर उठना है,उसके बाद विरोध,सूपर्नखा,अयोमुखी आदि की यौन-इच्छा स्वाधिष्ठान चक्र, कबन्ध की भूख मणिपुर चक्र, रावण की भावुक आवश्यकताएँ अनाहत चक्र, हनुमान संवाद विशुद्धि चक्र, जिससे अंतरात्मा की रोशनी, आत्म-चेतना का विकास होता है, और विभीषण का सहयोग आज्ञाचक्र तथा अंत में बुद्धि की सहस्र पदमचक्र पर पुष्पवृष्टि होती है। कई बार यह भी सवाल उठता है कि राम शाही परिधान तथा जेवरों का त्याग कर वनवासी हो गए थे, तब उनके पास सोने की अंगूठी कहाँ से आई? इसी तरह वानर को वा+नर अथवा वन+नर के रूप में पढ़ा जा सकता है, जिसका अर्थ होता है नर से कम अथवा वन में रहने वाले नर। वाल्मीकि कपि शब्द का भी प्रयोग करते है,शायद प्रतीकात्मक रूप से बंदर गोत्र की जंगली जातियाँ। मगर उनकी पूँछ के बारे में रहस्य नहीं खुलता है। जैन रामायण बोलने वाले बंदर की जतियों के होने से इन्कार करती हैं। विमल सूरी हनुमान को विद्याधर कहते हैं। शायद ये वे

विशेष जातियाँ है,जो अपनी ध्वजाओं पर बंदरों का चिह्न रखते हैं। पुराणो में सभी सजीव प्राणियों का प्रादुर्भाव ब्रह्मा से हुआ है। जिनकी कोई पत्नी नहीं है, मगर उनके मानस पुत्रों की पत्नियाँ होती हैं। प्रत्येक पुत्र विभिन्न प्रजातियों का जनक है। इस तरह आसानी से विभिन्न प्रजातियों जैसे मछली, पक्षी, सर्प, मनुष्य, celestials being, subterranean being, आदि आदि। अलग-अलग तरीकों से सोचने के कारण मनुष्य को भी अलग-अलग विभाग में रखा जाता है। जो मनुष्य अधिकार अनुभव करते हैं (देवता), जो मनुष्य trick प्रयोग में लाते हैं (असुर), जो मनुष्य पकड़ते हैं (राक्षस), जो मनुष्य संग्रह करते हैं (यक्ष) और जो मनुष्य कला-प्रेमी होते हैं (बंदर) आदि। वानर किष्किन्धा में रहते हैं जो वर्तमान में कर्नाटक और आन्ध्रप्रदेश के प्रान्तों के रूप में जाना जाता है। आर्यावर्त्त में मनुष्य रहते हैं और लंका में राक्षस। किष्किन्धा की कल्पना भौगोलिक जगह होने की तुलना में मानो वैज्ञानिक ज्यादा है। लंका की जातियों में हनुमान के द्वारा सीता की खोज के पीछे वाल्मीकि का उद्देश्य है, राक्षसों के घर पर पाठकों की दृष्टि को आकृष्ट करना। वे कभी मनुष्य की तरह लगते हैं, तो कभी दानवों की तरह, कभी दुर्दान्त, तो कभी पालतू। एक तरफ संवेदना पैदा करना, तो दूसरी तरफ भय की सृष्टि करना। वाल्मीकि का बिस्तर पर रावण का कई स्त्रियों के साथ दिखाया जाना उत्तेजना-प्रद है। इच्छा और संतुष्टि के अलग-अलग स्तर पर दिखाया गया है। कई स्त्रियों ने अपने पति को छोड़ दिया है, ताकि रावण के द्वारा आनन्द प्राप्त कर सके। इन दृश्यों से हनुमान का मुँह फेरना, उनकी सन्यासी प्रवृति को दर्शाता है। कीर्तिवास रामायण से हनुमान को एक ऐसा घर मिलता है, जहाँ राम का उच्चारण होता है। बाद में पता चलता है, वह रावण के भाई विभीषण का घर है। मराठी में "लंकेछी पार्वती" का अर्थ उस धनवान स्त्री से होता है जो कभी गहने नहीं पहनती है। साज-शृंगार करने का अर्थ स्त्री की अप्रसन्नता है। सीता ने कोई गहने नहीं पहने थे। तथापि वह सोने के शहर में बैठी थी, जो उसके मन की दुखी अवस्था का प्रतीक है। हनुमान के द्वारा रावण से मिलकर राम का संदेश पहुँचाने तथा उसके लोगों को डराने का अर्थ एक मुक्त आत्मा से लिया जाता है, जो किसी के आदेश का इंतजार नहीं करती। कई लोक कथाओं में राम, हनुमान द्वारा लंका में किए गए तहस-नहस की निंदा करते हैं। मगर अभी तक यह स्पष्ट नहीं हुआ के क्या यही वह कार्य है जिसकी प्रशंसा नहीं की गई अथवा बिना अनुमति के हनुमान ने इस कार्य को अंजाम दिया। रंगनाथ रामायण में सीता हनुमान को एक बाजू-बंध प्रदान करती है ताकि वह लंका के बाजार से फल खरीद सके। मगर हनुमान कहते हैं, दूसरों के तोड़े गए फलों को मैं नहीं खाता। अपने नगर में रावण को पहली बार अपनी हार का आभास होता है। उसका पुत्र अक्षय अपने पिता की संपति की रक्षा करते हुए मारा जाता है। वह कोई खलनायक नहीं था। शहीद घोषित किया जाता है। इस तरह नायक और खलनायक के बीच धुंधली रेखा स्पष्ट नहीं होती है।

रामसेतु बनाते समय हनुमान ने राम का नाम किस शैली में लिखा; वाल्मीकि के समय में शायद लिखने की पद्धति का विकास नहीं हुआ था। सारे साहित्य मौखिक या श्रुतियों पर आधारित थे। खरोष्टी और ब्राह्मी लिपि बहुत बाद में आई। शारदा लिपि कश्मीर में कभी लोकप्रिय हुई थी और सिद्धाम(siddham)लिपि आज भी तिब्बत में चलती है। 12वीं शताब्दी के बाद में देवनागरी लिपि का विकास हुआ। जबकि हनुमान को देवनागरी लिपि में लिखते हुए दर्शाया जाता है। रामसेतु रामेश्वर से श्रीलंका के मन्नार टापू तक लाइमस्टोन की चट्टानों (limestone shoals) से बना हुआ है। हिंदुओं का मानना है कि बंदरों ने इस पुल का निर्माण किया था। मगर श्रीलंका के इतिहास-विज्ञ इस बात को नहीं मानते। आज के जमाने में इस प्राकृतिक बैरियर को सामरिक गतिविधियों के लिए तोड़ने की भी बात चल रही है। इस योजना के कई पक्ष में है तो कई विपक्ष में हैं। कई लोग इसे ऐतिहासिक मोनूमेंट मानते हैं तो कोई इसे प्राकृतिक परिस्थिति संवेदी स्थल मानकर किसी भी कीमत पर उसे बचाए रखने की आवाज उठाते हैं। बलराम दस ने जगमोहन रामायण लिखी थी जिसे दाण्डी रामायण के रूप में भी माना जाता है।

रामायण का पाँचवाँ अध्याय *'सुंदरकांड'* (जिसमें कपि द्वारा सीता की खोज का उल्लेख है) अत्यंत ही लोक प्रिय अध्याय है, जो अपने परिजन को खो जाने पर पाने के लिए आशा का प्रतीक है। Rationalist के अनुसार हनुमान उड़ते नहीं थे। वह पानी में तैरते थे। वाल्मीकि रामायण में तैरने और उड़ने दोनों ही शब्द एक-दूसरे की जगह प्रयुक्त हो सकते हैं। भारत के प्रत्येक गाँव में एक ग्राम्यदेवी होती है जो उस गाँव की रक्षा करती है जैसे मुंबई की मुम्बा देवी, कोलकाता की काली देवी, चंडीगढ़ की चंडिका देवी तथा नैनीताल की नैनी देवी विख्यात है। भारत के अधिकांश किलों का नामकरण दुर्ग के रूप में किया जाता है क्योंकि वे दुर्गा देवी शेर पर सवार तथा हाथों में हथियार लिए उन राजाओं तथा किलों की रक्षा करती है। इस तरह लंका भी कोई अपवाद नहीं है। लंका शहर की रक्षा देवी ताड़का तथा लंकिनी द्वारा की जाती है। लंकिनी की तुलना ग्रीक माइथोलोजी के Amazon (योद्धा स्त्री) से की जाती है। चंद्रगुप्त मौर्य की सेना में भी महिला योद्धा होती थी। बंगाल में राम के द्वारा दुर्गा को अपनी आँख की आहुति देने की कहानी लोकप्रिय है। दशहरे के समय अभी भी कई गांवों में देवी के समक्ष एक सौ आठ कमल तथा एक सौ आठ दीप जलाने की प्रथा है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने बंगाली रामायण की इस घटना पर आधारित राम की शक्ति-पूजा कविता लिखी थी, जो यह प्रदर्शित करती है कि आदमी को लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत त्याग भी करना पड़ता है। दुर्गा, कालिका का कम जंगली रूप है, मगर गौरी से कम घरेलू है। वह दुल्हन और योद्धा के बीच में ठहरती है, काली, राक्षसों से ज्यादा जुड़ी हुई है और दुर्गा राम से, जो की सभ्यता का प्रतीक है, रावण से नहीं। वाल्मीकि रामायण में इन्द्र राम के लिए रथ और सारथी भेजता है, क्योंकि रावण

बिना रथ वाले योद्धा से लड़ने के लिए इन्कार कर देता है। दक्षिणी पश्चिमी एशिया की लोक कथाओं में रावण को मारने वाला लक्ष्मण को बताया गया है राम को नहीं। जिन कथाओं के अनुसार किसी भी कहानी में एक क्रोधी नायक (वसुदेव), एक शांत करनेवाला नायक (बलदेव) और एक खलनायक(प्रति वसुदेव) होता है। रामायण की कहानी भी कुछ इस तरह ही है। राम बलदेव का रोल कर रहे हैं, रावण प्रति-वसुदेव तो लक्ष्मण वसुदेव। इसका मतलब लक्ष्मण रावण को मारेगा, न की राम। भील रामायण में लक्ष्मण मधुमक्खी को मारता है, जिसमें रावण के प्राण होते हैं। तमिल रामायण के अनुसार राम का एक धनुष रावण के शरीर को बार-बार भेदता है और उस हृदय को जिसमें सीता का स्थान होता है। लाओस के रामायण में फ्रा लाम (राम) को जीवन के शुरूआती वर्षों में बुद्ध के रूप में जाना जाता है और रावण को इच्छा राक्षस 'मारा'के रूप में प्रकट किया है। तेलुगू कथा के अनुसार राम रावण की नाभि में तीर मारने से इन्कार कर देता है। युद्ध संहिता के अनुसार तीर केवल दुश्मन के चेहरे पर मारे जाने का नियम है। मगर हनुमान अपने पिता वायुदेव से राम के धनुष की दिशा बदलकर रावण की नाभि की और कर देता है। दशहरे के दिन राजस्थान के मुद्गल गोत्र के दवे ब्राह्मण रावण के लिए श्राद्ध रखते हैं और उसी दिन कानपुर में रावण के मंदिर के दरवाजे खुले रखे जाते हैं। यह मंदिर 19वीं सदी में बनाया गया था और रावण को शिव और शक्ति पीठ के संरक्षक के रूप में देखा जाता है।

थाइलेंड में आज भी कई मंदिरों में रावण को मंदिरों का दरबान तथा संरक्षक माना जाता है। राम और रावण दोनों शिव भक्त थे। अयोध्या (उत्तर प्रदेश), चित्रकूट (उत्तर प्रदेश), पंचवटी (महाराष्ट्र), किष्किन्धा (कर्नाटक), रामेश्वरम् (तमिलनाडु) आदि के शिव-मंदिर राम से संबंध रखते थे; वहीं गोकर्ण (कर्नाटक), मुर्देश्वर (कर्नाटक), काकीनाड़ा (आंध्रप्रदेश), वैद्यनाथ (झारखंड) आदि शिव मंदिर रावण द्वारा बनाए जाने की मान्यता है।

रामायण के बारे में कहा जाता है कि यह किसी नायक के विजय की गाथा नहीं है, वरन् ज्ञान संचरण के साथ-साथ यह याद दिलाती है कि सामग्री का युद्ध कम बल्कि विचारों का युद्ध ज्यादा है। किसी आदमी को देखना दर्शन है, इसका मतलब यह नहीं है कि आप उसे साधारण दृष्टि से देखें, बल्कि दूसरों के चरित्र के अंदर इतनी गहराई से झाँकना है कि उसे अपना चरित्र नजर आए। रामायण में राम लक्ष्मण को इसलिए डाँटते है कि वह अपना निर्णय लेने में बहुत जल्दबाजी करता है और अपनी भावनाओं से ज्यादा प्रभावित रहता है, वस्तुओं की ओर गहरी दृष्टि से नहीं देख पाता है। भारत में स्त्रियों के प्रति गहरे विक्षोभ का कारण राम का अपनी पत्नी की तुलना में परिवार को ज्यादा महत्व देना है। पारंपरिक समाज में नववधू को निम्न स्तर से देखा जाता है, जब तक कि वह घर की मुखिया न बन जाए, उसे अधिकार नहीं

दिया जाता। इसके पीछे डर का कारण यह है कि कहीं पत्नी अपने पति को अपनी उँगलियों पर न नचाए और उसका पुत्र घर की गिरफ्त से भाग कर न चला जाए।

शाक्त हिन्दुत्व की एक शाखा पंद्रहवीं शताब्दी में अद्भुत रामायण में दृष्टांत पेश करती है कि रावण से भी ज्यादा शक्तिशाली सौ या हजार सिर वाले राक्षस का सीता वध करती है, न की राम। ओड़िया सारला दास की 'बिलंका रामायण' में सीता की ऐसी ही कहानी मिलती है। अदभुत रामायण में देवी के भयानक चंडी रूप से सभ्य मंगल रूप में बदलने का उल्लेख आता है। जिस रूप की मंदिरों में पूजा की जाती है, कपड़े, जेवर, प्रसाद, चढ़ाए जाते हैं और पूजा अर्चना की जाती है कि मानवता के लाभार्थ स्वेच्छा से यह रूप धारण करें। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से दोनों दशरथ और रावण राम के पिता तुल्य हैं। मगर दोनों राम को कष्ट देते हैं, एक उसे अयोध्या से निकाल देता है, तो दूसरा सीता का अपहरण कर देता है। पहले में राम अपने गुस्से को अभिव्यक्त नहीं कर पाता है, बल्कि दूसरे में वह बंदरों के द्वारा वह अपने सीमित क्रोध को उजागर करता है। श्री वैष्णव साहित्य में सीता ने रावण को अपनी इच्छा से मरने का सामर्थ्य दिखलाया है, मगर राम के कहने पर वह ऐसा नहीं करती है।

- **<u>पुष्पक विमान</u>** - पद्म पुराण के अनुसार राम और दूसरे लोग उड़कर घर जाते हैं, क्योंकि समुद्र पर बना हुआ वह पुल तोड़ दिया जाता है। विभीषण राम को बंदरों द्वारा निर्मित पुल को तोड़ने का आग्रह करता है, ताकि लंका पर विदेशी आक्रमण न हो सके। कलाकार विमान या उड़ने वाले रथ को अलग-अलग ढंग से देखते हैं। कभी-कभी उसे 'शगड़' या रथ, जो की गधों, घोड़ों द्वारा खींचा जा रहा हो, तो कभी-कभी उनकी संरचना में पंख लगे हुए दिखाया जाता है। पारंपरिक हिन्दू या जैन मंदिर को भी विमान कहा जाता है, जो कि स्वर्ग और मृत्युलोक की यात्राएँ कराते हैं। ग्रीक माइथोलोजी में उड़ते हुए देवताओं और नायकों के बारे में सुनने को मिलता है। जेउस(Zeus) के ईगल (eagle)होते हैं, बेल्लोफोम(Bellrophom)के पास उड़ने वाले घोड़े होते है, हेर्मेस(Hermes) के पास पंख लगे जूते होते हैं और मेडेय(Medea)के पास उड़ने वाले सापों का रथ होता है। संस्कृत काव्य में (वाल्मीकि से प्रारम्भ कर) अंतरिक्ष से पृथ्वी को देखने का वर्णन मिलता है।
- **<u>रामेश्वरम्</u>** - रामेश्वरम में तीर्थ यात्री बालुका शिवलिंग बनाते हैं जो कभी शिव को प्रसन्न करने के लिए राम और सीता ने बनाए थे, रामेश्वर मंदिर में दो शिवलिंग है, एक नहीं। कहानी इस तरह शुरू होती है कि राम ने हनुमान को काशी जाकर शिवलिंग लेने के लिए भेजा। मगर वह बहुत समय तक नहीं आए तो राम ने बालुका शिवलिंग लाने के लिए सीता से कहा। जैसे ही पूजा पाठ शुरू होने जा रहा था, वैसे ही हनुमान जी शिवलिंग लेकर वहाँ पहुँच जाते हैं और उसका इंतजार नहीं करने के

कारण क्रोधित होते हैं। हनुमान अपनी पूंछ से सीता के उस बालुका शिवलिंग को तोड़ने का प्रयास करते है, मगर असफल रहते हैं। हनुमान को खुश करने के लिए सीता की शिवलिंग के पास हनुमान जी का शिवलिंग रखकर राम पूजार्चना करते हैं। मध्ययुग में राम को ब्रह्महत्या पाप से मुक्त करने के लिए तरह-तरह के कथानक सामने आए हैं। दक्षिण में रामेश्वरम तथा उत्तर में ऋषिकेश, ऐसे तीर्थस्थान हैं जहाँ राम ने रावण की याद में श्रद्धाञ्जलि पूर्वक आराधना की। भक्तिमार्ग के विपरीत एक दूसरा और मार्ग होता है,जिसे विपरीत भक्ति या रिवर्स डिवोशन कहते हैं। इसके अनुसार भगवान को लगातार गाली देने अथवा भगवान का दुश्मन बनने का अर्थ है। भगवान को इतनी बार याद करना कि वह उनकी दिव्य अनुकंपा का पात्र बन जाते हैं। रावण भी ऐसा ही एक पात्र है। जैन और बुद्ध परम्पराओं में रावण को कुछ कमजोरियों वाला बुद्धिमान पुरुष माना गया है। जैन परंपरा में वह साधु के रूप में पुनर्जन्म लेता है और बुद्ध परंपरा में उसे बुद्ध के रूप में माना गया है।

रावण का जन्म एक बुद्धिमान पुजारी के रूप में होता है और वह राजा के रूप में काम करता है। इसके बावजूद भी उसे बुद्धि प्राप्त नहीं होती है। भले ही,उसके पास अपार धन, शक्ति और ज्ञान क्यों न हो। हनुमान का जन्म बंदर के रूप में होता है और वह सूरज से शिक्षा प्राप्त करता है, न उसका कोई सामाजिक रुतबा होता है अथवा उसके पास धन दौलत होती है, मगर राम की सेवा के द्वारा अपने ज्ञान और शक्ति के उद्देश्य के बारे में समझ जाता है। इस तरह वह बुद्धिमानी का प्रतीक माना जाता है। रावण और हनुमान के दोनों चरित्रों में विरोधाभाव संयोग-वश नहीं है, बल्कि विचारों को समझने के लिए रचनाकर ने प्रस्तुत किया है। कन्नड़ रामायण में अपनी हड्डियों के चारों तरफ, राम के नाम लिखे जाने के उद्देश्य को प्रस्तुत किया है। सीता और राम को हनुमान द्वारा अपने हृदय में दिखाना लोगों की कल्पनाशक्ति को जागृत करना है। ओड़िया रामायण में सुग्रीव जब सीता के पाँव को देखता है तो वह सोचता है, बाकी उसका शरीर कितना सुंदर होगा। राम सुग्रीव को कहता है कि अगले जन्म में वह एक स्त्री से शादी करेगा,जो सीता का दूसरा रूप होगा, वह राधा कहलाएगी। मगर उन दोनों का संबंध कभी भी अपने चरम तक नहीं पहुँच पाएगा।

- **रामनाम** - हनुमान को बहुधा लाल रंग से दिखाया जाता है जो कि देवी का रंग है। कुछ ऐतिहासिक कहते हैं कि पुराने आदिवासी देवता जिसे यक्ष कहा जाता है, वे खून में नहाए हुए थे। जो कालान्तर में लाल रंग का प्रतीक बन जाता है। आधुनिक समय में हनुमान को केसरिया रंग से दिखाया जाता है, जो ब्रह्मचर्य के रंग का प्रतीक है।

उत्तर भक्तिकाल में देवता और भक्त के बीच लड़ाई होना सामान्य बात है, भक्त देवता का नाम उच्चारण कर अपनी रक्षा करता है। कहने का अर्थ यह है कि देवता का नाम देवता की प्रतिमा से ज्यादा महत्व रखता है अर्थात् राम का नाम, राम के रूप से ज्यादा महत्वपूर्ण है। यह सबसे बड़ा मंत्र है जो मंदिरों में जाने से भी ज्यादा मायने रखता है। यह प्रदर्शित करता है कि धीरे-धीरे सगुण भक्ति कम होती जाती है और निर्गुण भक्ति बढ़ती जाती है। कबीर और नानक (15वीं से 18वीं शताब्दी) के संतों ने अलौकिकता की कल्पना के लिए राम को व्यक्ति के रूप में स्वीकार नहीं किया। आज भी भारत में कई जगह पर अभिवादन के लिय 'राम राम' शब्द का प्रयोग किया जाता है। अंत्येष्टि कर्म के दौरान भी अधिकांश हिन्दू "राम राम या राम नाम सत्य" है (राम का नाम ही सत्य है) का उच्चारण करते हैं। रामायण के अनुसार राम सगुण नायक अथवा निर्गुण राम के रूप में निराकार अलौकिकता को प्रकट करते हैं। राम रसिकों की धारणा है कि राम को न तो वनवास हुआ था, न ही सीता का अपहरण। यह तो केवल राम और सीता द्वारा भ्रम फैलाया गया, उन लोगों के लिए जो थ्रिल ऑफ एडवेंचर को पसंद करते थे। राम रसिक ध्यान के माध्यम से अपने मन में स्वर्ग की कल्पना करते हैं,जिसे साकेत कहा जाता है और कनक भवन प्रासाद,जहाँ वे राम और सीता के अंतरंग संबंधों को देखकर शांति प्राप्त करते है। कोई-कोई राम रसिक अपने आपको जनक का भाई मानकर (सीता के चाचा) मानकर अयोध्या में भोजन ग्रहण नहीं करते हैं, अपने दामाद का घर समझकर। दूसरा राम रसिक अपने आपको सीता का छोटा भाई समझते हैं और यह सोचकर अयोध्या जाते हैं कि सीता उसे मिठाई खिलाएगी और कोई राम रसिक सीता के लिए खिलौने खरीदकर ले जाता है। इस तरह दैविक जोड़ी के साथ वे अपने संबंधों को अभिव्यक्त करते है। कृष्ण के विपरीत राम को कभी भी यौनावेग(eroticism)से नहीं जोड़ा गया। मगर 19वीं शताब्दी में ओड़िआ कवि उपेन्द्र भंज ने इस संबंध में वैदेही विलास नामक ग्रन्थ की रचना की है। कईयों के अनुसार रामायण रामवेद है,जो राम और सीता के संबंधो को दर्शाता है। मानो एक मंत्र हो तो दूसरा उसका अर्थ। दोनों का एक दूसरे के बिना अस्तित्व नहीं है। पारंपरिक तौर पर सीता के नाम के पीछे राम का नाम जोड़ा जाता है, जैसे "जय सिया राम" (सीता के राम की जय हो) यद्यपि कई जगह पर स्त्री लिंग शब्द से हटाकर लोग "जय श्री राम" कहना पसंद करते हैं। मगर

कई लोग तर्क करते हैं कि श्री = Mr. के तौर पर प्रयुक्त नहीं होता है। श्री वैदिक नाम है धन संपति की देवी का। 17वीं शताब्दी में एनोना (Annona) संवर्ग के लैटिन अमेरिका के फल जब भारत पहुँचते हैं तो उन्हें लोकप्रिय बनाने के लिए भारतीय नाम दिए जाते हैं जिनमें सीता-फल (सीता का फल) यानि कस्टर्ड एप्पल(Custard Apple) तथा राम-फल (राम का फल) (Bull' heart) प्रचलित है। इसी तरह लक्ष्मण-फल और हनुमान-फल भी होते हैं।

- **राम निर्णय** - वाल्मीकि रामायण में भद्र नामक जासूस द्वारा राम के राज्य में लोगों द्वारा कही गई बातों की सूचना मिलती है। जब राम उसे केवल सकारात्मक बाते कहने के लिए डाँटते हैं तो भद्र नकारात्मक बातें शुरू करता है। राम को पुरुषोतम कहा जाता है जिसका अर्थ एक आदर्श व्यक्ति से होता है, इसलिए यह जानना स्वभाविक है कि एक आदर्श व्यक्ति महिलाओं के साथ किस तरह व्यवहार करता है। मगर राम केवल पुरुषोत्तम ही नहीं है, वह मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, जो नियम, नियमों की सीमा को जानते हैं और उनका सम्मान करते हैं और नियम और कानून को जानने वाले पैतृक रूप से अत्याचारी होते हैं, क्योंकि वे उचित आचरण के लिए कृत्रिम सौपानिकी का निर्माण करते हैं। कृष्ण भी पुरुषोत्तम हैं, मगर लीला पुरुषोत्तम, जो जीवन जीने की आवश्यकता पर बल देते हैं, न कि उसे गंभीरता से लेते हैं। तेलुगू लोक कथाओं में सीता की बहनें, जो कि उसके पास खड़ी होती हैं, वे भी महलों से अपने निष्कासन की माँग करती हैं। क्योंकि उनका भी यही कहना होता है रावण के बारे में उन्होंने भी सोचा है।
- **वापस वनगमन** - मराठी लोक गीतों में सीता के वनगमन के दौरान गर्भवती होने का उल्लेख मिलता है कि सीता की खुशी से किस तरह दूसरी औरतें ईर्ष्या करती हैं और उसे कष्ट देना चाहती हैं। जंगल जाते समय सीता गंगा में कूद कर अत्महत्या करना चाहती है, इसलिए शायद इसे जंगल भेजा जाता है। पद्मपुराण के अनुसार, बचपन में सीता दो तोतों की कहानी सुनती है। सीता शायद यह समझती है कि वे झूठ बोलते हैं और शेष कहानी सुनने के लिए उस पर दबाब डालती हैं, जिनमें से एक मर जाता है और सीता को वन गमन का अभिशाप देता है।
- **राम के निर्णय का लक्ष्मण द्वारा अनुपालन** - गंगा घाट के लोक गीतों में सीता लक्ष्मण को पानी लाने के लिए कहती है, तो वह कहता है आस-पास में कोई पानी का स्रोत नहीं है, तो वह कहती है अपने धनुष द्वारा पृथ्वी को भेदकर पानी निकालने

के लिए। तो लक्ष्मण उसे खुद करने के लिए कहता है, ताकि उसे रथ नहीं रोकना पड़े तो सीता अपने सतीत्व के प्रभाव से एक कुँए का निर्माण करती है। यह घटना लक्ष्मण के लिए सिद्ध करती है कि वह वास्तव में सती है और उसने अग्नि परीक्षा से लेकर कभी भी रावण के बारे में नहीं सोचा है। प्रादेशिक रामायणों में या लोक कथाओं में राम, लक्ष्मण को सीता की हत्या कर उसकी मौत के प्रमाण लाने के लिए कहता है, या तो उसकी आँखें या उसका खून। मगर लक्ष्मण सीता को छोड़ देता है और उसकी जगह हिरण की आँखें ले जाता है। भील गानों में राम चाहता है कि लक्ष्मण सीता की हत्या करे, मगर उसे गर्भवती जानकार ऐसा नहीं करता। तेलगू गानों में सीता को मरा हुआ समझकर राम उसकी अन्त्येष्टि भी कर देते हैं। उत्तर रामायण पढ़ने के लिए मना किया जाता है, क्योंकि इस दुखान्त कहानी से धरती माता (सीता की माँ) दुखी हो जाती है, जिसकी वजह से भूकंप आने लगते है। जब लक्ष्मण महलों में लौटते है तो प्रकृति के यथार्थ पर राम के साथ उनकी दार्शनिक बाते होती हैं, जिसे अध्यात्म रामायण में रामगीता के रूप में जाना जाता है।

- **<u>शूर्पणखा द्वारा सीता को रुलाना</u>** - कई लेखक सोचते हैं कि शूर्पणखा का क्या हुआ? कई गाथाएँ राम द्वारा सीता के निष्कासन को दायी मानते हैं, तो कोई लेखक पितृसत्तात्मक समाज को उसका कारण मानते हैं, जबकि दूसरे, औरतों की ईर्ष्या का परिणाम समझते हैं। सुश्रुत संहिता में कटे नाक की सर्जरी के द्वारा यह अनुमान लगाया जाता है कि रावण के सर्जनों ने शूर्पणखा की नाक ठीक कर दी होगी। राजस्थानी लोक गाथाओं में शूर्पणखा के पुनर्जन्म की कहानियाँ मिलती हैं। वह फूलवती के रूप में जन्म लेती है और लक्ष्मण महान लोक नायक पाबूजी के रूप में जन्म लेते हैं। उनके भाग्य में शादी का संजोग होता है, मगर पाबूजी कभी ही इस संबंध को स्वीकार नहीं करता है। लक्ष्मण की तरह वह भी ब्रहमचारी योद्धा के रूप में रहते हैं और और सूपर्नखा का प्यार फिर अधूरा रह जाता है।
- **<u>चोर जो कवि बन जाता है</u>**:- पुराने ग्रन्थों में वाल्मीकि को प्रचेत या भार्गव कुल का ऋषि बताया गया है,जबकि मध्ययुगीन शास्त्रों में उसे अपने परिवार का निर्वाह करने के लिए चोरी करने वाला निम्न जाति का सदस्य बताया है। यह दोनों विरोधाभासी तथ्य नहीं हैं, क्योंकि उस समय ऋषि किसी भी जाति का हो सकता था। कुछ कहानियों में जैसे स्कन्द पुराण, आनंद रामायण, अध्यात्म रामायण में सन्त ऋषि या नारद के आशीर्वाद से रत्नाकर वाल्मीकि बन जाता है। सारला दास की ओड़िआ विलंका रामायण के अनुसार नदी के किनारे बालू पर ब्रहमा के पसीने की बूंद गिरने से वाल्मीकि का जन्म होता है। उत्तर भारत में नीची जातियाँ जिसमें स्वीपर

(sweeper) और मोची (cobbler) आते हैं, वे वाल्मीकि को अपना आदि(patron) संत मानते हैं। राम को पतितपावन कहा गया है। जिसका अर्थ पतितों का उद्धार करने वाला। कुछ साधुवादी रामायण को जातिप्रथा से मुक्ति दिलाने वाला आइकॉन मानते हैं। 17वीं शताब्दी में चंपा (आधुनिक वियतनाम) में वाल्मीकि का मंदिर बनाया गया है, और उन्हें विष्णु भगवान का अवतार माना जाता है। पारंपरिक तौर पर वाल्मीकि का आश्रम उत्तर प्रदेश के बान्दा जिले में है। वाल्मीकि की पूरी रामायण अनुष्टुप छन्द में लिखी गई है।

- **<u>जुड़वाँ बच्चे</u>** - वाल्मीकि रामायण में सीता को जुड़वा बच्चों को जन्म देते दिखाया है। जबकि कथा सरित्-सागर और तेलुगू लोक संगीतों में वाल्मीकि द्वारा कुश-घास के माध्यम से दूसरे पुत्र की उत्पत्ति होती है। हिन्दुत्व में सम-मिति (symmetry) का ज्यादा महत्व है। देवताओं की दो पत्नियाँ होती हैं एक इधर,एक उधर। देवी के दो बच्चे होते हैं जैसे (गौरी के गणेश और कार्तिकेय)। दो भाई होते हैं जैसे- पूरी में (सुभद्रा के साथ जगन्नाथ और बलभद्र)। दो योद्धा होते हैं जैसे उत्तर भारत के शेरवाली मंदिरों में- भैरव और लंगुभीर या हनुमान। इसी से यह अनुमान लगाया जाता है कि सीता के दो पुत्र symmetry की विचार धारा को प्रतिपादित करते हैं। रावण के दश सिर देखने में asymmetrical लगते हैं। मुख्य सिर के एक तरफ चार तो दूसरे तरफ पाँच सिरों का होना अस्थायीत्व प्रदर्शित करते हैं।
- **<u>हनुमान की रामायण -</u>** कई लोक कथाओं में रामायण का स्रोत हनुमान को माना गया। वाल्मीकि ने वही लिखा जो उसे हनुमान ने बताया। इसके पीछे कहने का यह उद्देश्य है कि सारे कथानक अपूर्ण हैं तथा किसी भी रचनाकार को उनकी रचनाओं की पूर्णता पर घमंड नहीं होना चाहिए। कुछ संस्करणों में हनुमान पत्थरों पर रामायण लिखते हैं, बल्कि दूसरे संस्करणों में उन्हें बड़ के पत्तों पर रामायण लिखते हुए दिखाया गया है, जिन्हें हवा भारत के अलग-अलग हिस्सों में उड़ा देती है।
- **<u>शत्रुघ्न द्वारा रामायण सुनना</u>** - वाल्मीकि रामायण में राम अपने भाइयों को अलग-अलग स्वतंत्र राज्य की स्थापना करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। मगर लक्ष्मण और भरत मना कर देते है। जबकि शत्रुघ्न लवण असुर को हराने के बाद स्वतंत्र राज्य स्थापना करने का साहस करता है। रास्ते में लौटते समय वाल्मीकि आश्रम में रुकता है और उनकी रचना रामायण को दो युवा बच्चों द्वारा गाते हुए सुनते हैं। वह उन्हें अयोध्या में गाने के लिए आमंत्रित करता है। क्या वह अपने भतीजों को पहचान लेता है? क्या वह राम के परिवार को मिलाना चाहता है? क्या रामायण में शत्रुघ्न को केवल इतनी ही भूमिका दी गई है। शत्रुघ्न रामायण में भरत की छाया से ज्यादा

कुछ नहीं है तथा उत्तर रामायण में लवण असुर को हराने के। लोक कथाओं में यह भी उल्लेख आता है कि लक्ष्मण सीता से चुपके-चुपके कई बार मिलते हैं। एक बार वह अपने बच्चों को दिखाने के लिए राम को ले जाते हैं। राम को देखकर वे उस पर कीचड़ फेंकते हैं।

- **अयोध्या** में **मनोरंजन** - सोने को शुद्ध धातु समझा जाता है, इसलिए राम ने सीता के प्रतिबिम्ब इसी धातु का प्रयोग करते हुए बनाया है। "कुशिलव" कहने का तात्पर्य घुमक्कड़ गायकों से हैं। जो राम के मौलिक पुत्र का दावा करते हुए राम से अपने पत्नी के परित्याग के निर्णय पर प्रश्नवाचक चिह्न खड़ा करते हैं। क्या उन्होंने अपने संदेह के कारण सीता का परित्याग किया? क्या वह लोगों की संतुष्ट करना चाहते थे या फिर समाज की धारणा के प्रति आवाज उठाना चाहते थे? जैन रामायण में (योग शास्त्र के रचयिता हेमचन्द्र के अनुसार) राम सीता को खोजने के लिए जंगल में जाते है, मगर उसे नहीं पाकर जंगली जानवरों द्वारा मरा हुआ जानकार उसकी अंत्येष्टि कर देते हैं। तेलगु लोक गीतों में घर की स्त्रियों द्वारा सीता के सोने के पुतलों को नहलाने का जिक्र आता है। राम की बड़ी बहन के साथ घर की स्त्रियाँ यह करने से इंकार कर देती है।
- **राम का घोड़ा** - वाल्मीकि रामायण में राम के घोड़े का कोई उल्लेख नहीं है, मगर आठवीं शताब्दी के संस्कृत नाटक भवभूति के उत्तर राम चरित तथा 14वीं सदी के पद्मपुराण के पाताल खण्ड में आता है। राम और उसकी सारी सेना सीता के पुत्रों को हराने में असमर्थ होने का अर्थ अनुचित समाज को नकारने से है। कथकली नृत्य के समय सीता की अनुपस्थिति देखकर हनुमान अवसाद ग्रस्त हो जाते हैं, और वह उन्हें जंगल में खोजने के लिए निकल पड़ते हैं। जहाँ सीता के पुत्र उन्हें पकड़कर बांध लेते हैं। तब हनुमान उन्हें सीता का पुत्र होने का अनुमान लगाते हैं। असमी और बंगाली कथाओं में लव-कुश न केवल राम को हराते हैं, बल्कि वे उन्हें जान से मार देते हैं और उनका मुकुट माँ के पास ले जाते हैं, जिसे देखकर सीता पूरी तरह डर जाती है। वह भगवान से प्रार्थना कर उन्हें जिंदा कर देती है। इस तरह सीता अपने साथ गलत किए हुए काम का बदला लेती है। अश्वमेघ यज्ञ के पीछे उद्देश्य यह है कि चक्रवर्ती राजा बनने के लिए कम से कम सेना का प्रयोग किया जाय। राम अपने प्रभुत्व को बढ़ाना चाहते हैं मगर मानवीय सीमाओं के तौर पर उसके पुत्र उसका विरोध कर देते हैं। कोई भी नियम पूरी तरह से उचित नहीं है। कोई न कोई उस वजह से पीड़ित अवश्य होता है और जो पीड़ित होता है वह उसका प्रतिरोध करता है। गौरी कभी भी संप्रभुत्व-शाली नहीं होती है, बल्कि काली होती है। रामायण के परवर्ती भागों में दसवीं

शताब्दी के संस्कृत नाटक चलित राम के लेखक की जानकारी नहीं है और यह नाटक पूरी तरह से उपलब्ध भी नहीं है। इस नाटक के अनुसार राक्षस रावण कैकेयी और मंथरा के वेश में अपने जासूसों को सीता के चरित्र पर संदेह करने के लिए भेजता है। लव और कुश जंगल में राम के घोड़े को पकड़ते है, मगर लड़ाई में लव पकड़ा जाता है और अयोध्या ले जाया जाता है, जहाँ वह सीता की सोने की मूर्ति देखता है और उसे अपनी माँ के रूप में पहचान लेता है।

<u>सीता का धरती में समाना</u> - राम से मिलने का इंतजार कर सीता ने संस्कृति और सामाजिक नियमों से मुँह मोड़ लिया। उसे अब अपने स्टेट्स के लिए सामाजिक मर्यादाओं की आवश्यकता नहीं थी। इसलिए उन्होंने धरती का चयन किया। जहाँ न कोई नियम है,न कोई सीमा। अधिकांश रामायण कथाकार राम द्वारा सीता के परित्याग की चर्चा अवश्य करते हैं। मगर राम के द्वारा पुनर्विवाह के लिये इन्कार तथा सीता के धरती में समा जाने के बाद अपने जिंदा रहने की बात नहीं करते हैं। इस तरह अधूरे विवरण राम को स्त्री के प्रति दृष्टिकोण से पूरी तरह अलग करते हैं। पश्चिम में इस तरह की घटनाओं की खूब तारीफ की जाती है। शायद यह भारतीयता और भारत की एक विशेष छवि है। गोविंद रामायण के अनुसार लव और कुश द्वारा राम को हराने के पश्चात राम सीता को लेकर अयोध्या लौट जाते हैं और दश हजार साल तक शासन करते हैं। मगर महल की स्त्रियाँ सीता का ध्यान रावण की तस्वीर की तरफ खींचती है, जिससे राम अपने आपको असुरक्षित एवं ईर्ष्यालु अनुभव करने लगते हैं और फिर से सीता के सतीत्व की परीक्षा की माँग करते हैं। इस बार सीता धरती में समा जाती है।

दूसरी लोककथाओं में सीता अयोध्या जाने के लिए इंकार कर देती है, मगर जब उसे कहा जाता है, कि राम मर गए हैं तो वह अयोध्या की तरफ दौड़ती है। जहाँ जाकर उसे पता चलता है कि राम जिंदा है और उसे धोखा दिया गया है तो वह धरती से फटने के लिये आग्रह करती है। आसामी रामायण में हनुमान सीता की खोज में पाताल लोक जाते हैं और उसे राम के पास आने के लिए मना लेते हैं। हरियाणा में करणाल जगह पर सीता माई का एक मंदिर है, जिसमें जमीन पर वह स्थल दिखाया गया है, जहाँ से धरती फटी थी और सीता उसमें समा गई थी।

<u>राम की निसंगता</u>- क्या वफादारी एक गुण है? वाल्मीकि रामायण में यह सवाल अत्यन्त ही लोकप्रिय है, जिसके आधार पर अपने भाई के प्रति प्रेम के खातिर लक्ष्मण ने अपनी जिंदगी दाँव पर लगा दी। न तो उसे नियमों की परवाह थी और न ही अयोध्या के लिए मोह। राम के लिए अयोध्या नियमों से ज्यादा महत्वपूर्ण होती है। यद्यपि अपने क्रूर व्यवहार के आधार पर राम ने लक्ष्मण को धर्म के पालन की शिक्षा दी और यहाँ तक कि राम का अंधानुकरण करने के लिए मना किया। कुत्ता यद्यपि वफादार और प्रिय जानवर है, मगर हिन्दू शास्त्र उसे शुभ नहीं मानते। शायद कुत्ते की वफादारी डर पर आधारित है और वैदिक शास्त्रों का मुख्य उद्देश्य दिमाग का

विस्तार कर डर से मुक्ति पाने का है। राम का सहारा लिया जा सकता है और लक्ष्मण राम पर निर्भर करते हैं। इस कहानी के माध्यम से राम चाहते हैं कि लक्ष्मण अपनी निर्भरता से ऊपर उठकर ज्यादा आश्रय देने योग्य बनें। अतः "सिर काट दिया गया", मेटाफर दिमाग के विस्तार का प्रतीक हैं।

जैन उदाहरणों में लक्ष्मण के मरने पर राम रोते हैं। तब एक जैन साधु चट्टान से पानी निकालते हुए कहते हैं कि उसके आँसू एक लाश को जिंदा नहीं कर सकते हैं। जिस तरह चट्टान का पानी कुआँ, पेड़ पौधों की उत्पत्ति नहीं कर सकता है।

इस तरह रामायण हमें नियमों को ज्यादा मानने के खतरों के प्रति सचेत करता है। इससे यह प्रदर्शित होता है वह आदमी जो सारी चीजों की तुलना में नियमों को ज्यादा मानते हैं, उसके व्यक्तित्व का सहारा लिया जा सकता है, उसके बारे में कुछ कहा जा सकता है, मगर वह अच्छा इन्सान नहीं हो सकता। कृष्ण नियमों से ऊपर उठकर देखते है और मानवीय गुणों को ज्यादा तव्वजो देते हैं। रामायण और महाभारत दोनों का उपसंहार मृत्यु है और जो बुद्धि मृत्यु का पीछा करती है, वही मृत्यु सुखांत है।

- **अयोध्या का सिंहासन -** वैदिक विचारों को सामान्यतया वेदान्त कहा जाता है जो आत्मा और परमात्मा के संबंधों की पुष्टि करता है। यह द्वैतवाद है। जिसके अनुसार आत्मा यह अनुभव करती है कि परमात्मा के बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं है और परमात्मा यह अनुभव करते हैं कि आत्मा के बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं है। यह अद्वैतवाद है। सीता के धरती में समा जाने के बाद धीरे-धीरे राम की सांसारिक आकर्षणों से रुचि खत्म होने लगी और वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड के अनुसार राम सरयू नदी में जाकर जल समाधि ले लेते हैं। आधुनिक संवेदनाओं के अनुसार इस तरह किसी राजा की जल समाधि लेना आत्महत्या की दृष्टि से देखा जाता है। मगर भक्तों के अनुसार इसे मुक्त आत्माओं द्वारा स्वेच्छा से शरीर त्यागने की प्रक्रिया वाली समाधि की दृष्टि से देखा जाता है। आज भी यह प्रथा जैन साधुओं तथा हिन्दू संतों जैसे ज्ञानेश्वर आदि में देखी जाती है। राम ने गर्भ से जन्म लिया तो मृत्यु निश्चित है। दुनिया में ऐसे भी कोई स्थायित्व नहीं है। मगर हनुमान चिरंजीवी तथा अमर है। शायद अपने ब्रहमचर्य के कारण। ग्रहस्थ राम की मृत्यु होती है, मगर साधु हनुमान की नहीं। भारतीय मिथकों में इस तरह की सारी संभावनाएँ देखी जाती हैं। जब कभी भी रामायण का पाठ होता है तो श्रोताओं में एक जगह हनुमान जी के लिए खाली छोड़ी जाती है। कई कथाओं के अनुसार लव और कुश दो अलग-अलग नगरों के उत्तराधिकारी बनते हैं, श्रावस्ती तथा कुशावती। बाद में लव अयोध्या को लौटते हैं और उसे खंडहर के रूप में पाते हैं। जिसका जीर्णोद्धार कर पुरानी कीर्ति को प्राप्त करते हैं।

कालिदास के रघुवंश में राम के उत्तराधिकारियों की कहानी है, जो अग्निवर्मा पर जाकर समाप्त होती है जो कि एक बिगड़ैल, सुखवादी भोगी राजा है, जो अपना सारा समय रानियों के साथ बिताता है और जब भी जन सुनवाई की जाती है, तो वह खिड़की से अपना पाँव दिखाता है। वह इतना आलसी है कि बिस्तर से उठ भी नहीं पाता है। आखिरकर वह मर जाता है और उसके सिंहासन पर गर्भवती रानी को बिठाया जाता है।

केरल में हिन्दू लोगों द्वारा मानसून के महीने में 16वी शताब्दी में एज़हुथचन (Ezhuthachan)द्वारा मलयालम में लिखी सम्पूर्ण रामायण गाथा को गाया जाता है। भारतीय मिथकों में अनेक राम हैं तो अनेक रामायण भी। जो यह दर्शाते हैं जीवन एक सरल रेखा नहीं है, कहीं पर पूर्ण विराम भी नहीं है। जीवन एक चक्र है, जो जाता है, वही आता है। इस तरह समय के विचार कभी भी इतिहास का आदर नहीं करते हैं। जो भूतकाल था, वही भविष्य होगा। इसलिए अनेक भारतीय भाषाओं में बीते हुए और आनेवाले दोनों दिनों के लिए “कल” का प्रयोग किया जाता है। महाभारत की तरह रामायण भी एक इतिहास है, जिसका दो भागों में अनुवाद किया जा सकता है। पहला- प्राचीन घटनाओं के रिकार्डों का लेखाजोखा। दूसरा- ऐसी कहानी जो कालजयी है। इस तरह पाँच हजार साल या उससे पूर्व गंगा के मैदानी घाटों पर एक कवि वाल्मीकि द्वारा गायी गई कथा या हमारे व्यक्तित्व के अलग-अलग पहलुओं के चरित्र को मनोवैज्ञानिक तौर पर प्रस्तुत करती हुई कालजयी कृति है।

सोलहवाँ सर्ग

शबरी का साहस

कवि उद्भ्रांत के अनुसार शबरी भील जाति की एक आदिवासी महिला थी, जो अपने पति शबर के द्वारा इस दुनिया में अकेले छोड़े जाने की वजह से आस-पास के घरों में कामकाज करके अपना जीवन यापन करती थी। स्त्री ही स्त्री के दुख को जान सकती है और अगर कोई स्त्री विधवा हो जाए, तो उसके जीने का कोई मायने नहीं रहता है, और दलित जाति की स्त्री के लिए तो वह जीवन त्रासदी का पर्यायवाची बन जाता है। कवि की पंक्तियाँ:-

स्त्री यदि

विधवा हो जाए कहीं,

तब तो उसके

जीवित रहने के लिए

अर्थ ही नहीं बचता।

और तनिक कल्पना करो

वैसी स्त्री की

जो आती हो मेरे जैसी

अति वर्गीकृत जाति से।

स्त्री ही होना

पर्याप्त यों तो_

त्रासदी का

बनने को_

पर्यायवाची।

सूनी मांग, उलझे बिखरे बाल, फूटी चूड़ियाँ, खाली पाँव, नाक में न कोई नथनी और न कान में कोई बूंदे और उसके ऊपर पिछड़ी क्षुद्र जाति में जन्म लेना साक्षात अमंगल की मूर्ति के सिवाय और क्या हो सकता है? मानों करेले पर नीम, नीम पर जहरीला साँप बैठा हो। कवि तो यहाँ

तक कह देता है कि एक तुच्छतम घृणित जीव मानो घोर रौरव नरक से चला आया हो। उनके शब्दों में:-

ऐसी स्त्री को
क्या कहेगा समाज यह
कैसा व्यवहार करेगा उससे?
करेले पर नीम,
नीम पर करहल सांप
बैठा हो जैसे!

साक्षात्
अमंगल मूर्ति!
घोर,
रौरव नरक से चला आया
जैसे
*तुच्छतम_*
एक घृणित जीव!

शबरी को अच्छे दिन की तरस रहती है और एक बार जब अयोध्या के राजकुमार सीता और लक्ष्मण के साथ वनवास के दौरान उसी रास्ते से गुजरने की खबर सुनकर शबरी रोमांचित हो उठती है। कवि पुरानी मान्यताओं को उजागर करता हुआ कहता हैं, कि राजा तो प्रजा के लिए भगवान तथा राजवधू सीता उसके लिए देवी से कम नहीं है। अगर वे इस रास्ते से गुजरेंगे तो वह कैसे उनकी अगवानी करेगी? वन में सिवाय भूमि पर पड़े हुए बेर के अलावा कुछ भी तो नहीं था। जहाँ लोग रास्ते के दोनों तरफ पुष्पहार, फल व्यंजन और तरह-तरह के उपहार लेकर खड़े हुए थे, वहीं दूसरी तरफ शबरी अपने आँचल में टोकरी भर बेर छुपाए कातर भाव से असंख्य लोगों के बीच उनका इंतजार कर रही थी। शबरी के कातर-भाव कवि उद्भ्रांत जी के प्रकट किए:-

मैं भी खड़ी हो गई वहां
असंख्य लोगों के बीच
आंखों में रामजी की प्रतीक्षा का
लिए हुए कातर भाव
और अपने आंचल में छुपाए हुए
बेर टोकरी भर!

कितने पल बीते
नहीं मुझे पता
किंतु जैसे कितने ही युग बीते
राम की प्रतीक्षा में!

जब राम की जय का नारा लगा तो वह पुलकित हो गई, मगर तुरंत ही हतप्रभ होकर चौंक गई कि उसके पास व्यंजन न होकर केवल मीठे बेर हैं और अगर राम ने नहीं खाए तो वह प्राण त्याग देगी। जैसे ही यह बात उसने मंथर गति से चल रहे राम-लक्ष्मण, सीता को कही तो राम ने कौतुकता से मुस्कराते हुए उससे कहा कि बेर से बढ़कर इस जंगल में मेरे लिए कोई श्रेष्ठ व्यंजन नहीं है। यह कहते हुए राम के बेर लेने आते ही शबरी ने राम का हाथ पकड़कर कहा-, रुकें पहले में चख कर देख लेती हूँ कि कहीं बेर खट्टे न हों। मगर आसपास की भीड़ उसे राम को अपवित्र करने की धमकियाँ देते हुए, पीटने तथा धक्का देने लगी। यह देख राम ने सभी के समक्ष उसका पक्ष लेते हुए यह कहा कि- माता शबरी के वत्सल हाथों से मीठे रस में पके बेर खाकर न केवल वे अपने आपको गौरवान्वित अनुभव कर रहे हैं, वरन पुण्य लाभ के भागी भी बन रहे हैं। राम ही नहीं वरन् सीता और लक्ष्मण को भी यह मीठे बेर खिलाकर उपकृत करें। यह दृश्य "न भूतो न भविष्यति" की तरह था। इस अविस्मरणीय दृश्य को कवि उद्भ्रांत जी अपने निम्न शब्दों में अभिव्यक्त करते हैं:-

"क्या करती है बुढ़िया?
तूने अपवित्र
कर दिया राम जी को। "

कहते हुए उनमें से कुछ मुझको
बरजने को,
धक्का देने को,
पीटने को भी लपके मेरी ओर;
किंतु राम मुस्कराए
उन्हें आंखों के संकेत से ही
रोकते हुए,
*मेरी ओर_*
प्रेम-करुणा की सम्मिश्रित
दृष्टि की असीमित पूँजी

बरसाते हुए
भाव-विगलित स्वरों में
इस तरह बोले-

“मुझे मिल रहा है पुण्य-लाभ
जन्म मेरा हुआ सार्थक,
माता शबरी के हाथों से ही मैं
मीठे बेर खाकर
यात्रा आगे की करूंगा शुरू। ”

कालांतर से शबरी भीलनी दंडकारण्य की तपस्विनी के रूप में अपनी नवधा भक्ति से परिपूर्ण होकर प्रसिद्ध होती चली गई और उसका आश्रम हनुमान, बाली, सुग्रीव की गाथा, सीता के अपहरण, वानरों द्वारा सीता की खोज आदि घटनाओं का साक्षी बना।

सत्रहवाँ सर्ग

शूर्पणखा की महत्त्वाकांक्षा

कवि उद्भ्रांत के अनुसार शूर्पणखा बचपन से ही चंचल, शरारती, झगड़ालू, उछल-कूद करने वाली, क्रोधी तथा ढीठ लड़की थी। पिता और पितामह ऋषि वंश के होने के कारण उसके क्रिया कलापों से परेशान होते थे। रावण बचपन से ही तेजस्वी, शूरवीर, बुद्धिमान, शिव का परम-भक्त, महापंडित व महायोद्धा था। मनुस्मृति उसने पूरी तरह कंठस्थ कर ली थी और उसको उसमें पूरा विश्वास भी था, उसके अनुसार लज्जा स्त्री का आभूषण है और उसका कठोर होना समाज के प्रतिकूल है। शूर्पणखा बचपन से ही विद्रोहणी थी, गुड़ियों से खेलना कभी अच्छा नहीं लगता था। ये सब प्रवृतियाँ बहुत अच्छी लगती थीं। चूँकि बचपन से ही उसने अपने नाखून कभी नहीं काटे, जो युवावस्था में जाते-जाते वक्राकार सूप की तरह लगने लगे। इसलिये रावण ने हंसी मज़ाक में उसका नाम शूर्पणखा से पुकारना शुरू किया, धीरे-धीरे यह नाम लोगों की जुबान पर चढ़ गया और वह अपने माता-पिता द्वारा रखे नाम "सुन्दर" को भूल गई। इसकी व्याख्या कवि उद्भ्रांतजी ने इन शब्दों में करते हैं:-

मैंने जानबूझकर
अपने भीतर परूष
हिंस्र प्रवृतियां पोसीं।

अपने नखों को
काटती न कभी,
जिससे मेरे
युवावस्था में पहुंचने से
पूर्व बड़े वे असामान्य रूप से।

मुड़े हुए
वक्राकार नख लगते
सूप लघ्वाकार।

रावण ने ही
सबसे पहले मुझे

व्यंग्य में, विनोद में
नाम दिया-शूर्पणखा।

शनैः-शनैः
यही नाम
प्रचलित हो गया मेरा।

इसके चचेरे भाई खर, दूषण, त्रिशिरा उससे बहुत प्यार करते थे। खर, खरवाणी बोलता था और त्रिशिरा काम, क्रोध, लोभ, तीनों गुणों से संपन्न था। त्रिशिरा अहिरावण का पुत्र था तो खर-दूषण कुम्भकर्ण के जुड़वें बेटे थे। उसका छोटा भाई विभीषण शुरू से ही दब्बू और डरपोक था। रावण ने लंकाधिपति बनकर ही सुन्दर उत्तरक्षेत्र के जंगलों की शासिका उसे घोषित करते हुए और दूषण और त्रिशिरा को सेनापति नियुक्त किया। शायद वे लोग रावण की कूटनीति नहीं जान पाए। एक दिन जब अयोध्या के राजकुमार उन जंगलों में आए, तो उसकी क्रोधाग्नि में आग बबूला होते हुए खूब सोमरस पीकर उन्हें ललकारने के लिए आगे निकल पड़े। जंगल के एक आश्रम में एक सुन्दर राजकुमार धनुष वाण लिए टहल रहा था और आश्रम के भीतर एक सुंदरी, कमनीय, छरहरी बैठी हुई थी। शूर्पणखा उस सुन्दर पुरुष को देखकर आकर्षित हो गई और उसके भीतर की सारी सुषुप्त वासनाएँ फन उठाकर फुफकारने लगी। उसने हिम्मतकर अपना परिचय देते हुए अपने मन की इच्छा को प्रकट करते हुए राक्षसी विवाह का आग्रह करने लगी। वह मन ही मन सोचने लगी कि उसकी सहायता से रावण को अपदस्थ कर विश्व की प्रथम साम्राज्ञी बनने का गौरव प्राप्त करेगी। मगर उसके प्रणय निवेदन को जब राम ने अपने विवाहित होने के कारण ठुकरा दिया तब अपनी सुंदरता का बयान करते हुए शूर्पणखा ने रावण को लंका से हटाने का भी प्रलोभन दिया और राक्षस समुदाय में अविवाहित स्त्री द्वारा अपने मन-पसंद पुरुष को उठाकर ले जाने के बारे में भी उदाहरण प्रस्तुत किया। यह देख लक्ष्मण भड़क उठे और उसके ऊपर प्रहार किया। शूर्पणखा ने यह सारी कहानी अपने भाइयों को बताई, मगर वे लोग उसका प्रतिशोध नहीं ले सके। तब शूर्पणखा ने रावण की शरण ली और अयोध्या के राजकुमार राम और लक्ष्मण के द्वारा उसके साथ हुए अभद्र आचरण के बारे में बताया। उसने कहा कि वह राम से गंधर्व विवाह नहीं कर पा रही है तो नई परंपरा “राक्षसी विवाह” को पुनर्जीवित करना चाहती थी। इस बारे में कवि उद्भ्रांत कहते हैं:-

हमारे समाज में प्रचलित
चार विवाहों में
राक्षसी विवाह ही है सर्वश्रेष्ठ।

आदिम समाज में
इस त्रेता युग में भी
स्त्रियाँ करती है ऐसा विवाह,
और हमारा समाज
इस पर हर्षित होता।

राम के विवाहित होने के बाद भी वह उससे क्यों नहीं शादी कर सकती थी? राम ने उसका अनुरोध ठुकराकर सम्पूर्ण स्त्री जाति का अपमान किया है और उसके भ्रू-संकेत पर छोटे भाई लक्ष्मण ने उसे जमीन पर पटककर तलवार से हत्या करनी चाही। जंगल की साम्राज्ञी के साथ ऐसा दुर्व्यवहार? इस तरह शूर्पणखा ने रावण को उत्तेजित करते हुए राम से प्रतिशोध लेने के लिए चुनौती दी और यही चुनौती रावण के पतन के अध्याय की शुरुआत थी। उद्भ्रांत जी की मौलिकता निम्न पंक्तियों से प्रकट होती है:-

मैंने चिंगारी
सुलगा दी थी रावण के मन में-
देखना था मुझे अब यह चिंगारी
लपट बनकर कैसे भस्म
करती है स्वर्णमंडित
उसके साम्राज्य को।

रावण के पतन के
लोमहर्षक अध्याय की
भूमिका प्रारंभ
हो चुकी थी मेरे द्वारा।

अठारहवाँ सर्ग

पंचकन्या तारा

किष्किन्धा प्रदेश के महाराज बाली की पत्नी तारा थी। तारा के चरित्र का वर्णन करने में कवि उद्भ्रांत उनके व्यक्तिगत गुणों का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि उनका वानर समाज में मान-सम्मान था, देवर सुग्रीव उन्हें माँ मानकर नित्य चरण स्पर्श कर आशीर्वाद लेते थे और बड़े भाई को भी पिता के समान मानते थे। सुग्रीव की पत्नी रोमा अर्थात उनकी देवरानी एक धर्मभीरु नारी थी और सारे समाज में मान-मर्यादाओं का पूरी तरह से खयाल रखती थी। कवि उद्भ्रांत के अनुसार दोनों भाइयों में दुर्लभ प्रगाढ़ प्रेम था और दोनों के पराक्रम का डंका पूरे जगत में बजता था। यहाँ तक कि एक बार उनको रावण द्वारा ललकारने पर मल्लयुद्ध में धोबी पछाड़ देकर बाईं बाहु के नीचे रखकर उसकी गर्दन को इतनी ज़ोर से दबाया था कि रावण त्राहि कर उठा था और उसके बाद किष्किन्धा प्रदेश में जाना ही भूल गया। तारा का पुत्र अंगद अत्यंत ही शक्तिशाली, बुद्धिमान और माता-पिता का आज्ञाकारी था। इस तरह कवि उद्भ्रांत ने उनके परिवार को सुखी व समृद्ध दर्शाया है। इस दृश्य को कवि उद्भ्रांत जी ने ऐसे दर्शाया हैं:-

सुख के दिन
बीत रहे थे जीवन के, तभी
आंधी-सी आई एक जिसने
दोनों सगे भाइयों को-
-एक-दूसरे के प्रति
जान छिड़कते थे जो-
पृथक ही नहीं किया,
बना दिया-
एक-दूसरे के रक्त का प्यासा।

मगर अचानक उनके जीवन में भी एक आंधी आ गई और वे एक दूसरे के खून के प्यासे हो गए। एक बार मायावी राक्षस से गुफा के अंदर बाली युद्ध कर रहे थे तथा अपने छोटे भाई को गुफा के द्वार पर बैठने का निर्देश दिया और कहा कि अगर 15 दिनों में मैं बाहर नहीं आता हूँ तो तुम इसका मतलब मुझे मारा हुआ जान किष्किन्धा की गद्दी पर आसीन हो कर राज्य संभालना और मेरे पुत्र अंगद और पत्नी तारा की रक्षा करना। 15 दिन बीतने के बाद भी जब बाली गुफा से बाहर नहीं आए, बल्कि गुफा से रक्त की धार बाहर निकली तो सुग्रीव अपने भाई को मारा हुआ जान, गुफा के द्वार पर शिला रखते हुए दुःखी मनसे किष्किन्धा प्रदेश लौट गये और रोते हुए वहाँ पर पूरा माजरा तारा को बताया, मगर तारा को बिलकुल भी विश्वास नहीं

हुआ। मगर जब सुग्रीव ने शपथ खाते हुए बताया तो तारा रोते-रोते मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी। सुग्रीव ने अंगद को राजा बनाने का प्रस्ताव रखा तो जाम्बवन्त जैसे मंत्री ने उसके अवयस्क होने के कारण इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और सुग्रीव को सर्व सम्मति से किष्किन्धा का राजा घोषित कर दिया। मगर एक दिन अचानक वानर समूह "महाराज बाली की जय हो" का गगनभेदी नारा लगाते हुए महलों की तरफ बढ़ते आए तो उसे विशवास नहीं हुआ। महाराज बाली ने सुग्रीव को मारा पीटा, प्रताड़ित किया और किष्किन्धा से निष्कासित कर दिया। इस अवस्था में तारा के मन मस्तिष्क पर क्या गुजरी होगी, उसका वर्णन करते हुए कवि उद्भ्रांत लिखते हैं कि विवाहित स्त्री की भावनाओं के रक्तस्नात होने का ध्यान किये बगैर किस तरह वह पटरानी से पदच्युत होकर देवरानी की सौतन बनी थी। एक सुहागन स्त्री के लिये इससे ज्यादा और क्या विडम्बना हो सकती थी! इस विडम्बना की अभिव्यक्ति कवि के इन शब्दों में:-

अपनी विवाहित स्त्री की भावनाओं के
रक्तस्नात होने का
नहीं करते हुए कोई ध्यान जिसने
उसे पटरानी के स्थान से च्युत करते हुए
देवरानी की सौतन
बनने का उपहार दिया।

सुहाग मेरा अक्षत था,
सुहागिन मैं, पर सुहाग-
मेरा नहीं अक्षत, मैं सुहागन नहीं-
सचमुच मैं बड़ी अभागन थी!

कवि उद्भ्रांत ने इस घटना को यहीं पर समाप्त न करते हुए राम के सीता की खोज का प्रसंग कर सुग्रीव हनुमान के साथ मैत्री संबंध स्थापित कर बाली का वृक्ष की ओट से छिपकर उनपर तीर चलाकर प्राणान्त कर दिया और सुग्रीव को पुनः राज्य प्राप्ति करा दी और अंगद को श्री राम का संरक्षण मिल गया। मगर तारा की जिंदगी उलझन में पड़ गई। यह बात अलग है कि समाज ने उसे पंचकन्या के रूप में गिनना शुरू किया। कवि उद्भ्रांत जी तारा के जीवन के बारे में लिखते हैं:-

किष्किंधा-राज्य के अधिकार के संग
सुग्रीव ने वापस पाई पत्नी अपनी,
और मुझ पर भी अधिकार;

अंगद को संरक्षण
मिल गया श्रीराम का।

मेरा तो किसी पर भी था नहीं
कोई अधिकार।

शेष मेरे लिए क्या
रह गया था जीवन में ?

अस्तु मैं भी स्वेच्छा से
निकल पड़ी ऐसी राह
जहां से नहीं वापसी होती;

और मुझे इसलिए
मानो घोषित करते हुए अमर
समाज ने कर दिया शुरू
परिगणित कराना
एक पंचकन्या के रूप में!

उन्नीसवाँ सर्ग

सुरसा की हनुमत परीक्षा

कवि उद्भ्रांत ने सुरसा के चरित्र का वर्णन करने के लिए सुरपुर के नरेश इंद्र को सीता के अपहरण की घटना के बारे में जानकारी होने तथा अपनी दत्तक पुत्री स्वयंप्रभा द्वारा सीता की खोज हेतु वन में तपश्चर्या में लीन होने, गिद्धराज जटायु के बड़े भाई सम्पाति के माध्यम से लंका के अशोक वन में सीता का पता लगाने पर जामवंत के परामर्श, किष्किन्धा नरेश सुग्रीव के मित्र हनुमान द्वारा लंका जाने के लिये समुद्र की उड़ान आदि घटनाओं को लेकर सुरसा का परिचय बताया है कि सुरपुर के नरेश इंद्र को रावण के शक्तिशाली होने की चिंता सता रही थी। यही नहीं रावण के पुत्र मेघनाद ने भी धोखे से इन्द्र को परास्त किया था। इसके अतिरिक्त, लंका के चारों तरफ एक अभेद्य दुर्ग है, गुप्तचरों का विशाल तंत्र है और अगर हनुमान असफल हो गए, तो अनर्थ हो जाएगा। इसलिए हनुमान की शक्ति, बुद्धिमत्ता के परीक्षण हेतु सुरसा को इंद्र ने समुद्र में जलपोत लेकर भेजा। कवि उद्भ्रांत जी की कल्पना यहाँ पर इस तरह हैं:-

" चाहता हूं आओ जाओ तुम
वेश बदलकर अपना
और परीक्षण करो
हनुमत की शक्ति-बुद्धिमता का। "
"तुमने यदि वापस आ
कर दिया आश्वस्त मुझे
तभी चैन की निद्रा
ले पाऊंगा मैं। "

वायुगति से तैरते हुए हनुमान को रोक कर लंका जाने के उद्देश्य के बारे में समुद्र रक्षक के रूप में अपना परिचय देते हुए पूछा, तो हनुमान जी ने कहा मैं जल में हूँ और मुझमें है जल, प्राणवायु मुझमें आती जाती है लोग मुझे वायुपुत्र भी कहते हैं और मैं सीता की खोज में निकला हूँ। इन आध्यात्मिक भावों की अभिव्यक्ति कवि के शब्दों में,

हनुमान बोले-
"मैं जल में हूं
क्योंकि मुझ में है जल
श्वासरुपी हवा मुझमें
आती-जाती है;
अस्तु, वायु-पुत्र भी मुझे तुम कह सकती;

रामजी की पत्नी सीताजी को
लंकाधीश रावण ले गया है अपहरण कर,
जा रहा-
मैं उनके कार्य के निमित्त। "

तो सुरसा ने उसे समुद्रों के बड़े-बड़े मगरमच्छों तथा लंका नगरी में लंका के विकट राक्षसों का डर दिखाया। अब हनुमान ने उत्तर दिया कि उसे सोने का न तो कोई लोभ है और न ही राक्षसों का भय। तब सुरसा ने स्त्रियोचित वशीकरण विद्या का प्रयोग करते हुए अपने अप्रतिम सौंदर्य की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास किया। मगर हनुमान के प्रति सम्मोहन की सुरसा की चेष्टा, विरत तृष्णा, इंद्रिय-निग्रह, बाल-ब्रह्मचारी हनुमान के समक्ष तृणवत थी। कवि उद्भ्रांत जी इसे इन शब्दों में प्रकट करते हैं:-

नहीं ज्ञात था मुझे कि
हनुमान स्वयं एक सिद्ध योगी,
मेरे सम्मोहन का
नहीं उन पर
पड़ा कोई भी प्रभाव,
उन्होंने प्रति-सम्मोहन मुझ पर किया
और कहा,
"माता! तुम हो विराट तृष्णा की तरह किंतु,
इंद्रिय-निग्रह करने वाले व्यक्ति के समक्ष
तुम तृणवत हो। "

ये सब परीक्षा होने के बाद सुरसा को इस बात का ज्ञान हो गया था कि लंका भेदने में हनुमान को अवश्य सफलता मिलेगी। यह कहते हुए उसने हनुमान को आशीर्वाद दिया कि आने वाला युग तुम्हारा कृतज्ञ होगा, तुम्हारी पूजा करेगा। ये पंक्तियाँ देखें:-

"उसमें तुम उत्तीर्ण हुए शत-प्रतिशत,
तुम्हें देती हूं मैं आशीर्वाद
अपने कार्य में तुम
सफल पूर्ण होओगे;
और वह भी इस तरह-
जगत तुम्हारे नाम

और काम को भी

रखेगा हमेशा स्मरण। ”

इसमें कवि उद्भ्रांत ने सुरसा को जलपोत द्वारा भेजने तथा हनुमान के वायुगति से समुद्र तैरने की कथा को आधुनिक दृष्टि देते हुए, अपनी मौलिकता के साथ-साथ मिथकीय चरित्रों में अलौकिकता का वर्णन किए बगैर अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को पाठकों के सम्मुख रखा है।

बीसवाँ सर्ग

रावण की गुप्तचर लंकिनी

इस सर्ग में कवि उद्भ्रांत ने लंकिनी का परिचय अनोखे अंदाज में दिया है कि, तुलसी दास की काल-जयी कविता के माध्यम से सहस्रों साल बाद भी उसका नाम लंका के प्रतीक के रूप में लिया जाता है। कारण था लंका के प्रवेश द्वार पर उसका सोने जैसा सुंदर-सा महल और उसकी अटारी से समुद्र के अनंत जल राशि का अवलोकन करने के कार्य हेतु रावण अपने राजकोष से उसे मासिक वेतन देता था, नौकर-चाकर उसकी सेवा में लगे रहते थे। सही मायने में वह एक नगर वधू थी और रावण की अदम्य शक्ति थी। लंका से सामुद्रिक व्यापार करने आने वाले हर जलपोत उसे रावण की विश्वसनीय जानकर अंशदान देता था और वह उनलोगों से बात करके रावण के शत्रुओं के बारे में जानकारी हासिल करने का गुप्त काम ही करती थी। इसे उद्भ्रांत जी कहते हैं:-

"करते हुए उनसे वार्तालाप
मुझे ज्ञात हो जाता था-
कौन-रावण और लंका नगरी का
मित्र- कौन शत्रु है?
एक तरह से मैं
रावण के गुप्त भेदिए का ही
करती काम। "

अधिकांश आदिवासी जाति के लोग लंका में आते थे और लंकिनी को देखकर नगरी में प्रवेश करना सौभाग्य का सूचक मानते थे। इस तरह रावण के राज्य में व्यापारिक गतिविधियों की दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति होती जा रही थी। इस वाणिज्यिक विधि को कवि उद्भ्रांत जी ने इन शब्दों में अभिव्यक्त किया हैं:-

उनका अवचेतन मन
रावण के अपरिमित बल-वैभव से
हो जाता आक्रांत;
और इस तरह रावण के निरंतर संवर्धनशील
राज्य के प्रसार में वे
सहायक बन जाते।

हनुमान से लंकिनी का परिचय भी अलग ढंग से कवि उद्भ्रांत ने करवाया है कि अचानक एक दिन समुद्र से निकल कर लाल-मुख वाला वानर लंका में प्रवेश करने जा रहा था। मगर बिना उसकी तरफ ध्यान दिए या अंशदान दिए वह बढ़ता ही जा रहा था। इस पदक्षेप को लंकनी ने अपने स्त्रीत्व का अपमान समझकर क्रोध से तिलमिला उठती है और उसे रोक कर उसके आने का कारण पूछती है, तो हनुमान अपने उद्देश्य के बारे में बताते हुए कहता है कि वह सीता कि खोज में वहाँ आया है, तो लंकिनी उससे सीमा शुल्क माँगती है। इस पर हनुमान क्रोधित होकर लंकनी के ऊपर मुष्टिका प्रहार कर देता है और लंकिनी को खून की उलटियाँ होने लगती है। उद्भ्रांत जी का यह काव्य बयान करता हैं:-

वानर था हृष्ट-पुष्ट
परम शक्तिशाली,
उसने किलकारी भरते हुए
और खौंखियाकर
अपनी मुष्टिका का
वज्र जैसा एक ही प्रहार
किया मुझ पर विद्युत की गति से,
-मेरे द्वारा
भवन के सशस्त्र प्रहरियों को
बुलाने से पूर्व!

मेरे मुख से
रक्तधार बह निकली।

इक्कीसवाँ सर्ग

सीता की सखी त्रिजटा

लंका के राजमहल में लाखों स्वामी भक्त दास-दासियाँ थीं। मगर एक दासी बिलकुल ही अलग-अलग थी, जिसे कभी भी पुरस्कार पाने की लालच में न तो मिथ्या सम्भाषण करने की आदत थी और न ही किसी प्रकार के चौर्य-कर्म में लिप्त रहने की इच्छा। कवि उद्भ्रांत के अनुसार त्रिजटा का जीवन सादगी भरा था। जो कुछ मिलता था उसी में संतुष्ट रहने वाला था। वह अन्य दासियों की तुलना में कभी भी अपने साजो-शृंगार में रुचि नहीं रखती थी। इस वजह से केश बढ़कर किशोरावस्था के पूर्व ही जटाओं का रूप लेने लगे, वह भी एक नहीं बल्कि तीन-तीन। कवि की कल्पना के अनुसार इन तीन जटाओं को देखकर लोगों ने शायद इस दासी को संन्यासिनी समझकर इसका नाम त्रिजटा रख दिया होगा। यही नहीं कवि अपनी कल्पना को निम्न पंक्तियों से और विस्तार देता है और त्रिजटा के मन को तीन भागों में बांटता है- पहला मन रावण के प्रति स्वामी भक्ति का, दूसरा मन मन्दोदरी के प्रति आदर श्रद्धा वाला और तीसरा जंगल के सभी जीव जन्तुओं के प्रति प्रेम और करुणा से भरा हुआ संवेदनशील भाव वाला।

पहली जटा महाराज रावण के प्रति
मेरी स्वामी भक्ति,
दूजी-मां मां मंदोदरी के महत्त जीवन
के प्रति आदर-श्रद्धा की;

और तीसरी अंतिम जटा थी ज्यों-
जगत के सभी जीव-जंतुओं के लिए
प्रेम और करुणा से भरा हुआ
संवेदनशील भाव।

कवि त्रिजटा के चरित्र की व्याख्या करने से पूर्व रावण के चरित्र पर भी प्रकाश डालते हैं। एक तरफ, जहाँ रावण परम विद्वान, शक्तिमान, शिव-भक्त और प्रजा-वत्सल थे, वहीं दूसरी तरफ महिलाओं के प्रति
उसका दृष्टिकोण ठीक नहीं था। वह जानती थी कि मंदोदरी के मन की घुटन को। मगर वह कुछ नहीं कर पाती थी, सिवाय मंदोदरी की सहिष्णुता और अपार धैर्य को देखकर आश्चर्य चकित होने के। एक बार जब मंदोदरी को उदास देखकर वह उसके पास गई तब भी मंदोदरी ने उसे कुछ नहीं बताया, मगर एक साथी के माध्यम से रावण द्वारा सीता के अपहरण की बात पता चलने पर वह मन ही मन दुःखी हुई। रावण ने सीता को अशोक वाटिका में अशोक वृक्ष के

नीचे आदर पूर्वक रखा और दासियों में त्रिजटा को भी सीता की देखरेख करने का मंदोदरी ने निर्देश दिया। इस तरह वह अपहृता नारी की भयाक्रान्त, मानसिक प्रताड़ित अवस्था देखकर भावविह्वल हो उठी। तथा सशस्त्र दासियों से सीता को बचाने के लिए अपने स्वप्न दर्शन की युक्ति का सहारा लिया कि भोर-भोर उसने सपने में एक वानर को पूरी लंका नगरी को जलाते हुए देखा है, जिसका अर्थ लंका के अंतिम दिन आ गए हैं। यह देखकर बाकी दासियों ने सीता को सताना छोड़कर अच्छा व्यवहार करना शुरू किया।

मैंने उसी पल में
विचारी एक युक्ति-
वहां पहुंचकर कहा सशस्त्र दासियों से-
"क्या कर रही हो मूर्खो तुम?
मैंने आज भोर में ही
स्वप्न एक देखा है भयानक-
जिसमें एक लंका वानर लंका में घुसकर
जला देता है पूरी नगरी
और एक-एक कर
वे सभी लंकावासी
आग में होते हैं भस्म-
जिन्होंने अशोकवन में बैठी
अकेली स्त्री को
किया प्रताड़ित!

"सत्संग भोर का-
नहीं होता कभी असत्य,
और देख रही हूं तुम्हें-
सीताजी को भयाक्रांत और प्रताड़ित करते।

त्रिजटा ने अपना परिचय सीता को देते समय कहा कि भले ही उसका जन्म लंका में क्यों न हुआ हो, मगर रावण द्वारा तुम्हारा अपहरण एक बहुत बड़ा अपराध है। माता मंदोदरी की सेवा करते-करते मेरे भीतर भी वैष्णव वृति जाग गई है, इसलिए मैं दुखी और क्षुब्ध हूँ और तुम्हारे प्रति हुए अन्याय का प्रतिकार कर जल्दी से जल्दी राम के पास भेजने की व्यवस्था करवाने में सहयोग दूँगी। इस सर्ग में कवि की मनोभावनाएँ,

" यद्यपि मेरा जन्म
लंका नगरी में हुआ,
जिसके महाराज ने
बड़ा अपराध किया,
तुम्हारे अपहरण का;

"किंतु मैं नहीं हूं समर्थक
उनके राक्षसी आचरण की-
जन्म लेने पर भी इस पवित्र कुल में। "

"मैं हूं अपने बाल्यकाल से
शांत प्रकृति की,
माता मंदोदरी की सेवा में रहकर
मुझमें भी
वैष्णव वृत्ति जगी है। "

तब तक तुम्हारी समग्र सुरक्षा का भार मेरे कंधों पर है। इस तरह त्रिजटा की स्नेहिल बातें सुनकर सीता के चेहरे का भय, आशंका सब जाती रही और वह सीता से ऐसा घुल मिल गई मानो उसकी माँ हो। इस तरह कवि ने इन शब्दों के माध्यम से त्रिजटा के चरित्र को उदात्त बनाते हुए, सीता मिलन के क्षण को सबसे यादगार और पावन बना दिया है:-

मेरी स्नेहिल बातों का
प्रभाव इलेक्शन पड़ा सीता पर,
वह हुई प्रकृतिस्थ;
भय के, आशंका के सभी भाव
उनके मुख से हुए तिरोहित।

मुझे पास बैठाकर
मुझसे करने लगी वार्ता वे
घुलमिलकर ऐसे-

जैसे कोई बेटी
अपनी मां से
नि:संकोच करती हो!

.

बाईसवाँ सर्ग

मन्दोदरी:नैतिकता का पाठ

कवि उद्भ्रांत ने मन्दोदरी के चित्रांकन में विशेष ध्यान रखा है कि त्रेता की मुख्य पात्र सीता की तरह मन्दोदरी का चरित्र भी काफी उज्ज्वल रहा है। कवि के अनुसार मन्दोदरी के पिता 'मय' ने जब उसकी माता को मन्दोदरी के विवाह के बारे में बताया कि ऋषि पुलस्त्य के वंश के ऋषि विश्रवा के सबसे बड़े पुत्र रावण से तय हुआ है, तो वह फूली नहीं समायी। निम्न पंक्तियाँ देखें:-

मेरे ऋषिवर पिता मय ने जब
मेरी माता को हर्ष से भर बताया यह कि
मेरा विवाह विश्व-विश्रुत ऋषि पुलस्त्य के वंश में
ऋषिवर विश्रवा के सबसे बड़े पुत्र
सुंदर,बलिष्ठ
परम पराक्रमी,विद्वान,ज्ञानी
और महादेव के अनन्य भक्त
राजकुँवर रावण के साथ सुनिश्चित हुआ
तो मन-ही-मन मैं
फूली समाई नहीं।

मन्दोदरी ने रावण के पराक्रम की अनेक गाथाएँ सुन रखी थीं। रावण जितना सुंदर, बलिष्ठ, परम पराक्रमी, विद्वान, ज्ञानी था, उतना ही वह महादेव का अनन्य भक्त भी था। मन्दोदरी के नामकरण के बारे में अपनी चिर-परिचित शैली के तहत कवि उद्भ्रांत कहते हैं कि जन्म लेने के बाद माँ का स्तनपान अधिक नहीं करने के कारण उसका नाम मन्दोदरी रखा गया। वह अल्पभोजी भी थी और अल्पभाषी भी। पुरुष-सत्तात्मक समाज नारी के मितभाषी और मितभोजी होने की अपेक्षा सदैव करता है। उसके अनुसार अगर नारी ज्यादा बोलेगी तो वाचाल कही जाएगी और उसे कोई पसंद नहीं करेगा और अगर ज्यादा भोजन करेगी तो मांस-मज्जा बढ़ने के साथ-साथ पृथुलकाय हो जाएगी, तो बेडौल शरीर देखकर वैवाहिक संबंधों में रुकावट आएगी। तत्कालीन समाज में इस तरह के मानदंड स्वीकार्य थे। मगर संयोगवश मन्दोदरी की प्रकृति मंद

वाणी, मंद उदर की थी इसलिए वह अप्रतिम सौंदर्य और लाखों स्त्रियों में विलक्षणता से भरी हुई थी। उद्भ्रांत जी अपने शब्दों में इसकी व्याख्या करते हैं:-

" किंतु यह संजोग है हमारी बेटी
पुरुष समाज द्वारा घोषित-
ऐसे दुर्गुणों से है दूर बहुत
अपनी प्रकृति से ही-
" मन वाणी, मंद उदर वाली हमारी बेटी,
स्त्रियों के लिए वांछित-
सब गुणों-आभूषणों से सुसज्जित;
अप्रतिम सौंदर्य की धनी,
लाखों स्त्रियों में विलक्षण। "

कवि उद्भ्रांत ने मन्दोदरी के भाग्य में मिट्टी का सोना नहीं, सोने की मिट्टी में जीवन-यापन करने का विधाता की स्वर्ण तूलिका से भाग्य लिखा। लंका एक भव्य नगरी, गगनचुम्बी इमारतें, ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ, स्वच्छ चमचमाते राजमार्ग और उनके दोनों किनारे हरीतिमा बिखेरते विशाल वृक्षों के झुंड, किसे आकर्षित नहीं करते होंगे! सोने से बने भवनों के गुम्बद, प्रवेश द्वारों पर जब सूरज की किरणें टकराती थीं तो अत्यंत चमक होती थी। उन दृश्यों की कल्पना करें, जब सोने के रथ पर आसीन होकर मन्दोदरी रावण के साथ राजमहल की ओर प्रवेश करती तो राजमार्ग के दोनों तरफ खड़े सहस्त्रों नर-नारी, सशस्त्र सैनिक उनका अभिनन्दन करते हुये जय-जयकार करते होंगे, उस समय ऋषि-कन्या मन्दोदरी का मन खुशी से फ़ूला नहीं समाता होगा। उनके माता-पिता को भी उसके भाग्य पर गर्व होता होगा। मगर क्या नियति की रेखाओं को टाला जा सकता है? कवि की भाषा में:-

स्वर्ण-रथ पर होकर आसीन
राजकुमार रावण के संग जब
जा रही थी मैं राजमहल की ओर,
राजमार्ग के दोनों ओर खड़े
सहस्त्रों नर-नारी
सशस्त्र सैनिकों के साथ
अभिनंदन करते हुए मेरा
राजकुँवर की
जय-जयकार कर रहे थे।

और उस क्षण सोच रही थी मैं कि-
'क्या मेरे बाबा मेरे पिता ने
इसलिए कहा मेरी माता से कि
हमारी परम लाडली मंदा बेटी का
भाग्य नहीं मंद,
उसे लिखा है विधाता ने
स्वर्ण-तूलिका से, उमगते हुए वात्सल्य में?

जहाँ ऋषि आश्रम में पली मन्दोदरी लोक को सत्ता का सर्वोच्च बिन्दू मानती, उसी मन्दोदरी को क्रूर और निरकुंश अधिनायकवादी सत्ता से परिपूर्ण राज्य में अपनी प्रकृति को बदलना पड़ रहा था। शिवस्त्रोत के रचयिता रावण ध्वन्यालंकार से परिपूर्ण पाठ का वाचन करते तो सुनने वालों के समक्ष मानों मंत्रों के प्रभाव से समस्त देव, ग्रह, उपग्रह, नक्षत्र और यहाँ तक कि साक्षात शिव उपस्थित हो जाते थे। ऐसा लगता था मानो रावण ने उन्हें अपने वश में कर लिया हो और जब रावण सुध-बुध भुलाकर अपने अहंकार रूपी सिर को काट-काट कर दस दिनों तक चलने वाले शिव जी के रुद्राभिषेक यज्ञ में चढ़ाते तो दसों दिशाओं से ज्ञान-चक्षुओं द्वारा अमृत सिर से उनके कंधों पर आकर जुड़ते और उनकी मानसिक शक्ति को दस गुना बढ़ाते हों। इस तरह रावण के दस सिर होने की मौलिक कल्पना कवि ने अपने ढंग से की है:-

दस दिन तक चलने वाले
शिव जी के रुद्राभिषेक यज्ञ में
रावण ने अपने अहंकार-शिर को
काटकर चढ़ाकर बार-बार,
जिसके फलस्वरुप दसों दिशाओं में
ज्ञान-चक्षुओं से देखने वाले दस अमूर्त शीश
उनके कंधों से आ जुड़े-
करते हुए उनकी मानसिक शक्ति दस गुणा!

रावण के दोनों भाई कुम्भकर्ण और विभीषण की प्रकृति रावण से पूरी तरह भिन्न थी। कुम्भकर्ण शिव उपासक थे, मगर उन्हें सत्ता की कोई भूख नहीं थी। भांग का सेवन करने के कारण उन्हें भयानक भूख लगती और वे रात-दिन सोते रहते थे। लोगों ने मज़ाक-मज़ाक में उनके बारे में अफवाह उड़ा दी कि वे छः महीने सोते हैं, एक दिन उठते हैं फिर छः महीने के लिए सो जाते हैं। इस परिहास का वे कोई मुँह खोलकर उत्तर नहीं देते थे, अपनी भोली प्रकृति के कारण। विभीषण विष्णु भक्त थे, छोटा डीलडौल था। अनुशासित जीवन था। ब्राह्ममुहूर्त में उठकर और

रात्रि में शयन के समय नित विष्णु सहस्र नाम का जप करते थे। कवि के अनुसार रावण को उनकी जीवनचर्या भीषण हास्यास्पद लगती थी। इसलिए शायद उन्हें विभीषण कहा जाने लगा। विभीषण को सत्ता से कोई विरक्ति नहीं थी, मगर कनिष्ठ होने के कारण उन्हें सत्ता मिलने की कोई उम्मीद न थी। वे अक्सर यह सोचा करते कि अगर उन्हें सत्ता मिलती तो वे रावण के निरंकुश शासन के विपरीत आदर्श शासन व्यवस्था को स्थापित कर दिखा सकते हैं। रावण को शिव ने अमरत्व का वरदान दिया था। चूँकि वे द्रविड़ शासक थे, इसलिए उन्हें आर्य जाति से नफरत थी। मन्दोदरी के बड़े पुत्र के जन्म के समय मेघ गर्जन की तरह उसने चीत्कार किया था। तभी रावण ने उनका नाम मेघनाद रख दिया। यह वह घड़ी थी, जब वह अपने द्वारा निर्मित रुद्र वीणा में भावाकुल होकर पुत्र जन्म की प्रतीक्षा कर रहे थे। कवि ने अपनी कल्पना का विस्तार करते हुये आगे लिखा है कि मेघनाद के जन्म होते ही इंद्रपुरी में राजा इन्द्र को परास्त कर मेघों को बरसने का निर्देश दिया है। ताकि लंका का कृषि-व्यापार समृद्ध हो सके। मन्दोदरी ज्यादा खुश होती, अगर पुत्र के स्थान पर उसे पुत्री प्राप्त होती, क्योंकि वह पुत्र जन्म के साथ-साथ महाराज के साम्राज्य विस्तार की लालसा को बढ़ते हुए देख रही थी। उनके आचरण में क्रूरता, हिंसा जैसी घातक प्रवृत्तियाँ भी दिखाई देने लगी थीं। मन्दोदरी के प्रति अनुराग खत्म हो गया था और रावण अकर्मण्य विलासी जीवन बिताने के अभ्यस्त हो गए थे। स्त्रियों के प्रति वासनात्मक आकर्षण बढ़ता हुआ नजर आने लगा था। इन्हीं अवस्थाओं में मंदोदरी के एक और पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम रखा गया, अक्षय कुमार। रावण की यश और कीर्ति को अक्षय रखने की आकांक्षा में प्रतीकात्मक नाम रखा गया था। मेघनाद बचपन से ही ईश्वर भक्त था, मगर अक्षय कुमार शक्ति और सत्ता के मद में चूर। यह नियति थी मन्दोदरी के जीवन की। मेघनाद का विवाह सुलोचना नामक सुंदर कन्या से हुआ। कवि उद्भ्रांत ने मन्दोदरी के चरित्र में यहाँ एक मरोड़ (twist)लिया है कि मेघनाद के जन्म के पूर्व मन्दोदरी ने गर्भ धारण किया था, लेकिन अचानक एक दिन गर्भपात हो गया तो राजमहल के अनुचरों ने मृत बच्चे के जन्म के बाद किसी दूसरे देश में फेंक दिया था। शायद कवि ने यहाँ दो बातों की ओर ध्यान आकर्षित किया है; पहला क्या वह कन्या सीता थी? दूसरा रावण पुत्री के जन्म को बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे? कन्या शिशु के जन्म होते ही उसकी निर्मम हत्या कर दी जाती थी? मन्दोदरी के चरित्र में कन्या शिशु की हत्या का और उसके बाद मन में उपजे घोर विषाद का मर्मान्तक वर्णन कवि ने किया है कि मन्दोदरी अवसादग्रस्त हो कर किस तरह अपनी पुत्री के बारे में दिवास्वप्न देखती है और वह मन ही मन निश्चित कर लेती है कि आने वाला समय गहनतम अंधकार में होगा। इस आशंका की पुष्टि और गहराने लगती है जब उसे पता चलता है कि रावण ने जंगल से किसी सुंदर नारी का अपहरण कर लंका के अशोक वन में बन्दी बनाकर रखा है। इतना बड़ा पापकर्म! सोच-सोच कर मन्दोदरी की आँखों से खून के आँसू बहने लगते हैं कि अपने पति से अलग होकर किस तरह वह विवाहित स्त्री रह पाएगी? इसलिए उसने अपनी परम विश्वसनीय

सखी सेविका त्रिजटा को सीता की देख-रेख के लिए वहाँ नियुक्त किया। मन्दोदरी खुद सीता को देखने के लिए नीरव सुनसान रात में त्रिजटा के साथ अशोक वन में गई थी। जब वह सीता के पास पहुँची तो उसने खड़ी होकर चरणस्पर्श करते हुए आशीर्वाद माँगा और कहने लगी कि आप जनक पुरी की मेरी माँ की तरह हो और मुझे ऐसा लग रहा है, मानो शादी के बाद जैसे स्त्री मायके लौटती है वैसे ही मैं अपनी माँ को देखने के लिए यहाँ लाई गई हूँ। जिस तरह दामाद से असन्तुष्ट क्षुब्ध पिता, पुत्री को अकेली पाकर बलपूर्वक अपने घर ले आया हो और दामाद को उससे पृथक रहने की सजा दे रहा हो। यह सुनकर मन्दोदरी को अपनी कोख में पली मृत अवस्था की बेटी की याद हो आई कि यही तुम्हारी बेटी है। अयोध्या नरेश की तरह बेटी का जन्म होते ही लंका नरेश ने उसकी या तो हत्या करने का या दूर देश में छोड़ने का संकल्प लिया होगा। मन्दोदरी रावण के इस कुत्सित कार्य के बारे में समझ नहीं पा रही थी। क्या यह वही लड़की है, जिसे रावण ने वस्त्रों में लपेट कर जनकपुरी की कृषि-योग्य भूमि में थोड़ी-सी मिट्टी में ढँका होगा और राजा जनक के हल की नोंक से टकराने पर वह कुम्भ मिल गया होगा? क्या रावण ने यह सुनोयोजित प्रबन्ध किया था। इस तरह के अनेक कथानक कवि की कल्पना में साकार रूप लेते हैं। मन्दोदरी सीता को समझाते हुए उसे आश्वासन देती है कि वह शीघ्र ही अपने पति राम के पास सुरक्षित पहुँचेगी- यह कहकर वह उसके मस्तिष्क पर लंकावासियों की कु-दृष्टि से बचाने के लिए काला टीका लगा लेती है। मगर उसके बाद वह यह सोचना शुरू कर देती है कि लंका के अंतिम दिन अब ज्यादा दूर नहीं है। धीरे-धीरे अपने पुत्र अक्षय की हनुमान के हाथों मृत्यु, बाली के पुत्र अंगद द्वारा रावण की सभा का अपमान, लंका दहन, देवर विभीषण का निष्कासन, मन्दोदरी को धीरे-धीरे तोड़ने लगे। मन्दोदरी को मन ही मन सीता में अपनी बेटी नजर आने लगी। इन सारी बातों में रावण सहमत थे मगर उस निर्णायक घड़ी में सत-परामर्श को मानने का सवाल ही नहीं उठता था। अपनी रावण संहिता के अनुसार वीर-पुरुष द्वारा एक बार कदम आगे बढ़ाने के बाद पीछे हटाने का सवाल ही नहीं उठता था। सीता अपहरण के पीछे भी एक सुनिश्चित उद्देश्य था। शूर्पणखा का प्रतिशोध, नारी के अपमान का प्रतिकार। सीता तो बालिका थी। उसके मन में स्वर्ण मृग के चर्म की आकांक्षा बाल सुलभ थी, मगर राम तो विद्वान थे, वे तो समझा सकते थे कि हर चमकती हुई वस्तु सोना नहीं होती। सोने का यह लोभ किस तरह प्राणियों को अंधे कुएँ में ढकेल देता है। राम का उस हिरण के पीछे दौड़ना क्या उचित था? लक्ष्मण का सद्-विवेक क्या मार खा गया था, जिसने राम के आदेश का उलंघन किया था? अगर मैं सीता का अपहरण नहीं करता तो उसके द्वारा पहने हुए स्वर्ण आभूषणों के लिए कोई वन-दस्यु करता, तो शायद सीता जीवित भी नहीं बचती या तो वे लोग उसे मार डालते या फिर वन के जंगली पशु शेर, चीते, बाघ, शूकर, विषैले कीट, अजगर उसे जिंदा खा जाते। मैं उसका अपहरण कर समाज को यह संदेश देना चाहता था कि हर साधुवेशधारी व्यक्ति पर विश्वास करना ठीक नहीं है।

राम और लक्ष्मण तो क्षत्रिय थे मगर उन्होंने साधुवेश क्यों धरण किया? मैं तो जन्म से ब्राह्मण था इसलिए साधुवेश धारण कर भिक्षा मांगने गया। मैंने कोई छल-कपट नहीं किया है। न मेरे मन में कोई कुत्सित भावना थी। मै तो तीर चलाकर एक साथ कई लक्ष्य साधना चाहता था, ताकि समाज में स्त्रियाँ विशेषकर सजग हो जाएँ। मैं तो खुद नहीं चाहता था कि सीता राम से अलग रहे, और न ही मेरे मन में सीता के प्रति कोई खराब भावना थी। मैं तो उसे अपनी बेटी की तरह मानता था। जंगल के बीहड़ों में वह सुरक्षित नहीं थी और वनवास की शेष अवधि में उसके लिए कोई सुरक्षित स्थान भी नहीं था। इसलिए लंका की सुन्दर मनोहर अशोक वाटिका के सर्वाधिक घने और विशाल छायादार पवित्र अशोक वृक्ष के नीचे उसे रखना मेरे लिए श्रेयस्कर था। सपने में भी सीता को लेकर कोई निंदनीय विचार मेरे मन में नहीं आया।

रावण की वागविदग्धता का मन्दोदरी मन ही मन लोहा मानती थी, फिर भी उसकी शंकाओं का समाधान नहीं हुआ कि रावण ने सीता की रक्षा करनेवाले जटायु का वध क्यों किया? सशस्त्र दासियों से डराने का प्रयास क्यों किया? मगर रावण ने सभी प्रश्नों का अविचलित होकर उत्तर दिया कि जटायु तो मुर्दों के शरीर को नोंच-नोंच कर खाने वाला हिंस्र गिद्ध जाति का पक्षी है, उसपर कैसे विश्वास किया जा सकता है? हो सकता है वह सीता को अपना शिकार बना सकता था? इसी तरह हनुमान रामदूत था, मगर राम नहीं। इसलिए राम के वानर दल की शक्ति की परीक्षा लेना भी मेरा उद्देश्य था ताकि मैं उसके बल का अनुमान लगा सकूँ कि वह कितना बुद्धिमान, तेजस्वी या योगी पुरुष है। इसी तरह अंगद मेरे प्रतिद्वन्द्वी बाली का सुपुत्र था। मैंने उसके बाल मन को रखने के लिए उसका पाँव उठाने का नाटक मात्र किया था। सभी महारथी योद्धाओं ने तनिक भी अपनी शक्ति नहीं लगाई। विभीषण शुरू से मुझे अपना भाई न समझकर शत्रु समझता था। उसकी दृष्टि हमेशा लंका के राज्य पर लगी रहती थी। वह मेरे आराध्य देव शिव को न मानकर विष्णु की भक्ति करता है और दुश्मनों के साथ हमेशा साँठ-गाँठ बनाए रखता था। इसलिए आस्तीन के साँप से छुटकारा पाने के लिए मैंने लात मारकर उसे राज्य से निष्कासित कर दिया। रही सीता को डराने की बात तो मेरा दासियों को स्पष्ट निर्देश था कि वह उसे तनिक भी क्षति न पहुँचाएँ, केवल भयाक्रान्त करें, क्योंकि मैं उसके साहस, संकल्प और आत्मबल की परीक्षा लेना चाहता था। राजमहल में उसे लाना भी उसकी सुरक्षा के लिए था। मैं जानता हूँ, किसी स्त्री के आँसू की एक बूँद मेरा हृदय भेदने के लिय पर्याप्त है। अगर फिर भी तुम्हें विश्वास न हो तो क्या रात में तुम अकेले मिलने जा सकती या तुम्हारी विश्वस्त सखी त्रिजटा उसके नजदीक पहुँच पाती? मेरे गुप्त सूचना तंत्र इतने भी कमजोर नहीं हैं कि मुझे यह सारी बातें पता न चलती। मैं जानता हूँ हमारी राक्षस जाति, जो दूसरों की रक्षा के लिए विख्यात हो सकती है, मद में चूर और नित्य सुरापान में कमजोर हो चुकी है। इसलिए इस जाति का नष्ट होना जरूरी है। राम रावण का युद्ध तो केवल निमित्त मात्र

है। इस यज्ञ में मुझे अपने बेटों और भाइयों की भले आहुति ही क्यों न देनी पड़े। इस तरह रावण ने मंदोदरी की सारी शंकाओं का समाधान कर दिया और उससे कहा मैं तुमसे केवल यह अपेक्षा रखता हूँ कि युद्ध की समाप्ति के बाद सीता को ससम्मान उसके घर अर्थात पति के पास पहुँचा देना, यह कहते हुए कि वह पवित्र अग्नि की तरह लंका में रही है। जैसे कोई विवाहित बेटी अपने मायके में रहती। तुम्हारी गणना त्रेता युग की सर्वश्रेष्ठ नारियों में होगी। तुम्हारी बात पर सारी दुनिया बात करेगी। ऐसा कहकर रावण अपने कक्ष में लौट गए और रह गया मन्दोदरी का सजल आर्त्तनाद, भीषण चीत्कार, अग्निकण बरसते बादलों की तरह और स्वर्ण कुम्भ फूटने से दिगभ्रमित दशों दिशाओं की तरह।

तेइसवाँ सर्ग

सुलोचना का दुख

सुलोचना रामायण का एक उपेक्षित पात्र है जिसके बारे में जन-सामान्य को बहुत कम जानकारी है। त्रेता के माध्यम से कवि उद्भ्रांत ने सुलोचना के चित्रांकन में कोई कमी नहीं छोड़ी है। सुलोचना एक ऋषिकन्या थी, शिवभक्त थी, सदैव शिव आराधना में लगी रहती थी। एक दिन शिव मंदिर में एक सुंदर सुगठित शरीर बाले तेजस्वी युवक को देख कर वह मंत्रमुग्ध हो गई। उसे यह पता नहीं था कि वह रावण का पुत्र मेघनाद है। मेघनाद से प्रथम प्रेम दृष्टि शीघ्र ही विवाह में बदल गई। उसके जादू भरे सम्मोहक लोचनों को देखकर मेघनाद ने उसका नाम सुंदर लोचन वाली अर्थात सुलोचना रखा। ससुराल में माँ मंदोदरी सदैव उसकी कपूर के दिए से आरती उतारती ताकि उस पर किसी की भी कुदृष्टि न पड़े। जब सुलोचना को रावण द्वारा सीता का अपहरण, रामदूत हनुमान द्वारा अक्षय का संहार और उसके बाद मेघनाद द्वारा अशोक वन में हनुमान से लड़ाई करने के लिए पहुँचना आदि घटना क्रम याद आते तो उसका रोम-रोम काँप उठता था और "शिव-स्तोत्र" पढ़ना शुरू कर देती थी। जब सुलोचना ने सोने की लंका को आग की लपेटों में धू-धू जलते देखा तो उसे किसी अनहोनी घटना की आशंका होने लगी और वह लंका की सुरक्षा के लिए रात-दिन शिव की पूजा-पाठ करने लगी। जब सुलोचना को यह पता चला कि उसके पति मेघनाद ने दधीचि की हडिडयों से बने बज्र के द्वारा लक्ष्मण को सांघातिक चोट पहुंचाकर मूर्च्छित किया है और सिवाय संजीवनी बूटी के प्रयोग के वह बचाया नहीं जा सकता, तब लक्ष्मण के प्रति मन में एक अलग प्रकार के भाव प्रकट हुए। वह सोचने लगी शायद उसे शत्रु मानकर ही युद्ध में अपनी अमोघ शक्ति का प्रयोग नहीं किया होगा। सुलोचना को लक्ष्मण की चेतना लौट आने पर कुछ अनहोनी घटने का आभास होने लगा। मेघनाद के युद्ध में जाने से पहले उसके मस्तिष्क पर विजय तिलक लगाते हुए कहने लगी थी- क्या यह युद्ध टाला नहीं जा सकता था? क्या राम के पक्ष से युद्ध न करने के लिये आए हुए संदेश माने नहीं जा सकते थे? तरह-तरह के सवाल करते हुए सुलोचना ने युद्ध संबंधित निर्णय पर पुनर्विचार करने की प्रार्थना की। कवि उद्भ्रांत ने सुलोचना के मनोविज्ञान को अच्छी तरह व्यक्त किया हैं:-

रण के लिए प्रस्थान करते
मेघनाथ को विजय-टीका मस्तक पर लगा
विदा करने से पहले
मैंने पूछा, "प्रिय!

क्या यह युद्ध अपरिहार्य था?
नहीं टाला जा सकता था इसे?
जनकनंदिनी सीताजी को
जो ले आए महाराज रावण
लंका नगरी में,
क्या उनका कार्य यह उचित था?

प्रत्युतर में मेघनाद ने गंभीरता पूर्वक सुलोचना का अवलोकन करके उत्तर दिया कि रावण ने महा पंडित, वेदों और शास्त्रों का ज्ञाता होने के बाद भी, अगर सीता का अपहरण किया है तो इसके पीछे भी कोई राज होगा और युद्ध के परिणामों से भली-भाति परिचित होंगे? मैं तो केवल उनका पुत्र होने के साथ-साथ सेना-नायक हूँ और युद्ध से सम्बन्धित सारे निर्णयों का फैसला राजा को करना होता है, न कि सेना-नायक को। मैं जानता हूँ युद्ध से सम्बन्धित कोई भी निर्णय उचित नहीं होता, क्योंकि उसका परिणाम आने वाली पीढ़ी भुगतती है। मेरे लिए तो केवल अस्मिता की खातिर युद्ध करना अपरिहार्य हो जाता है। अन्यथा लोग मुझे प्राणों के मोहवश हुआ जान अनुचित समझेंगे। फिर भी मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ आज शाम को सेना नायक की नहीं, वरन् पुत्र की हैसियत से सम्पूर्ण विषय पर मैं रावण से बात करूँगा। उद्भ्रांत जी अपनी पारंपरिक शैली में मेघनाद की मन:स्थिति को उजागर करते हैं:-

"फिर भी मैं
तुम्हें भरोसा याद दिलाता हूं
आज सायं
युद्ध के पश्चात मैं
महाराज से,
सेनानायक नहीं-
एक पुत्र की तरह से
करूंगा विमर्श-
इस समग्र स्थिति पर। "

इस तरह सुलोचना ने मेघनाद के हृदय में युद्ध पर पुनर्विचार के बीज को बो दिए थे। मन्दोदरी युद्ध की नवीनतम स्थिति के बारे में बार-बार पूछती थी। रावण ने उस दिन कुम्भकर्ण को जगाया था तो उसके सद् परामर्श देने के बावजूद भी युद्ध के लिए भेज दिया था। बाद में जब पता चला कि कुम्भकर्ण राम के हाथों मारे गए हैं और सेना का उत्साह धीमा पड़ता जा रहा था।

यह देख उनका उत्साह-वर्द्धन करने के लिए मेघनाद लक्ष्मण से विकट युद्ध कर रहे थे और इधर सुलोचना उनकी रक्षा के लिए तीव्र गति से शिवस्त्रोत का पाठ कर रही थी। देखते-देखते लक्ष्मण ने शेषनाग का रूप धारण कर लिया और मेघनाद पर टूट पड़ा। चूँकि सुलोचना की माता नागवंशी थी इसलिए कभी-कभी हँसी मज़ाक में शेषनाग की पुत्री के रूप में पुकारी जाती थी। जैसे ही सुलोचना का चिंतन का भंग हुआ तो उसने देखा उसके आँचल में पति का रक्तस्नात बाणबिद्ध सिर पड़ा हुआ था। मानो वह कह रहा हो देखो प्रिये, मैं युद्ध भूमि से तुम्हारे पास तुम्हारे आँचल में लौट आया हूँ, इस निरर्थक विनाशकरी युद्ध पर विमर्श करने के लिए। सुलोचना के मस्तिस्क पर क्या गुजरी होगी, यह नहीं कहा जा सकता। मगर सती सुलोचना के जीवन की सबसे बड़ी मर्मांतक लोमहर्षक घटना के अतिरिक्त और क्या हो सकता है। उसने उस भोले-भण्डारी का आशीर्वाद मानकर इस घटना को स्वीकार कर लिया। कवि उद्भ्रांत जी की कल्पना की लंबी उड़ान निम्न पंक्तियों में अभिव्यक्त होती है:-

मेरे आंचल में
पति का रक्त-स्नात बानबिद्ध शिर था पड़ा,
और पति की सुंदर आंखें
मेरी आँखों में दृष्टि डालकर
कह रही थी मुझसे-
'प्रिय! देखो
लौट आया मैं
युद्धभूमि से तुम्हारे पास
फिर से तुम्हारे ही आँचल में-
लंकाधीश से उनके द्वारा छेड़े गए
इस निरर्थक विनाशकारी युद्ध
पर विमर्श करने के लिए;

'अब तो मुस्करा दो तुम,
अब तो हो जाओ प्रसन्न भी! '

चौबीसवाँ सर्ग

धोबिन का सत्य

कवि उद्भ्रांत ने इस पात्र की मौलिक कल्पना की है। धोबिन एक जातिवाचक शब्द है, जिसका अर्थ है राम के समय हिन्दू धर्म में अनेकानेक जातियाँ व्याप्त थी। इस सर्ग में हिन्दी भाषा का प्रयोग न करके बृज भाषा का प्रयोग ज्यादा हुआ है। जिसके पीछे उनका उद्देशय तत्कालीन समाज की लोक प्रचलित भाषाओं को आगे लाने के साथ-साथ उस पात्र को सशक्त बनाने का प्रयास किया है।

अनेक लोगों के मैले-कुचेले कपड़े लेकर धोबिन सरयू नदी के घाट पर उन्हें धोती और नदी में सूरज भगवान की प्रतिमा देखकर ईश्वर की आराधना करती है। उसका पति दिन भर मटरगश्ती करता व गलत दोस्तों के साथ चौपड़, जुआ खेलना या फिर पूरे दिन निठ्ठला होकर बैठना, रात में खूब दारू पीना, घर में पत्नी से मार-पीट और गालियों की बरसात करना आदि सारे काम थे। यह कैसा राम राज्य था, जहाँ औरत की कमाई पर पति गुलछर्रे उड़ाता हो? यह सोचकर धोबिन ने राम के जनता दरबार में जाकर अपनी दुःख व्यथा को रखने का निर्णय लिया कि अगर कोई मेरे आदमी की बुद्धि ठीक कर ले तो उससे ज्यादा उसे और कुछ नहीं चाहिए। धोबिन ने सोचा कि अगर वह घर में एक पहर खाना नहीं बनाएगी तो उसके मर्द की बुद्धि ठिकाने आ जाएगी। यह सोचकर वह अपने पीहर चली गई। मगर माँ ने एक सीख दी कि पति का घर ही ब्याही गई बेटी का असली घर होता है, इसलिए कभी भी बिना बताए उसे नहीं निकलना चाहिए। यह सोचकर जब वह वापस अपने घर लौटी तो उसने देखा उसका पति खाट पर बैठा देशी दारू पिया हुआ है और उसे देखते ही बुरी-बुरी गालियाँ देते हुए कोठरी के भीतर खींचकर ले गया और लात-घूँसों की बरसात करने लगा। “धिक्कार! सारे दिन तुम कहाँ रही थी? धोबिन के पति ने उससे सवाल किया तो उसने सारी कहानी बता दी कि माँ कि तबीयत ठीक नहीं होने के कारण उसे देखने गई थी। उसकी पोटली में से खाने के सामान के साथ-साथ सोने की गिन्नी गिरी, तो धोबी उसे और ज्यादा पीटते हुए कहने लगा कि तू सती सावित्री होने पर भी, अग्नि-परीक्षा देने पर भी मैं तुम्हें नहीं रखूँगा। तुम्हारे छिनालपन का प्रमाण मुझे मिल गया। मैं भले ही छोटी जाति का हूँ, मुझे रामचन्द्र समझने की गलती मत करना, जिसने अनदेखी नौटंकी अग्नि-परीक्षा की बात कहकर दुश्मन के घर में कई महीने बिताकर आई सीता को फिर से अयोध्या की महारानी बना दिया। मुझे बिना बताकर दिन भर बाहर रहकर अपने प्रेमी के साथ मटरगश्ती कर सोने की गिन्नी लाकर मेरे सामने नाटक कर रही है। जा तू यहाँ से भाग, राजा से मेरी शिकायत कर- यह कहते हुए फिर से उसने धोबिन के पेट पर ज़ोर से लात मार दी।

देखते-देखते यह सारी बात एक साँस से दूसरी साँस, एक कान से दूसरे कान में पहुँचती हुई, राजमहल के धवल पत्थरों की चार दीवारों को लाँघकर सीता-राम के शयन कक्ष में पहुँच गई और इस हवा के अर्थ की गूँज सुनकर सीता फिर से सुनसान जंगल की तरफ साँय-साँय करती निकल पड़ी। धोबिन के मन में उसके पति के अत्याचार के विरुद्ध उठ खड़ा होने के लिए गहरा विश्वास पैदा हो रहा था। उसकी दृष्टि में चाहे रामराज्य हो या रावण राज्य, उसे अपने सतीत्व का प्रमाण देना ही होगा, चाहे अग्नि से, नहीं तो जल से, नहीं तो हवा से, आसमान से या फिर इस धरती मैया की मिट्टी से सच का प्रमाण देना ही होगा।

पच्चीसवाँ सर्ग

मैं जननी शम्बूक की: दलित विमर्श की महागाथा

अधिकांश पाठकों को शम्बूक के बारे में जानकारी नहीं है। शम्बूक रामकथा का एक काला अध्याय है। जो तत्कालीन समाज की जाति-प्रथा पर सवाल उठाता है कि अयोध्या के महाराज रामचन्द्र के आदि पुरखे स्वायंभुव-मनु ने मनुसंहिता लिखी और उसके अनुसार समाज-रूपी पुरुष का मुख ब्राहमण, हाथ क्षत्रिय, उदर वैश्य और जांघ शूद्र है। ब्राहमणों के कर्म में वेदाध्ययन, तपश्चर्या, राजदरबारों के कारोबार, पंडिताई और दक्षिणा लेकर जीवन यापन करना, क्षत्रियों को राजा के हित में तलवार उठाना तथा वैश्य को व्यापार एवं शूद्र को समाज की गंदगी साफ करने का निर्देश दिया गया था। शम्बूक की माँ शूद्र थी। वह ऊँची जातियों के साथ बैठ नहीं सकती थी, वैवाहिक संबंध तो दूर की बात, साथ में बैठकर भोजन करने का भी अधिकार नहीं था, मंदिर जाने में भी प्रतिबंध था। ब्राहमण क्षत्रिय और वैश्य दूर-दूर से खड़े होकर बातें करते हैं। तथा अस्पृश्यता तो इतनी भयानक थी कि उनके लिए पानी की व्यवस्था भी अलग से की जाती थी। इस तरह का सामाजिक विभाजन देखकर दस ग्यारह वर्षीय शम्बूक सदियों से चली आ रही भेद-भाव की रीति पर सवाल पूछता तो उसकी माँ या तो चुप रहकर या फिर हंसी-मज़ाक में टाल देती थी। शम्बूक का पिता अपने जाति-भाइयों के साथ सिर झुकाकर अपने को तुच्छ समझे जाने वाले काम करता जाता था। भले ही उसे गंदी-गंदी गालियाँ या झिड़कियाँ क्यों न मिले। रामराज्य में ये सारी विसंगतियाँ विडम्बनाएँ भरी हुई थीं।

मगर शम्बूक बचपन से गंभीर, अपने आप में खोया हुआ, ऋषि आश्रम में वेदाध्ययन करते बच्चों को देख भावपूर्ण होकर एकांत में वेदों की वाणी सुना करता था। शम्बूक की यह क्रिया-कल्पना देखकर उसकी माँ मन ही मन काँपने लगती थी और उसे भयभीत होकर समझाने का प्रयास करती कि वह इस तरह का "असामाजिक दृष्टि वाला जघन्य कर्म न करे। " शम्बूक जिज्ञासा-वश अपनी माँ से सवाल करता था कि अगर समाज का मुख ब्राहमण है तो उसे पेट भरने की क्या जरूरत है? उनकी सारी रुचि, क्रियाएँ जब हमारी तरह ही है तो हमारे और उनके बीच में यह अंतर क्यों है? जब हमारे मुख, आँख, नाक, कर्ण, उदर, पाँव, जननेन्द्रिय सभी ऐसी ही हैं जैसे ब्राहमणों के, तब हमें मंदिर में जाने से क्यों रोका जाता है? अगर हमारे पाँव हैं, तो क्या अगड़ी जतियों के लोगों के पाँव नहीं हैं? क्या ब्राहमण मंदिरों में, क्षत्रिय युद्ध भूमि में और वैश्य व्यापार करने के लिए जिन पाँवों का सहारा लेते हैं, क्या वे पाँव हमारे नहीं है? अगर हमारी हमारी मदद से उनके कर्मों का सफल सम्पादन होता है तो फिर हम किस तरह से हीन है? जिस तरह सारी इंद्रियों के पारस्परिक सामंजस्य होने के बाद ही छोटे से छोटे कार्य को

संपादित किया जाता है। इसी तरह मनुष्य के सारे अंग एक दूसरे से सामंजस्य बैठाकर अपने कार्य का निष्पादन करते हैं। हमारे शरीर का मस्तिष्क शरीर के समस्त अंगों को विधि पूर्वक काम करने के लिय निर्देश देता है, तो क्या उन अंगों की अनुशासनप्रियता को मानदंड मानकर क्या हीन समझा जाएगा? क्या यह एक संस्कार नहीं है? रामराज्य में इन चीजों को सम्मान नहीं मिलना चाहिए?

इस तरह के तर्क सुनकर शम्बूक की निरक्षर माता कुछ समझ नहीं पाती थी। मगर उसे लगता था कि वह छोटा-सा बालक गलत नहीं बोल रहा है, कहीं ऐसा तो नहीं है कि गुरुकुल आश्रम के पीछे छुपकर जो वह सुनता है, उसी शिक्षा की प्रतिक्रिया तो नहीं है? सदियों से चले आने वाले सूर्यवंशियों के सर्वश्रेष्ठ राजा राम के अयोध्या के शासन में अगर जात-पाँत, भेद-भाव, छुआ-छूत, आर्य-अनार्य के झगड़े नित्य गली मुहल्ले, गाँव-नगर में देखने को मिलते हैं, तो रामराज्य का क्या अर्थ रह जाता है? क्या शूद्रों को विकसित जतियों की तरह सोचने का अधिकार भी नहीं है? शम्बूक का यह अंतर्द्वंद्व, उसके मस्तिष्क में उठ रहे झंझावात, किसी नए समाज की रचना हेतु स्वस्थ संविधान के रूप में मनुस्मृति को हटाकर शम्बूक-संहिता रचने का इरादा तो नहीं है? शम्बूक समाज की मुख्य धारा में जुड़ना चाहता था और उसके यह क्रांतिकारी विचार माँ-पुत्र की उग्र मनस्थिति को दर्शाते थे। एक बार जब अयोध्या में अकाल पड़ा, दूर-दूर तक बादल दिखाई देने का नाम नहीं ले रहे थे, जो बादल गरजते थे, भी बरसते नहीं थे। किसानों के घर के चूल्हे उदास थे। गायें कृशकाय हो गई थीं और मवेशी काल के कराल-गाल में समाते जा रहे थे। तब इन्द्र को दंडित करने के लिए ध्यान लगाकर कठिन तपस्या करने लगे। वे दिन राम राज्य के लिए अत्यन्त ही भयानक दिन थे। शम्बूक का परिवार भी अकाल की चपेट में आ गया। ऋण लेकर वे अपना घर परिवार पालने लगे। उस दौरान शम्बूक सुबह जल्दी निकल जाता था और रात को देर से आता था। जब उसे इस बारे में पूछा जाता था तो वह कुछ भी उत्तर नहीं देता था। एक बार उसके पिता ने उसे बड़े वटवृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर ॐ का सघोष उच्चारण करते हुए तपस्या में लीन देखा, तो उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। शम्बूक की समाधि का यह समाचार जंगल की आग की तरह समाज के कोने-कोने में पहुँच गया और तत्कालीन समाज के समक्ष एक प्रश्नवाचक बनकर पुनः उठाने लगा कि त्रेता के इस युग में जब एक शूद्र तप करेगा, तो सारी सृष्टि उलट-पुलट क्यों नहीं होगी? जल की जगह बादल अग्नि-स्फुलिंग की वर्षा करेंगे। नदियों में आग बहेगी, हिमालय में ज्वालामुखी फूटेगी, रामराज्य में रावण के राज का आधिपत्य होगा। कारण- एक शूद्र जंगल में तप कर रहा है, तो मनुस्मृति से संरक्षित महान भारत देश को पतन के गर्त में गिरने से कौन रोक पाएगा? 'मनुस्मृति' की निरर्थकता को कवि उद्भ्रांत जी अपने शब्दों में लिखते हैं:-

"मनुस्मृति कहती है-

हम ही वे पाँव हैं, तो-
बाम्हन के, क्षत्रिय और वैश्य के
निर्धारित कर्म,
होते संपन्न क्या-
हमारे ही द्वारा नहीं?"

"और अगर हमारी ही मदद से
कर्मों का होता सफल संपादन,
तो फिर हम-
हीन किस तरह से है?"

शम्बूक की साधना देखकर गाँव वाले लोग उसकी माँ पर भी व्यंग्यबाण छोड़ने से नहीं चूकते थे। वे कहते थे- तेरे बेटे की साधना से इन्द्र का आसन हिल रहा है, तेरा बेटा भी विश्वामित्र की राह पर चल पड़ा है। लोग तुझे अब शूद्र की माँ न कहकर इन्द्र की माँ कहेंगे। तेरे नाम का डंका चारों ओर बजेगा। इस तरह-तरह वेधक तीर जैसी बातों दवारा शम्बूक के माता-पिता पर आक्रमण किया जाता था। इन आक्षेपों से बचने के लिए एक दिन शम्बूक की माँ ने निर्णय लिया कि राम के दरबार में गुहार लगाई जाए कि एक दलित जाति के बच्चे को अपने बाल-मन के अनुसार जीवन जीने का भी अधिकार नहीं है? उसने ऐसा क्या भीषण अपराध कर लिया कि उसकी अभागी माता को समाज के लोगों द्वारा व्यंग्योक्तियों और लोकोक्तियों का शिकार होना पड़ा। इससे बेहतर तो उसके लिए जहर खाकर मरना ज्यादा उचित है। जब शम्बूक की माँ ने इस सामाजिक अन्याय के विरोध में राम के दरबार में गुहार लगाई तो उसे प्रतीक्षा करने के लिए कहा गया। उसे लगने लगा क्या राम भी बलवान लोगों का साथ देते हैं', निर्बलों का नहीं? क्या रामराज्य में भी उसे न्याय नहीं मिल पाएगा? अन्ततः जब उसे राम जी के सभाकक्ष में बुलाया गया तो उस समय सभा में वशिष्ठ, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान, मंत्री सुमन्त मौजूद थे। इसके अतिरिक्त, गाँव के बाहुबली, ब्राहमण, मुखिया, व्यापारी, सेठ, मौजूद थे, मगर सीता अनुपस्थित थी। इससे पहले कि शम्बूक कि माँ अपनी बात रखती उससे पूर्व ही गाँव के मुखिया ब्राहमण ने बोलना शुरू कर दिया कि यह तो शम्बूक की ही माँ है, जिसके पुत्र द्वारा समाज विरोधी कार्य किया जा रहा है। जिसके कारण राज्य में दुर्भिक्ष फैला है। बारिश नहीं हो रही है, राम-राज्य की उदारता का लाभ उठाकर अगर कोई शूद्र तपस्या करेगा तो ब्राहमण क्या करेंगे? व्यापारियों का व्यापार ठप्प हो जाएगा, क्योंकि उनके अधिकांश ग्राहक तो ब्राहमण और क्षत्रिय ही हैं। शम्बूक के कारण समाज का प्रगति चक्र रुक जाएगा। तरह-तरह की दलीलें देने के बाद समाज के तीनों वर्ग के ब्राहमण, क्षत्रिय वैश्य के स्वयंभू प्रभुओं ने आधी रात को गुपचुप मंत्रणा

कर नमक-मिर्च लगाकर राम के चिंतन को पूर्वाग्रह से युक्त करने का सफल प्रयास किया। तब राम ने अपनी मधुर वाणी में शम्बूक की माँ को कहा कि मुझे कई विश्वसनीय सूत्रों से पता चला है कि तुम्हारा बेटा कोई अपवित्र यज्ञ कर रहा है, जिसके कारण समाज में बवंडर उठने वाला है। इसलिए इस विषय पर विस्तार से चर्चा करने के लिए मैंने मंत्री-परिषद की आपात बैठक बुलाई है, ताकि समूचे समाज का हित किया जा सके। शम्बूक की माँ अपना पक्ष रखती हुई कहने लगी कि गाँव का मुखिया तो मुझे शम्बूक को जन्म देने के लिए आपके समक्ष दोषी सिद्ध कर चुका है। मेरा बेटा शम्बूक जिज्ञासु प्रवृत्ति का है। समाज की दुविधाओं, विडम्बनाओं और विचित्रताओं को देखकर उसके मन से हजारों सवाल उठते हैं। वह दूसरों का कष्ट देखकर खुद दुःखी हो जाता है। उसका बेचैन हृदय समाज के कठिन प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए तड़पता है। ऐसा मेरे बेटे ने क्या अक्षम्य अपराध कर लिया? उसे दंड देने से पूर्व आप मुझे दंड दें। शम्बूक की माँ का पक्ष सुनने के बाद राम ने उसे आश्वासन देकर घर लौटा दिया कि उसके साथ किसी भी तरह का कोई अन्याय नहीं होगा। इससे पूर्व कि वह अपनी कुटिया में पहुँचती उससे पहले ही गाँव के बलिष्ठ, हृष्ट-पुष्ट ऊँची जाति के लोगों ने लाठियाँ बरसा कर उसके पति की नृशंस हत्या कर दी। इस नृशंस दृश्य का आँखों देखा वर्णन कवि की निम्न पंक्तियों से झलकता है:-

पहुंची जब कुटिया में अपनी तो
देखा शंबूक के पिता को
रक्त से लथपथ;
मेरी जाति के अनेक लोग वहां
उपस्थित थे आसपास,
जिन्होंने बताया मुझे-
'गांव के बलिष्ठ हृष्ट-पुष्ट कई लोग ऊंची जातियों के
आए थे थोड़ी देर पहले ही
लाठियों से लैस हो,
और उन्होंने उसकी
कर दी हत्या नृशंस
बिन कहे-सुने कुछ भी!

क्या वह वापस राम के दरबार जाएगी ? शम्बूक को जन्म देने के लिये उसके पति को अपराधी मानकर मार दिया गया। जैसे-तैसे पति की लाश को श्मशान घाट में चिता पर जला रही थी, वैसे-वैसे उसे न्याय की आशा भी आग की लपटों में जलते हुए नजर आती थी। इस बात की

सूचना कैसे अपने ही बेटे को दे पाती और कैसे समझा पाती कि तप-वप में क्या रखा है, यह तो पूर्ण अन्यापूर्ण कार्य है। तुम तो युवा हो और तुम्हें अपनी युवाशक्ति का रचनात्मक सदुपयोग करना चाहिये। कोई कार्य तुच्छ माने जाने पर भी तुच्छ नहीं होता, जब तक उसे तन्मय होकर एकनिष्ठ भाव से नहीं किया जाता है। दूसरी तरफ माँ की ममता उसे समझाने लगती है कि जब बालक ने कुछ करने का ठान ही लिया है तो उसे क्यों रोका जाए? जिसकी वजह से किसी का अहित तो नहीं होता, वह तो अपनी आत्म-शुद्धि करना चाहता है और आखिर कब तक करेगा वह? वह नई ऊर्जा, नए तेज और नव्यतम स्वर के साथ स्वप्नलोक में लौट आएगा और अनुत्पादक, अनुपयोगी, असफल सिद्ध हो चुकी तथा-कथित तपस्या से कुछ सार्थक संकेत ग्रहण करेगा। यह सोचते-सोचते जब वह श्मशान घाट से घर लौटी तो एकाकीपन की अनुभूति उसके ऊपर क्रूर संघात करने लगी और उसके समाज के निर्बल लोग आँखों में आँसू लिए, कतराते और असहायता के साथ गोल घेरा बनाकर खड़े थे, उनके चेहरे की हवाइयाँ उड़ी हुई थीं। तभी एक वृद्ध पड़ोसी ने उसे कहा कि राम के मंत्री परिषद ने शम्बूक को एक स्वर में समाजद्रोही घोषित किया है कि उसे बिना किसी को बताए सामाजिक विनियमों का उल्लंघन कर शिव की तपस्या के पावनतम कर्म को पूजन-अर्चन की मान्य विधियों से दूर रहकर, अपवित्र करने का अभूतपूर्व अपराधी घोषित किया है और उसके इस अपराध के कारण समाज में हर जगह अव्यवस्था, अशांति और अपरिपक्व क्रांति का खतरा मंडरा रहा है। मंत्री-परिषद की इस संस्तुति को मानकर राम ने भयंकर अपराध के लिए कठोरतम दंड देने का निर्णय लिया है। शम्बूक की माँ अविलम्ब किंकर्तव्यविमूढ़ होकर उस जगह पहुँची, जहाँ उसका बेटा वटवृक्ष के नीचे बैठकर तप कर रहा था। जिसके चारों ओर अयोध्या के विशिष्ट नागरिक, सम्भ्रान्त व्यक्ति, समूचा मंत्री परिषद, सशस्त्र सैनिक, घुड़ सवार, महर्षि वशिष्ठ, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, सुमन्त सभी खड़े थे और शम्बूक के सामने इस युग के सर्वश्रेष्ठ मानव, सूर्यवंश के गौरव, मर्यादा पुरषोत्तम राम अपने दायें हाथ में तलवार तानकर खड़े थे, जिन्हें रावण पर विजय के उपरांत बढ़ती लोकप्रियता को देखकर लोगों ने भगवान तक कहना शुरू कर दिया था।

खड़े थे तपस्या-लीन
शंबूक के समक्ष
दाएं हाथ में खींचे तलवार-
इस योग के सर्वश्रेष्ठ मानव,
सूर्यवंशियों के गौरव
मर्यादा पुरुषोतम राम;
जिनकी रावण पर विजय के उपरांत
बढ़ी थी जनप्रियता इतनी-

कि उनको लोगों ने
शुरु कर दिया था कहना-
भगवान ही!

शम्बूक कहता था- मनुस्मृति के अनुसार राजा, प्रजा के लिए भगवान का स्वरूप ही होता है, जिस तरह पिता के लिए एक पुत्र। भगवान राम उसे वर देने के लिए वहाँ नहीं खड़े थे, वरन ॐ नमः शिवाय का जप करनेवाले उसके अपवित्र शीश को धड़ से पृथक करने के लिए खड़े थे। भगवान राम अपने राज्य में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों को अभयदान देकर अपनी मर्यादा की स्थापना करने तथा शम्बूक की माँ की तरह निर्बल, असहाय, अनगिनत शूद्रों को अपनी सीमा में रहने की अपरोक्ष चेतावनी दे रहे थे। आखिरकार त्रेता युग में जो कुछ भी राम कहेंगे वे भगवान के वचन होंगे। उनका यश सभी दिशाओं में फैलेगा। जिसके तप में शम्बूक की माँ की आत्मा झुलसकर हमेशा-हमेशा बंद हो जाएगी और आने वाले किसी युग में खुलने का इंतजार करेगी।

-शंबूक ने बताया था
'मनुस्मृति कहती है-
अपनी प्रजा के लिए
राजा तो होता भगवान का स्वरूप ही;
पिता-
पुत्र के लिए
होता जिस तरह से। '
साधना में,
चिंतन में आत्मलीन
अपनी ही प्रजा एक बेसुध जन,
एक पुत्र
एक भक्त के समक्ष-

शम्बूक की कथा वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में मिलती है। शम्बूक की कथा भवभूति जैसे प्राचीन संस्कृत नाटककारों की रचनाओं में तथा मध्ययुगीन क्षत्रिय रामायण में मिलती है। इन नाटकों में राम के इस कार्य को राजकीय कर्तव्य के रूप में निष्पादित करते हुए सही ठहराया है। भक्ति साहित्य में शम्बूक को भगवान के हाथों द्वारा मारे जाने के कारण जन्म-मरण के बंधनों से मुक्त होते दर्शाया गया है। आधुनिक समय में रामायण की यह कहानी तत्कालीन घोर जातिवाद के पक्षपात के रूप में देखी जाती है। ई.व. रामस्वामी (E.V.Ramaswami) के अनुसार यह कथा बताती है कि राम इतने अच्छे राजा नहीं थे,

जितना उनके बारे में बताया जाता है। डॉ॰ भीमराव अंबेडकर का मानना है, यह कथा राम के चरित्र का न केवल उल्लेख करती है, बल्कि उस युग में जाति-प्रथा को जीवित रखने के लिए हिंसा के प्रयोग पर बल देती है। रामायण न केवल जातीय समुदाय का पक्ष लेती है बल्कि उसे बनाए रखने का भी प्रयास करती है। क्योंकि पारंपरिक तौर पर जातियों में अदल-बदल होने का अर्थ सामाजिक स्थायित्व को नष्ट करना है। यहाँ तक कि जातीय स्तर भारतीय इतिहास में विभिन्न जातीय समुदायों के ब्राह्मणों में परिवर्तित होती रही है। न केवल ब्राह्मण बल्कि जमींदार जातियाँ भी सामाजिक रूप से स्वीकृत जैसे शाकाहार को मानने लगी। भारतीय समाज शास्त्र विशेषज्ञ के अनुसार इसे संस्कृतिकरण कहते हैं। मगर पाश्चात्य विद्वान इसे ब्राह्मणीकरण कहना ज्यादा पसंद करते हैं। रामायण में समाज के नीचे तबके के सदस्यों का भी संदर्भ मिलता है। जैसे केवट गुह, आदिवासी, शबरी और कुछ लोग वाल्मीकि, वानर और राक्षस का भी उल्लेख करते हैं। राम का संबंध हर किसी के साथ अलग अलग है। कानून से हटकर भावनात्मक स्थल पर। राम के राजा बनने के बाद शम्बूक की घटना एक घोर अपवाद है। उद्भ्रांतजी की मर्मस्पर्शी पंक्तियाँ इसकी व्याख्या करती हैं:-

खड़े थे भगवान-
उसे वर देने नहीं-
'ओम नमः शिवाय'
का जाप करने वाले
उसके अपवित्र शीश को
उसके धड़ से
पृथक करने!

सुस्थापित करने मर्यादा,
और भी सुदृढ़ करने रामराज्य,
ब्राह्मणों,क्षत्रियों,वैश्यों को देने अभयदान
और मेरे जैसे निर्बल, असहाय
अनगिनती शूद्रों को
देते हुए
-परोक्ष नहीं-
प्रत्यक्ष चेतावनी-
अपनी सीमा में रहने के लिए!

अंततः यह त्रेतायुग
राग का;
इस युग में
राम जो करेंगे
नीति-सम्मत वही होगा,
कहेंगे जो कुछ भी-
वह भगवान के वचन होंगे!

उनके चक्रवर्ती यश का सूर्य
चमक रहा सब दिशाओं में,
जिसके प्रचंड ताप से
झुलसती मेरी आत्मा;

और जिसके तीव्र प्रकाश से चौंधियाकर
बंद हो चुकीं आंखें मेरी
सदा के लिए-

खुलने के लिए
किसी आने वाले युग में।

छब्बीसवाँ सर्ग

उपसंहार: त्रेता में कलि

कवि ने त्रेता काव्य का 'उपसंहार' कविता के रूप में किया है, कि सत्ययुग से प्रारम्भ हुई मानवीय विकास की यात्रा त्रेता युग में आते-आते अपनी निकृष्टतम परिणति अथवा उच्चतम सोपान तक पहुँची, यह कहा नहीं जा सकता। मगर त्रेता ने सत्य की कठिन परीक्षा लेते हुए अग्नि देव की लपटों में उसे तपाकर संतति के रूप में द्वापर को जन्म दिया।

सत्य ने
जन्म दिया था
त्रेतायुग को,
त्रेता ने
सत्य की कठिन परीक्षा ली
अग्निदेव की लपटों में
उसे तपाकर

जिसने सत्य असत्य की महाभारत को देखा और असत्य को जीत कर अटटहास करते एवं सत्य को लहू-लुहान होते देखा। पहली बार रक्त-सम्बन्ध क्रय-विक्रय के सामान बने और मनुस्मृति का तीसरा वर्ण वैश्य संस्कृति के रूप में चारों दिशाओं में पाँव पसारने लगा। उद्भ्रांत जी कहते हैं:-

रक्त संबंध बने
पहली बार
क्रय-विक्रय का सामान!

मनुस्मृति के
तृतीय वर्ण की
वैश्य संस्कृति ने
अपने पसारे पांव चतुर्दिक

काल का सुदर्शन चक्र वायुवेग से चलता रहा। द्वापर के अंत में काल के व्याघ्र द्वारा कृष्ण के सुकोमल तलवे को बेधते ही कलि का प्रादुभाव होता है अर्थात कलि युग में ईश्वर की मृत्यु होने के साथ-साथ भयानक नर-संहार, नारी लज्जा का हरण, पिता द्वारा पुत्री पर यौन आक्रमण,

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मत्सर की दुष्प्रवृत्तियाँ इस युग के प्रभाव से ही दिखने लगी। ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय ने शासन की बागडोर अपने हाथ में संभाल कर चौथे वर्ण को सदैव अपेक्षित किया, हाशिये पर रखा और पाँवों तले कुचला, दबाया। ऐसा ही व्यवहार स्त्रियों के साथ भी हुआ।

चौथे वर्ण को
किया प्रताड़ित सतत,
उसकी उपेक्षा की,
हाशिए पर
उसे सदा ही रखा;

दबाया और-
कुचला पाँवों के तले!

तीनों युगों ने
तीनों वर्णों ने
स्त्री-प्रकृति के संग भी
किया वैसा ही व्यवहार!

त्रेता ने जहाँ मर्यादा की सीमा का उल्लंघन कर एक सुहागिन की अग्नि परीक्षा तथा लोक अपवाद से बचने के लिए गर्भवती पत्नी के निष्कासन के उदाहरण द्वापर को महायुद्ध के महासागर में धकेलने के सिवाय क्या कर सकता था? जिसमें स्त्री प्रकृति के साथ पितामह, दादा और पिता जैसे सम्मानीय पुरुषों की उपस्थिति में क्रूरतम एवं दानवी व्यवहार हुआ। मगर कवि उद्भ्रांत को उम्मीद है कि कलियुग ही ऐसा युग है, जिसमें समाज का वंचित, उपेक्षित, अंतिम और असहाय, शोषित, पीड़ित वर्ग को आखिरकार समानता के अधिकार के माध्यम से प्राकृतिक न्याय मिलेगा और समाज से हमेशा-हमेशा के लिये विषमता का अंधेरा समाप्त हो जाएगा।

ताकि इस जगत का
हर शोषित, पीड़ित
और उपेक्षित प्राणी-
अंततोगत्वा पा सके न्याय,
गर्व से उठाकर सिर
चल सके।

सरपट दौड़ने वाले

घोड़े पर बैठकर-

हाथ में लिए
समानता की तेग
विषमता के अंधेरे का
नाश कर सके
समूल!

उपसंहार: निष्कर्ष

'त्रेता' इस सदी का एक बहुचर्चित महाकाव्य है,जिस पर हिन्दी के बड़े-बड़े आलोचकों ने न केवल अपने विचारणीय आलेख लिखे हैं,बल्कि आलोचना ग्रन्थों की भी रचना की है,जिसमें खगेन्द्र ठाकुर,डॉ. बलि सिंह,ज्योतिष जोशी,नंदकिशोर नौटियाल,डॉ.पूनम सिन्हा,शरत दत्त,डॉ. राकेश शुक्ल और टेक चंद, डॉ॰आनंद प्रकाश दीक्षित, कंवल भारती आदि के नाम उल्लेखनीय है। आलोचकों ने इस महाकाव्य को प्रगतिशील चेतना,काव्यात्मक मिथक,दलित चिंतन,कलि-कथा,स्त्री-विमर्श तथा आर्य-अनार्य आदि अलग-अलग परिपेक्ष में प्रस्तुत किया है। हिन्दी आलोचक *'त्रेता'* को प्रबंधात्मकता,कलात्मकता और कवि-दृष्टि के निकषो पर महाकाव्य के रूप में मानते हैं। पाश्चात्य विचारक लौंगुनिस के उद्दातवाद के अनुसार उद्दात विषयवस्तु,उद्दात भाषा शैली,अलंकारों का प्रयोग,संरचना,गठन के अनुरूप भी इसे महाकाव्य की श्रेणी में लिया जा सकता है। बीसवीं सदी में हिन्दी में लिखे गए चार महाकाव्यों में जयशंकर प्रसाद की *'कामायनी'*,अयोध्या प्रसाद सिंह 'हरिओध' का*'प्रिय-प्रवास'*, मैथलीशरण गुप्त का *'साकेत'*,रामधारी सिंह दिनकर का '*उर्वशी*' हैं। इक्कसवीं सदी में उद्भ्रांतजी का पहला महाकाव्य *'त्रेता'* सन 2009 में नेशनल पब्लिशिंग हाउस से प्रकाशित हुआ। यद्यपि कवि ने बाद में तीन अन्य महाकाव्यों *'अभिनव पांडव','वक्रतुंड','राधामाधव'* की रचना की हैं,*'स्वयंप्रभा'* उनका खंड-काव्य है,*'रुद्रावतार'* उनकी लंबी कविता है,*'प्रज्ञावेणु'* गीता पर किया उनका अनुवाद है। डॉ.नामवर सिंह के अनुसार,*"उद्भ्रांत जी के महाकाव्य 'त्रेता' में एक कलि और कलि में एक त्रेता है। यह हिन्दी में पहली बार हो रहा है कि एक कवि रामायण काल की दर्जनों स्त्रियॉ को एक सूत्र में बांध रहा है। किसी की ध्यान में यह बात नहीं आई,कवि परंपरा से जुड़ी हुई स्त्रियों के साथ क्या सलूक करना चाहता है?"*

मुझे नामवरजी की उपर्युक्त टिप्पणी उचित लगती है क्योंकि किसी भी उदात्त काव्य का महल सदैव परंपरा की नींव पर खड़ा होता है। नामवरजी की इस बात पर मुझे पाश्चात्य आलोचक टी.एस.इलियट की प्रसिद्ध आलोचना पुस्तक *"ट्रेडिशन एंड इंडिविजुअल टेलेंट"* में कहे गए मन्तव्य का स्मरण आता है कि "काव्य-हेतु,भले ही पौराणिक हो,मिथकीय हो,पारंपरिक हो, कवि अपनी व्यक्तिगत प्रज्ञा के द्वारा समकालीन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए अपनी कृति की रचना करते हैं। " यह काम उद्भ्रांतजी ने भी किया हैं। अपने महाकाव्य में '*शंबूक की*

जननी','धोबिन','शांता' आदि पात्रों की मौलिक कल्पना कवि उद्भ्रांतजी ने आधुनिक समस्याओं को ध्यान में रखते हुए किया है। त्रेता के बहुत सारे प्रसंग नवीन है।

डॉ.आनंद प्रकाश दीक्षित ने आलोचना-ग्रंथ *"त्रेता: एक अंतर्यात्रा"* में उद्भ्रांतजी के इस महाकाव्यकी प्रेरणा उनकी अद्भुत कल्पना-शक्ति को मानते हैं। कॉलरिज जैसे प्रसिद्ध पाश्चात्य आलोचक इसे कवि की गौण-कल्पना शक्ति मानते है,जो उसे साहित्य-सृजन में अपना सहयोग देती है। उद्भ्रांतजी ने अपने इस महाकाव्य में आत्मकथा शैली अपनाई है। जिसमें कथा को पूर्व-स्मृति पद्धति द्वारा आगे बढ़ाया है। इसमें ललित कल्पना का भी बिम्ब बनाने हेतु प्रयोग हुआ है। शबरी और सूर्पनखा का सफल चरित्र-चित्रण इन्हीं घटकों पर आधारित है। डॉ. आनंद प्रकाश दीक्षित के अनुसार त्रेता का काव्य विन्यास जटिल है,जिसमें कवि महाकाल,काल और समय की अवधारणाओं को समेटते हुए वर्तमान की कोली पर अतीत और भविष्य के बीच संतुलन और सामंजस्य साधता है। मेरी नजरों में सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' की कविताओं की तरह त्रेता की काव्य-भाषा सपाट-बयानी प्रतीत होती है। मगर उनकी भाषा धूमिल की तरह ही वक्र तथा व्यंग्य की सांस लेता है।

दलित चिंतक कंवल भारती ने अपनी पुस्तक "त्रेता-विमर्श और दलित-चिंतन' में लिखा है कि "उद्भ्रांत पहले कवि है जिन्होंने शंबूक की माँ की मौलिक कल्पना की है। शंबूक पर अभी तक जितने भी काव्य और नाटक लिखे गए हैं,उनमें किसी में भी उसकी माँ का चरित्र चित्रण नहीं मिलता है। यह सिद्ध करता है कि राम-राज्य और वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध कवि गहरे जनतांत्रिक मूल्य और सामाजिक न्याय में विश्वास रखता है। कवि की प्रेरणा भले ही वाल्मीकि रामायण,तुलसी के रामचरित मानस या लोक-परंपरा से मिली हो,मगर उनके सुख-दुख ,अंतर्द्वंद्व और संघर्ष को उभारने में कवि ने पृथक शैली अपनाई है। "

मेरी दृष्टि में त्रेता में परंपरा के साथ-साथ आधुनिकता और उत्तर-आधुनिकता भी है। वर्तमान युग में इंटरनेट तथा सूचना-क्रांति के कारण पाठकों का बहुत बड़ा वर्ग साहित्यिक अभिरुचियों से अलग होता जा रहा है। पाठकों की भाषा,अभिव्यक्ति,शैली,संरचना सभी व्याकरणिक नियमों को ताक पर रखकर *पिजिन अथवा क्रियोल* भाषा का निर्माण कर रहे हैं। इस युग में हो रहे बदलाव के कारण,जहाँ एक लघु कविता लिखना कठिन होता है वहाँ महाकाव्य की रचना करना अपने आप में एक चुनौती भरा कार्य है। इस चुनौती भरे एकाधिक कार्य के लिए कवि उद्भ्रांतजी का जितना भी अभिनंदन किया जाए, वह कम होगा।

मेरा मानना है कि कवि ने अपने महाकाव्य में दलित-विमर्श और स्त्री-विमर्श को स्थान देकर अपनी सुषुप्त मार्क्सवादी विचारधारा के भभकने का परिचय दिया है। कबीर की तरह

उद्भ्रांतजी भी एक अल्हड़,मस्तमौला और नृसिंह अवतार की तरह है,जो एक ऐसे चौराहे पर खडे है;जिसकी एक दिशा आधुनिकता की ओर जाती है तो दूसरी दिशा परम्पराओं की तरफ। तीसरी दिशा उत्तर आधुनिकता की ओर रुख करती है तो चौथी दिशा सांस्कृतिक मूल्यों की याद दिलाती है। मेरे ख्याल से कवि ने शायद इस महाकाव्य की रचना में मिथकों का प्रयोग साधारण जनमानस की सामूहिक स्मृति को जगाकर सामूहिक विकास हेतु आंदोलन खड़ा करने के लिए किया है। आजकल अनेक पाठक जहाँ मिथकों में विश्वास नहीं रखते या उनके प्रसंगों में वैज्ञानिकता खोजने का प्रयास करते हैं,उनके लिए यह महाकाव्य अपने आप में किसी वरदान से कम नहीं है। जैसा कि त्रेता की भूमिका में कवि ने लिखा हैं,"भारतीय वैज्ञानिक डॉ॰ यशपाल के अनुसार मिथक किसी समाज की कल्पना और इसके आश्चर्यों को रचनात्मक दृष्टि को ही दर्शाते हैं। "

कवि उद्भ्रांतजी ने त्रेताकालीन रामराज्य की सामाजिक विद्रूपताओं,विसंगतियों को यथार्थता से प्रस्तुत कर महात्मा गांधी के आदर्शवादी रामराज्य की परिकल्पना को पूरे सिरे से नकार दिया है। त्रेता पढ़ने से कभी-कभी तो ऐसे लगता है कि त्रेताकालीन समाज वर्तमान कलियुग के समाज से भी काफी पिछड़ा हुआ रहा होगा। सीता की अग्नि-परीक्षा,वनगमन की घटना,लड़का-लड़की में भेद-भाव,घोर जातिवाद(धोबिन,शंबूक की जननी,शबरी) के कारण महिलाओं की प्रताड़ना और पुरुष वर्चस्व वाले समाज में व्याप्त अनेकानेक कुरीतियों को सामने रखकर कवि ने यह सिद्ध किया है कि आदर्श रामराज्य का कोई अस्तित्व त्रेता में नहीं था। केवल पूर्ववर्ती कवियों और साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में तत्कालीन घटनाओं को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया है।

भारत को जातिविहीन और धर्मविहीन देखने का सपना कवि के इस महाकाव्य में स्पष्ट झलकता है तथा आधुनिक युग के जनमानस में व्याप्त पूर्वाग्रह,मिथकीय अवधारणाओं का भंजन करता है। अतीत,वर्तमान और भविष्य को त्रेताकार समान दृष्टि से देखता है। कवि उद्भ्रांतजी के लिए अतीत भी वैसा ही था, जैसा आज वर्तमान है और भविष्य भी अतीत और वर्तमान से संबद्ध रहते हुए आगे प्रगति के पथ पर दिखाई देगा। भले ही,मनुष्य की भाषा,परिवेश,खान-पान,रहन-सहन, सोचने क ढंग आदि सामाजिक,सांस्कृतिक,राजनीतिक और भौगोलिक परिस्थितियों के कारण परिवर्तित क्यों न हो जाए।

संक्षिप्त में, *त्रेता* एक ऐसा महाकाव्य है,जो आधुनिक पाठकों की अतीत सामूहिक स्मृतियों को झकझोर कर मिथकीय गरिमा-महिमा पर आश्चर्यचकित हुए बिना आधुनिक समस्याओं के समाधान पर बल देता है। अगर हम हमारे देश में दलितों और स्त्रियॉ का उद्धार करते हैं,तो हम सही अर्थों में देश का विकास कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में,आदर्श रामराज्य यानि यूटोपिया की स्थापना कर सकते हैं। त्रेता-सृजन का मुख्य उद्देश्य इन्हीं समस्याओं का

समाधान ढूँढना है। चीन,भारत के आजाद होने के दो वर्ष बाद आजाद हुआ, मगर दलित और स्त्री-विमर्श के माध्यम से उनकी समस्याओं का समाधान का आज विश्व की एक महान शक्ति बन चुका है। अतः हमें *त्रेता* जैसे उददात साहित्य की अत्यंत आवश्यकता है,जो देश के नीति-निर्धारकों में इन सामाजिक विषमताओं से मुक्ति दिलाने का कार्य कर सकें।